



महाभारत





COLLECTION OF VARIOUS
-> **HINDUISM SCRIPTURES**
-> **HINDU COMICS**
-> **AYURVEDA**
-> **MAGZINES**

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

**Icreator of
hinduism
server!**

KAPWING

महाभारत



eISBN: 978-93-9008-814-0

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.

X-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II

नई दिल्ली- 110020

फोन : 011-40712200

ई-मेल : ebooks@dpb.in

वेबसाइट : www.diamondbook.in

संस्करण : 2020

Mahabharat

By - *Priyadarshi Prakash*

सत्य की असत्य पर और न्याय की अन्याय पर विजय की ऐतिहासिक गाथा आज भी 'महाभारत की कथा' के रूप में लोकप्रिय है। यह राजनीति, शौर्य, वीरता और बलिदान की कहानी हम बचपन से सुनते आ रहे हैं। धुरंधर निशानेबाज अर्जुन, दानवीर कर्ण, धर्म के पर्याय युधिष्ठिर, पितामह भीष्म, हमारे जीवन में हमेशा प्रेरणास्रोत रहेंगे। इसके अलावा युद्ध क्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दी गयी शिक्षा सर्वोपरि है। अपने बेहद रोमांचक प्रसंगों के कारण 'महाभारत' विश्व में सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली पुस्तक में शामिल है।

द्वापर युग में कौरवों तथा पांडवों के बीच हुए संघर्ष की रोमांचक कहानी को बड़ी ही सरल भाषा में 'महाभारत' में प्रस्तुत किया गया है, जो हर वर्ग के पाठक के लिए पठनीय है।

प्रकाशकीय

असत्य पर सत्य की और पाप पर पुण्य की जीत पर आधारित महाभारत की कथा भारतीय धर्म, सभ्यता और संस्कृति की अपूर्व गाथा है। इस कथा को महर्षि वेदव्यास ने भगवान श्रीगणेश को सुनाया था। द्वापर युग के अंत में इस आर्यावर्त पर शांतनु का राज था। वे परम तेजस्वी और वीर थे। एक बार शिकार खेलते हुए अत्यंत रूपवती युवती, सत्यवती से मुलाकात हुई। वे उस पर इतना मोहित हुए कि उसे अपनी रानी बनाने का प्रस्ताव दिया। सत्यवती ने सशर्त उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस शर्त रूपी अभिशाप के कारण ही देवव्रत भीष्म का जन्म हुआ। भीष्म समस्त वेदों के ज्ञाता और परम् धनुर्धर थे। भीष्म ने अपने पिता की इच्छा का मान रखते हुए राजा नहीं बनने की प्रतिज्ञा ली, जिससे शांतनु का केवट पुत्री सत्यवती से विवाह हो सका। सत्यवती के पोते धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर थे।

बड़े होने पर नेत्रहीन धृतराष्ट्र ने राज्य छोटे भाई पांडु को सौंप दिया। पांडु का विवाह माद्री और कुंती से हुआ जिनसे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र का विवाह गांधारी से हुआ, जिससे उन्हें एक सौ पुत्र और एक पुत्री हुई जो कौरव कहलाए। धृतराष्ट्र पांडु के निधन के बाद अपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन को राजा बनाने के लिए तमाम तरह के षडयंत्र में फंसते चले गए। इस साजिश की चरम स्थिति महाभारत के युद्ध में देखने को मिली जिसमें कौरवों की हार हुई।

इस कथा में शौर्य, वीरता, ज्ञान और बलिदान के ऐसे-ऐसे प्रकरण पढ़ने को मिलते हैं जो अकल्पनीय कहे जा सकते थे। भगवान श्रीकृष्ण ने युद्ध के मैदान में धनुर्धारी अर्जुन को दीक्षा दी, जिससे वे अपने ही परिजनों से युद्ध कर सके। महाभारत के चरित्र हमारे जीवन में अमिट छाप छोड़ते हैं। ये हमें प्रेम, सत्य, न्याय और कष्ट सहन करते हुए अपने धर्म के प्रति जागरूक रखते हैं। भारतीय जनमानस में महाभारत का प्रभाव वेद-पुराण सरीखा है। अनेक लेखकों ने

इस कथा को अपने तरीके से लिखीं। फिल्म और धारावाहिक बनें और इसको लेकर अभी कितनी ही और रचनाएं देखने को मिलेगा, कोई नहीं कह सकता। यह सच है कि जब भी कोई महाभारत की पुस्तक उठाता है तो वो वह इसके सम्मोहन से बच नहीं पाता। हमारी युवा पीढ़ी के लिए यह अनुभव और शिक्षा का अभूतपूर्व खजाना है। यही कारण है कि हर माता-पिता अपने बच्चों को महाभारत पढ़ने और उससे शिक्षा लेना जरूरी बताते हैं।

– नरेन्द्र कुमार वर्मा

महाभारत

प्राचीनकाल की बात है। द्वापर के अंत में...

इस आर्यवर्त परंतु राजा शांतनु का राज था। वे परंतु तेजस्वी और वीर थे। उन्हें शिकार का बहुत शौक था। जब भी अवसर मिलता, वे आखेट के लिए राजधानी हस्तिनापुर से जंगलों की ओर निकल पड़ते।

एक बार की बात है।

राजा शांतनु शिकार खेलते हुए गंगा नदी के किनारे जा पहुंचे। गंगा के किनारे ही उन्हें नजर आई— एक अत्यंत रूपवती युवती। उसे देखते ही राजा अपनी सुध-बुध खो बैठे। युवती उन्हें भा गई और अगले पल ही वे उसे प्यार करने लगे।

राजा शांतनु युवती के पास गए और अपना परिचय देकर भाव-विह्वलता में बोले, “हे परम सुंदरी! क्या तुम मेरी पत्नी बनोगी?”

युवती स्वयं भी राजा शांतनु के भव्य व्यक्तित्व से प्रभावित हो चुकी थी। वह बोली, “राजन! मुझे स्वीकार है, किंतु मेरा हाथ थामने से पहले मेरी कुछ शर्तें आपको माननी होंगी।”

“मुझे शीघ्र बताओ, तुम्हारी शर्तें क्या हैं?” राजा शांतनु बोले, “तुम्हें पाने के लिए मुझे तुम्हारी प्रत्येक शर्त स्वीकार है।”

“तो राजन! ध्यान से मेरी बात सुनिए।” युवती बोली, “विवाह उपरांत जब मैं आपकी पत्नी बन जाऊं, तब आप यह जानने का कभी प्रयास नहीं करेंगे कि मैं कौन हूं? मैं कुछ भी करने को पूरी प्रकार स्वतंत्र रहूंगी। मेरे किसी भी कार्य-कलाप में आप कोई भी हस्तक्षेप नहीं करेंगे। यही मेरी शर्तें हैं। जब तक आप इन शर्तों परंतु अडिग रहेंगे, मैं पत्नी के रूप में आपके

साथ रहूंगी, जैसे ही आपने मेरी राह में कोई बाधा उत्पन्न की, मैं आपको छोड़कर चली जाऊंगी।”

राजा शांतनु ने उसकी सभी शर्तें मान लीं। इस प्रकार दोनों का विवाह संपन्न हो गया।

कुछ समय पश्चात् राजा शांतनु की वह रानी गर्भवती हुई।

राजा प्रसन्न थे कि उनके घर में पहली संतान उत्पन्न होने जा रही है। उस समय राजा के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब पत्नी ने पहली संतान उत्पन्न होते ही उसे नदी में विसर्जित कर दिया।

राजा बहुत मर्माहत हुए। उन्हें समझ में नहीं आया कि रानी ने ऐसा क्यों किया। वे उससे कुछ पूछ भी नहीं सकते थे, क्योंकि उन्होंने उसे पहले ही वचन दिया हुआ था। उन्होंने हृदय परंतु पत्थर रख लिया। सोचा, अगली संतान होने तक सब ठीक हो जाएगा।

लेकिन दूसरी संतान होने पर परंतु रानी ने उसे भी नदी में बहा दिया। शर्त ऐसी थी कि राजा विवश थे। उधर रानी एक के बाद दूसरी संतान उत्पन्न होते ही उसे नदी में प्रवाहित कर देती। ऐसा करते हुए पत्नी के चेहरे परंतु न दुःख होता और न ही खेद, बल्कि हर संतान को नदी में प्रवाहित कर देने के पश्चात् उसके मुख पर संतोष की झलक देखने को मिलती और मुस्कराहट खिल जाती।

इस प्रकार रानी ने अपने सात नवजात शिशुओं को नदी में बहा दिया। राजा शांतनु का हृदय रोता था, लेकिन उन्हें डर था कि अगर रानी से इस निर्दयता के बारे में कुछ भी कहा तो वह उन्हें छोड़कर चली जाएगी।

समयानुसार रानी फिर गर्भवती हुई।

आठवें बच्चे के जन्म लेते ही रानी उसे भी नदी में बहाने के लिए तैयार हो गई। अब तो शांतनु के धैर्य का बांध टूट गया। वे सारी शर्तें भूल गए और रानी का रास्ता रोककर बोले,

“तुम कैसी माता हो, जो अपने ही नवजात शिशुओं को नदी में बहा देती हो? अब मुझसे सहन नहीं होता, तुम्हें अपनी यह आदत बदलनी ही पड़ेगी।”

रानी ने आंखें उठाकर शांतनु की ओर देखा, फिर गंभीर स्वर में बोली, “ठीक है, आप जैसा चाहते हैं, वैसा ही होगा। इस आठवें बच्चे को मैं नदी में नहीं बहाऊंगी, परंतु अब मैं आपके साथ नहीं रह सकती, क्योंकि आपने वचन भंग किया है।”

राजा शांतनु समझ गए कि अब वे रानी को रोक नहीं सकते, लेकिन वे सारा रहस्य जानना चाहते थे। इसलिए बोले, “जाने से पहले यह तो बता दो कि तुम हो कौन और अपने ही नवजात शिशुओं को इतनी निर्ममता से नदी में क्यों बहा देती हो?”

रानी ने उत्तर दिया, “हे राजन! सच्चाई यह है कि मैं गंगा हूँ। महर्षि वशिष्ठ के आदेशानुसार मैंने यह मानव शरीर धारण किया है, क्योंकि मुझे आठ पुत्रों को जन्म देना था। जब तुमने मेरे सामने विवाह का प्रस्ताव रखा तो मैंने तत्काल स्वीकार कर लिया। मेरी दृष्टि में तुम्हीं उन आठ पुत्रों को जन्म देने के योग्य थे। ये आठ शिशु कोई और नहीं, बल्कि आठ वसु हैं। उन्होंने पिछले जन्म में एक पाप किया था, इसलिए उन्हें पृथ्वी पर मानव योनि में उत्पन्न होने का शाप मिला था।

“वे एक बार अपनी पत्नियों सहित महर्षि वशिष्ठ के आश्रम के आस-पास घूम रहे थे, तभी आठवें वसु की पत्नी की दृष्टि वशिष्ठ की कामधेनु गाय नंदिनी की ओर चली गई। बस, उसने हठ पकड़ ली कि उसे यह गाय चाहिए। बहुत समझाने पर भी जब वह नहीं मानी तो आठों वसुओं ने वह गाय चुरा ली। बाद में जब महर्षि वशिष्ठ को पता चला तो वे बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने आठों वसुओं को पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दे दिया। अब वसु घबराए, उन्होंने अपनी करनी की क्षमा मांगी। महर्षि वशिष्ठ को उन पर दया आ गई, इसलिए उन्होंने कहा, ‘अब मैं शाप दे चुका हूँ, उसे वापस नहीं ले सकता। हां, शाप का प्रभाव अवश्य कम कर सकता हूँ।’ यह कहकर उन्होंने सात वसुओं को तो पृथ्वी पर जन्म लेते ही अपना शरीर त्याग देने का वर

दिया, पर आठवें वसु को, जिसने नंदिनी चुराई थी, लंबे समय तक पृथ्वी पर ही रहने का शाप पूर्ववत् रखा, किंतु साथ ही यह वर भी दिया कि उसका नाम संसार में अमर रहेगा। मेरे हाथ में जो जीवित पुत्र है, यह वही आठवां वसु है। महर्षि वशिष्ठ ने इस काम के लिए मुझसे अनुरोध किया था और मैंने उनकी बात मान ली थी।”

शांतनु चकित हो गंगा की बात सुनते रहे। उनसे कुछ कहते नहीं बना।

गंगा ने कहा, “अच्छा! अब मैं जा रही हूं और अपने साथ आठवां पुत्र भी ले जा रही हूं। समय आने पर इसे आपको सौंप दूंगी।”

शांतनु होश में आ गए। पूछा, “पर कब? कहां?”

इस पर गंगा ने कोई उत्तर नहीं दिया। अगले पल ही वह पुत्र सहित नदी में अंतर्धान हो गई।

राजा शांतनु हाथ मलकर रह गए।

□□

धीरे-धीरे समय बीतने लगा।

एक बार शांतनु शिकार खेलते हुए फिर नदी किनारे उसी जगह पहुंच गए, जहां उन्हें पत्नी के रूप में गंगा मिली थी। तभी उन्होंने देखा कि एक युवक धनुष की डोर तानकर बाणों से निशाना साध रहा है। सारे बाण सनसनाते हुए गंगा की धारा पर लग रहे थे, जिससे नदी की लहरों का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। ऐसे विलक्षण तीरंदाज को देखकर शांतनु आश्चर्यचकित हो गए। युवक अत्यंत तेजस्वी और उच्च कुल का प्रतीत हो रहा था। शांतनु सोच रहे थे, “कौन है यह युवक? किसी राजकुल का तो नहीं।”

तभी उनके सामने गंगा प्रकट हो गई। बोलीं, “राजन! जिसे देखकर आप आश्चर्यचकित हो रहे हैं, वह आपका ही पुत्र है। मैंने बड़े यत्न से पाल-पोसकर इसे बड़ा किया है। इसे महर्षि वशिष्ठ ने संपूर्ण वेदों की शिक्षा दी है, इसकी तीरंदाजी का जवाब नहीं, अस्त्र-संचालन में यह

पट्ट है। इसके अलावा इसकी बौद्धिक और आत्मिक शक्ति असीम है। इसका नाम देवव्रत है। अब आप इसे अपने साथ ले जा सकते हैं।”

इतना कहकर गंगा फिर अंतर्धान हो गई।

राजा शांतनु ने देवव्रत को अपने साथ लिया और प्रसन्नतापूर्वक महल लौट आए। अब वंश को आगे बढ़ाने वाला उनका पुत्र देवव्रत उन्हें मिल चुका था।

□□

लगभग चार वर्ष उपरांत।

राजा शांतनु पुनः शिकार के लिए निकले।

वन में उन्हें एक हिरण दिखाई दिया। वे उसका पीछा करते हुए बहुत दूर तक निकल गए।

सामने यमुना नदी बह रही थी। चारों ओर मनोरम जंगल फैला हुआ था। वहीं उन्हें एक परम सुंदर युवती दिखाई दी। उसके शरीर से बड़ी मनभावनी सुगंध निकल रही थी, जिससे सारे वातावरण में भीनी-भीनी सुगंध फैल गई थी। शांतनु उसकी सुंदरता देखकर मुग्ध हो गए।

उन्होंने समीप आकर युवती से पूछा, “हे सुंदरी! तुम कौन हो? यहां क्या कर रही हो?”

सुंदरी ने उत्तर दिया, “मैं केवट पुत्री सत्यवती हूं। यात्रियों को नदी पार करवाने में पिताजी की सहायता करती हूं।”

राजा शांतनु बोले, “मैं यहां का राजा हूं। क्या तुम मेरी रानी बनना स्वीकार करोगी?”

केवट पुत्री लजाकर बोली, “आप जैसा पति पाना तो सौभाग्य की बात है, पर इसके लिए तो आपको मेरे पिताजी से अनुमति लेनी पड़ेगी।”

राजा शांतनु केवटराज से मिले और उससे कहा, “मैं आपकी पुत्री से विवाह करना चाहता हूं। कृपया अनुमति देकर कृतार्थ कीजिए।”

भला केवटराज को क्या आपत्ति हो सकती थी, किंतु उसने दुनिया देख रखी थी, इसलिए बोला, “अपनी बेटी सत्यवती का हाथ तुम्हें सौंपकर मुझे प्रसन्नता होगी, लेकिन...!”

“लेकिन क्या...?” राजा ने उत्सुकता से पूछा।

“अगर सत्यवती से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी बने तो आप मेरी पुत्री से विवाह कर सकते हैं।” केवट ने कहा, “यही मेरी शर्त है राजन! स्वीकार है...?”

भला यह शर्त राजा कैसे स्वीकार कर सकते थे! देवव्रत उनका ज्येष्ठ पुत्र था और हर प्रकार से योग्य था। परंपरा से उनके बाद देवव्रत को ही राज्य का उत्तराधिकारी बनना था। अतः उन्होंने उत्तर दिया, “केवटराज! यह शर्त तो अन्यायपूर्ण है। देवव्रत को उसके अधिकार से च्युत करना उचित नहीं।”

“तो राजन! मैं भी विवश हूँ।”

केवटराज का ऐसा उत्तर सुनकर राजा शांतनु निराश होकर वापस लौट गए, लेकिन मन-प्राण में सत्यवती की सुंदरता और सुगंध हमेशा के लिए बस गई थी। वे उसे भुला न सके। इसका परिणाम यह हुआ कि न उनका राजकार्य में मन लगता था और न ही खाने-पीने में। रात-दिन सत्यवती की सलोनी सूरत उनकी आंखों के आगे छाए रहती।

देवव्रत से पिता की यह उदासी और पीड़ा छिपी न रह सकी। उसने एक दिन पिता से पूछा, “राजन! आपको क्या कष्ट है। इन दिनों आपकी उदासी बढ़ती ही जा रही है।”

राजा शांतनु भला क्या उत्तर देते? कैसे कहते कि वे सत्यवती के विरह की अग्नि में जल रहे हैं। सत्यवती के बिना वे जी नहीं सकते।

कुछ सोचकर राजा शांतनु बोले, “बेटे! तुम्हीं मेरी एकमात्र संतान हो। मैं तो भविष्य के बारे में सोच-सोचकर चिंतित हूँ कि हमारे राज्य का क्या होगा? अगर तुम्हें कुछ हो गया तो हमारे वंश का क्या होगा? तुम योद्धा हो, हमेशा अस्त्र-शस्त्रों से खेलते रहते हो। युद्ध का मैदान ही

तुम्हारा जीवन है। ऐसी हालत में राज्य के प्रति चिंतित होना स्वाभाविक ही है। विद्वानों ने सच ही कहा है कि एक पुत्र का होना अथवा न होना, दोनों बराबर है। काश! मेरी और भी संतान होती!”

देवव्रत यह सुनकर अवाक् रह गए। पिता के कथन से उन्हें शंका हुई तो उन्होंने सच्चाई जानने का प्रयास किया। वे मंत्रियों से मिले और राजा की चिंता का वास्तविक कारण जानना चाहा। एक मंत्री ने बताया, “युवराज! राजा एक केवटराज की पुत्री से विवाह करना चाहते हैं, किंतु केवटराज की शर्त है कि उनकी पुत्री की संतान ही राज्य की उत्तराधिकारी बने, जो राजा को स्वीकार नहीं।”

देवव्रत अपने पिता को उदास नहीं देखना चाहते थे। वे सीधे केवटराज के यहां पहुंचे और बोले, “मैं राजा शांतनु का पुत्र हूं। मैं राज्य के उत्तराधिकार से स्वयं को वंचित करता हूं। अब आप अपनी पुत्री का विवाह राजा से करा दें।”

किंतु केवटराज ने भी दूर की सोची, बोला, “आपकी बात ठीक है, पर आपकी संतान अगर राज्य पर अपना अधिकार जताना चाहे तो मेरी पुत्री की संतान का क्या होगा?”

“आपका भय उचित ही है।” देवव्रत ने मुस्कुराकर कहा, “इसका एक ही उपाय है कि मैं विवाह ही न करूं। मैं प्रतिज्ञा करता हूं, आज से आजीवन ब्रह्मचारी रहूंगा। अब तो आपको कोई आपत्ति नहीं।”

केवटराज देवव्रत की प्रतिज्ञा से बड़ा प्रभावित हुआ। एक नवयुवक ऐसी विकट प्रतिज्ञा करे, यह निःसंदेह रोमांचकारी बात थी। विवाह के लिए उसने तत्काल अपनी स्वीकृति दे दी। बोला, “युवराज तुम धन्य हो। ले जाओ मेरी पुत्री को, वह आज से शांतनु की हो गई।”

देवव्रत ने आगे बढ़कर सत्यवती से कहा, “राजा महल में आपके वियोग में अधीर हो रहे हैं। आप इसी समय मेरे साथ महल चलिए। आज से आप मेरी माता हैं।”

देवव्रत सत्यवती को साथ लेकर महल की ओर रवाना हो गए।

देवव्रत ने ब्रह्मचर्य की कठोर प्रतिज्ञा आजीवन निभाई। ऐसी भीषण प्रतिज्ञा के कारण उनका नाम 'भीष्म' हो गया। स्वर्ग के देवता भी उनकी इस भीषण प्रतिज्ञा के आगे नतमस्तक हो गए थे।

□□

राजा शांतनु सत्यवती को पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

समयानुसार सत्यवती को राजा से दो पुत्र हुए। पुत्रों का नाम था— चित्रांगद और विचित्रवीर्य। चित्रांगद बड़ा था, अतः शांतनु के बाद राज्य का उत्तराधिकारी वही बना, लेकिन एक गंधर्व राजा से युद्ध करते हुए चित्रांगद मारा गया। उसकी कोई संतान नहीं थी, इसलिए चित्रांगद के बाद राजगद्दी पर उसके भाई विचित्रवीर्य को बिठाया गया। विचित्रवीर्य तब छोटा ही था, अकेले राज चलाना उसके वश का नहीं था। इसलिए जब तक वह वयस्क न हो गया, तब तक भीष्म ने राज-काज का संचालन किया।

जब विचित्रवीर्य बड़ा हो गया तो भीष्म को उसके विवाह की चिंता सताने लगी। आखिर वंश भी तो आगे बढ़ाना था।

तभी भीष्म को सूचना मिली कि काशी नरेश अपनी तीन पुत्रियों के स्वयंवर का आयोजन करने वाले हैं। सोचा, विचित्रवीर्य के लिए क्यों न काशी नरेश की पुत्रियों में से किसी का चुनाव किया जाए।

यह सोचकर वे काशी के लिए रवाना हो गए।

(दो)

काशी नरेश की तीन पुत्रियां थीं— अंबा, अंबिका व अंबालिका। तीनों राजकुमारियां परम सुंदरियां थीं।

स्वयंवर के दिन राजदरबार में देश-विदेश के अनेक राजकुमार पधारे थे। सभी जानने को उत्सुक थे कि आखिर राजकुमारियां किसे अपना जीवनसाथी चुनती हैं।

तभी राज दरबार में भीष्म ने प्रवेश किया। वे आए थे विचित्रवीर्य के लिए राजकुमारी का चयन करने, किंतु वहां उपस्थित राजकुमारों ने सोचा कि शायद वे स्वयं अपने लिए स्वयंवर में शामिल होने आए हैं।

भीष्म वृद्ध हो चले थे। चारों ओर उनका परिहास उड़ाया जाने लगा, “बड़े अपने को ब्रह्मचारी बताते थे। अब देखो, बुढ़ापे में स्वयंवर में शामिल होने पहुंच गए।”

भीष्म शांत थे, लेकिन मन-ही-मन क्षुब्ध भी।

जब तीनों राजकुमारियां हाथों में वरमालाएं लेकर अपना-अपना जीवनसाथी चुनने को आगे बढ़ीं तो वे भी भीष्म को देखकर व्यंग्य से मुस्करा पड़ीं।

अब भीष्म से सहन न हो सका। वे उठकर बोले, “इन सुंदरियों को वही अपनी पत्नी बना सकता है, जिसमें बाहुबल हो। मैं इन तीनों राजकुमारियों को यहां से ले जा रहा हूं, जिसमें शक्ति हो, वह युद्ध करके इन्हें मुझसे प्राप्त कर ले।”

सारे राजदरबार में सन्नाटा छा गया।

भीष्म की वीरता से भला कौन अनभिज्ञ था। काशी नरेश, उपस्थित राजकुमार अथवा अन्य लोग भीष्म का प्रतिरोध करते कि तब तक भीष्म सबको एक ओर हटाकर आगे बढ़े और तीनों राजकुमारियों को रथ में बिठाकर राजमहल से निकल पड़े।

सब देखते ही रह गए।

भीष्म का रथ हस्तिनापुर की ओर दौड़ पड़ा।

स्वयंवर में सोम देश के राजा शाल्व भी आए थे। राजकुमारी अंबा से उनका बड़ा मधुर संबंध था। भीष्म को इस प्रकार तीनों राजकुमारियों का अपहरण करके ले जाते देखकर उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने अंबा को पाने के लिए भीष्म का पीछा किया।

भीष्म से युद्ध में जीतना सहज नहीं था। राजा शाल्व भीष्म के हाथों बुरी प्रकार पराजित हुए। तीनों राजकुमारियों के कहने पर भीष्म ने शाल्व को जीवित छोड़ दिया। शाल्व अपनी जान बचाकर अपने देश वापस चले गए।

□□

भीष्म तीनों राजकुमारियों को हस्तिनापुर ले आए।

वे अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्य का विवाह तीनों राजकुमारियों के साथ करना चाहते थे। जब उन्होंने विवाह का दिन निश्चित किया तो बड़ी राजकुमारी अंबा ने भीष्म से कहा, “मैं आपके भाई के साथ विवाह नहीं कर सकती। मैं राजा शाल्व को पसंद करती हूँ, उनके अलावा मैं किसी अन्य को अपने पति के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती। आप समझदार हैं, आप स्वयं ही विचार कीजिए, जिस युवती ने किसी व्यक्ति को पहले ही वर लिया हो, क्या उसे किसी अन्य व्यक्ति के पल्ले बांधना उचित है?”

भीष्म को अंबा की बात जंच गई। यह सच था कि विवाहोपरांत अंबा कभी भी हृदय से विचित्रवीर्य को अपना नहीं सकेगी, क्योंकि वह शाल्व को ही अपना आराध्य देव मान चुकी है। इसलिए उन्होंने अंबा की बात मानकर उसे शाल्व के पास वापस जाने की अनुमति दे दी।

अंबा प्रसन्नतापूर्वक सोम देश पहुंची।

सोम राजा शाल्व उसे अचानक देखकर चकित रह गए। पूछा, “अरे! तुम यहां कैसे? तुम्हें तो भीष्म अपने साथ ले गए थे।”

अंबा ने बताया, “हां, किंतु मैंने जब उन्हें बताया कि मैं सोमराज को ही पति रूप में स्वीकार कर चुकी हूं तो भीष्म ने मुझे छोड़ दिया। मेरी दोनों बहनों का विवाह विचित्रवीर्य के साथ हो गया है। अब हम दोनों को भी विवाह के पवित्र बंधन में बंध जाना चाहिए।”

शाल्व धीरे से बोले, “अंबा! अब परिस्थितियां बदल चुकी हैं। तुम्हें भरे दरबार से भीष्म बलपूर्वक उठाकर ले गए थे। मैं उस युवती से कैसे विवाह कर सकता हूं, जिसका अपहरण हो चुका हो।”

अंबा जैसे आसमान से गिरी। कहां तो वह शाल्व से मिलने को व्याकुल थी और कहां शाल्व ने मिलते ही उसे ठुकरा दिया। अंबा बोली, “सोमराज! यह क्या कह रहे हैं आप, भीष्म ने सादर मुझे आपके पास भेज दिया है।”

“तुम वापस भीष्म के पास ही जाओ।” शाल्व ने दो ठूक उत्तर दिया। “वे ही सोचेंगे तुम्हारे भविष्य के बारे में।”

अंबा ने शाल्व को मनाने का बहुत प्रयास किया, पर शाल्व ने उसे पत्नी के रूप में अपनाने से मना कर दिया। बेचारी अंबा के लिए अब हस्तिनापुर लौट जाने के अलावा कोई और विकल्प नहीं रहा।

वह भीष्म के पास पहुंचकर बोली, “आपके कारण शाल्व ने मुझे अपनाने से मना कर दिया, अब मैं क्या करूं?”

भीष्म को सचमुच दुःख हुआ। सोचा, क्यों न इसे भी विचित्रवीर्य की पत्नी बना दिया जाए, लेकिन उन्होंने जैसे ही यह प्रस्ताव विचित्रवीर्य के सामने रखा, उसने कहा, “नहीं भैया! मैं उस नारी से कैसे विवाह कर सकता हूं, जिसने पहले ही किसी और को अपने हृदय में बसा रखा हो।”

अब भीष्म करे तो क्या करें?

अंबा की स्थिति यह थी कि न वह उधर की रही और न इधर की। उसने भीष्म से कहा, “यह सब आपकी करनी का ही फल है। अब आप ही मुझसे विवाह कीजिए।

“मैं?” भीष्म चौंकर बोले, “पर मैं तो ब्रह्मचारी हूँ और आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करने को वचनबद्ध हूँ। तुम एक बार फिर शाल्व के पास जाओ, वे अवश्य तुम्हें अपना लेंगे।”

अंबा एक बार फिर शाल्व के पास गई, परंतु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। शाल्व अपनी जिद पर अड़े रहे।

अंबा लगभग छह वर्षों तक भीष्म और शाल्व के बीच दौड़ती रही। यही नहीं, वह भीष्म से बदला लेने के लिए अन्य राजाओं के पास भी गई, पर कहीं से भी उसे सहायता नहीं मिली।

अब अंबा ने भी तय कर लिया कि उसके जीवन को जिस भीष्म ने बरबाद कर दिया है, उसका नाश करके ही दम लेगी। जब कोई भी राजा भीष्म के विरुद्ध उसकी सहायता करने को तैयार नहीं हुआ तो वह एकांत में घोर तपस्या में लीन हो गई। भगवान कार्तिकेय उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए। उन्होंने अंबा को दर्शन दिया और बोले, “आंखें खोलो अंबा! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हुआ। बोलो, क्या चाहती हो?”

“भीष्म का नाश।” अंबा बोली, “भीष्म की वीरता से सब भयभीत हैं। कोई भी मेरी सहायता नहीं करना चाहता।”

भगवान कार्तिकेय ने उसे कमल पुष्पों की माला देते हुए कहा, “लो यह माला रख लो, इसके पुष्प कभी मुरझाएंगे नहीं। यह माला जिसके गले में होगी, वही भीष्म का नाश करेगा।”

अंबा वह माला लेकर अपने अभियान पर निकल पड़ी। उसने अनेक वीर राजाओं का आह्वान किया, किंतु भीष्म की वीरता का यह प्रभाव था कि कोई भी माला गले में डालकर भीष्म से लड़ने का साहस नहीं कर सका। अंबा चारों ओर से निराश हो गई। उसने माला को राजा द्रुपद के महल के एक द्वार पर टांग दिया और स्वयं रोती-कलपती किसी नए उपाय की

खोज में चल पड़ी। भीष्म से बदला लेने की जो जिद उसने ठान ली थी, वह दिनोदिन बढ़ती ही जा रही थी।

राजा द्रुपद ने अंबा से कहा था, “तुम परशुराम से मिलो। वे क्षत्रियों के प्रबल शत्रु हैं। वे तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगे।”

अतः अंबा परशुराम से मिली। परशुराम तत्काल अंबा की सहायता को तैयार हो गए। वे भीष्म के पास पहुंचे और युद्ध के लिए ललकारा। भीष्म और परशुराम में भयंकर युद्ध हुआ। दोनों वीर थे। कई दिनों तक युद्ध चलता रहा। बराबर की टक्कर थी, इसलिए न कोई हार रहा था, न कोई जीत रहा था। परशुराम के लिए अधिक दिनों तक युद्ध में टिके रहना असंभव था, इसलिए उन्होंने हार मान ली और अंबा से कहा, “उचित यही है कि तुम भीष्म से संधि कर लो। वे तुम्हारा हित करेंगे।”

अंबा भीष्म के सामने घुटने कैसे टेक सकती थी? भीष्म ने उसका जीवन नष्ट किया था, वह भी भीष्म को जीवित नहीं छोड़ेगी। उसने एक बार फिर तपस्या की। उसने घोर तपस्या करके भगवान शंकर को प्रसन्न किया। भगवान शंकर ने अंबा को वर दिया, “इस जन्म में तो नहीं, अगले जन्म में तुम अवश्य भीष्म से बदला ले सकोगी।”

भगवान शंकर तो यह वर देकर अंतर्धान हो गए, लेकिन अंबा को चैन कहां? उससे अगले जन्म के लिए स्वाभाविक मृत्यु की प्रतीक्षा भी नहीं की गई। उसने अपने हाथों अपनी चिता सजाई और उसमें आग लगाकर स्वयं को अग्नि के हवाले कर दिया। प्राण-पखेरू उड़ते ही अंबा ने राजा द्रुपद की पत्नी के गर्भ से नया जन्म लिया। अगले जन्म में वह राजा द्रुपद की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई। वहीं अंबा को अपनी वह माला भी मिल गई, जो भगवान कार्तिकेय ने उसे दी थी। उसने वह माला अपने गले में डाल ली।

राजा द्रुपद माला की महिमा जानते थे। भविष्य में कहीं व्यर्थ में भीष्म से टकराना न पड़े, इस डर से राजा द्रुपद ने अपनी पुत्री को ही घर से निकाल दिया।

इस जन्म में भी अंबा भूली नहीं थी कि उसे भीष्म से बदला लेना है। घर से निकाले जाने पर उसने फिर तपस्या की। वह जानती थी कि नारी रूप में भीष्म से टकराना असंभव है, वह पुरुष रूप पाना चाहती थी। घोर तपस्या के बाद अंततः उसे पुरुष रूप मिल गया।

अंबा का यही पुरुष रूप शिखंडी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शिखंडी ने महाभारत युद्ध में अर्जुन का रथ चलाया था। उस समय भीष्म ने उसे पहचान लिया था। वे चाहते तो उसे उसी क्षण समाप्त कर सकते थे, पर एक नारी पर वार करना भीष्म के विवेक के अनुकूल नहीं था। इसी शिखंडी को आगे खड़ा करके अर्जुन ने भीष्म पितामह पर बाणों के वार किए थे और विजय पाई थी। युद्धभूमि में जब भीष्म घायल होकर गिर पड़े थे, तब अंबा की बदले की आग शांत हो सकी थी।

□□

उधर अंबिका और अंबालिका का विवाह विचित्रवीर्य के साथ हो चुका था। विचित्रवीर्य दोनों पत्नियों सहित सुख से जीवन-यापन कर रहे थे।

लेकिन अधिक भोग-विलास का परिणाम यह निकला कि विचित्रवीर्य अस्वस्थ हो गए। उसने अंबिका और अंबालिका के साथ लगभग सात वर्षों तक जीवन-यापन किया, फिर क्षय रोग से पीड़ित होकर निःसंतान ही मर गए।

अब राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं रहा था।

इसका सबसे अधिक दुःख सत्यवती को था। उसके दोनों पुत्र निःसंतान मर गए थे। विचित्रवीर्य की दोनों पत्नियां युवावस्था में विधवा हो गई थीं। अब वंश आगे कैसे बढ़ेगा? भीष्म ने तो कभी भी विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी, परंतु वंश के लिए भी क्या वे अपनी प्रतिज्ञा तोड़ेंगे नहीं?

सत्यवती ने एक दिन भीष्म से कहा, “पुत्र! जो कभी सोचा भी नहीं था, वही हुआ। अब राज्य के उत्तराधिकारी का क्या होगा? हमारे वंश का क्या होगा? हां, अगर तुम अपनी स्वीकृति प्रदान करो तो एक रास्ता निकाला जा सकता है।”

“कैसा रास्ता माता?” भीष्म ने पूछा।

“तुम्हारे भाई की पत्नियां युवावस्था में ही विधवा हो गई हैं। शास्त्रों में विधान है कि विधवाओं का दूसरा विवाह हो सकता है। इससे इन कन्याओं का जीवन संवर जाएगा और हमारा वंश भी आगे बढ़ेगा।”

“तो मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूं?”

“वत्स! अब तुम पर ही सब कुछ निर्भर करता है। मैं तुम्हारी माता हूं। मैं तुम्हें अनुमति देती हूं कि दोनों बहुओं को तुम अपनाओ और वंश को आगे बढ़ाओ।”

भीष्म तत्काल बोले, “नहीं माता! ऐसा नहीं हो सकता। मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकता। उचित यही है कि आप कोई और उपाय सोचें।”

सत्यवती कुछ क्षणों तक शांत रही। फिर कुछ सोचकर उसने भीष्म से कहा, “पुत्र! मैंने आज तक एक बात सबसे छिपा रखी थी, किंतु हमारे वंश पर जो संकट आया है, उसे देखते हुए आज मैं यह रहस्य तुमको बता रही हूं। सुनो! तुम्हारे पिता से विवाह करने से पूर्व मैं अपने पिताजी के साथ यात्रियों को नदी पार करवाती थी। एक दिन की बात है कि मेरी नाव में ऋषि पराशर सवार हुए। मैं जब उन्हें नदी के उस पार ले जा रही थी तब एकाएक वे मेरी ओर आकर्षित हो गए। उन्होंने भावावेश में मेरे सामने अपने प्रेम का प्रदर्शन किया। मैं अत्यंत भयभीत हो गई। सचमुच, मैं दो कारणों से भयभीत हो गई थी— एक तो यह कि अगर मैंने ऋषि को कुपित कर दिया तो वे मुझे कोई भयानक शाप दे सकते हैं, दूसरा यह कि अगर पिता को पता चल गया कि मैंने कोई दुराचार किया है तो वे मुझसे नाराज हो जाएंगे। अब मैं क्या

करती, तब मैंने ऋषि से कहा, 'हे ऋषिवर! अपना इरादा बदल दीजिए। मैं मत्स्य माता की पुत्री हूं, इसलिए मेरे शरीर से सदैव मछली की दुर्गंध निकलती है।' ऋषि इस पर भी नहीं माने।

वे बोले, 'मैं सब कुछ जानता हूं, तुम बदबू की चिंता मत करो, मैं उसे तत्काल दूर कर दूंगा।' इतना कहकर ऋषि पराशर ने अपने प्रताप से मेरे शरीर को दुर्गंध विहीन बना दिया। यही नहीं, बल्कि उनकी कृपा से मेरा संपूर्ण शरीर अत्यंत लुभावनी खुशबू से सराबोर हो गया। यह चमत्कार देखकर मैं ऋषि से बहुत प्रभावित हो गई। उनकी इस कृपा का बदला चुकाने के लिए मैंने उनके आगे समर्पण कर दिया। जब मैं गर्भवती हुई तो ऋषि ने मुझे एकांत द्वीप में पहुंचा दिया और बोले, 'तुम इस द्वीप पर रहकर अपने पुत्र को जन्म दो। पुत्र-जन्म के बाद तुम फिर कुंवारी मानी जाओगी।'

द्वीप पर मैंने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम व्यास है। एक प्रकार से वह भी तुम्हारा भाई ही है। वह अत्यंत विद्वान एवं शास्त्र ज्ञाता है। जब मैं उससे अलग हुई तो उसने वचन दिया था, 'माता! जब कभी तुम मेरी आवश्यकता अनुभव करो, मुझे याद कर लेना। याद करते ही मैं उपस्थित हो जाऊंगा।' वही मेरा सबसे बड़ा पुत्र है। अगर तुम मान जाओ तो मैं उसे ही बुलवा लूं। इस संकट की बेला में एक वही हमारी सहायता कर सकता है। बोलो, अब तुम्हारा क्या विचार है?''

सत्यवती वस्तुतः एक गंधर्व की पुत्री थी। एक दिन गंधर्व नदी के ऊपर से उड़ता जा रहा था, तभी उसका वीर्य नीचे टपका, जो नदी में तैरती एक मछली के मुंह में जा गिरा। इस प्रकार मछली ने सत्यवती को जन्म दिया, जिसे बाद में केवटराज ने पाल-पोसकर बड़ा किया। मछली के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण उसके शरीर में मछली की गंध व्याप्त थी।

भीष्म भला क्या उत्तर देते। यह तो अच्छा ही था कि व्यास कोई और नहीं, एक प्रकार से उनके भाई ही थे, वह भी विद्वान और शास्त्र ज्ञाता। वे धीरे से बोले, "अगर आप उचित समझती हैं तो व्यास को बुला लीजिए।"

सत्यवती की सारी चिंताएं पल भर में दूर हो गईं। उसने एकाग्र मन से अपने ज्येष्ठ पुत्र का स्मरण किया, व्यास पलक झपकते ही सामने उपस्थित हो गए।

व्यास बोले, “कहो माता! कैसे याद किया?”

सत्यवती बोली, “पुत्र! हमारे वंश पर संकट आ पड़ा है। अब तुम्हीं उस संकट से कुरु-वंश को उबार सकते हो।”

“आदेश दें माता! मैं सब कुछ करने के लिए तैयार हूं।”

“घर में दो-दो बहुएं हैं, परंतु राज्य उत्तराधिकार से वंचित है। विचित्रवीर्य निःसंतान ही मर गया और उसकी पत्नियां युवावस्था में ही वैधव्य भोग रही हैं। तुम विचित्रवीर्य के बड़े भाई हो, शास्त्रों में लिखा है कि मृत भाई की विधवाओं को दूसरा भाई चाहे तो सौभाग्य प्रदान कर सकता है। इसलिए तुम अंबिका व अंबालिका को अपनाओ और उन्हें संतान का सुख दो, जिससे कुरु-वंश का दीपक सदैव जगमगाता रहे।”

व्यास से अपनी माता का दुःख देखा नहीं गया। उन्होंने उसी क्षण अपनी स्वीकृति दे दी, परंतु कहा, “फिलहाल मेरी ऐसी स्थिति नहीं है कि मैं अंबिका और अंबालिका के सामने जा सकूं। मैं अपना वेश बदल लूं, तब उनसे मिलूंगा।”

“नहीं पुत्र!” सत्यवती बोली, “पहले ही काफी देर हो चुकी है, अब और विलंब करने की आवश्यकता नहीं। तुम इसी रूप में बहुओं से मिलो।”

“ठीक है माता!, जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा, लेकिन मेरी एक बात सुनो—दोनों बहुओं ने मेरे कुरूप मुख पर ध्यान दिए बिना मुझे सहयोग दिया तो उनसे गुणवान व रूपवान संतान उत्पन्न होगी।” व्यास ने कहा, “तुम दोनों बहुओं को तैयार करो, मैं इसी समय उनसे मिलूंगा।”

तब सत्यवती अपनी बड़ी बहू अंबिका के पास गई और आदेश दिया, “शीघ्रता से सोलह शृंगार करके शयनकक्ष में पहुंचो, विचित्रवीर्य का भाई व्यास तुम्हें संतान प्रदान करेगा। शास्त्रों में इसका विधान है...।”

अंबिका जानती थी कि वंश को बचाने का एकमात्र यही उपाय है, इसलिए उसने दुल्हन-सा शृंगार किया और शयनकक्ष में पहुंचकर व्यास की प्रतीक्षा करने लगी।

थोड़ी देर में व्यास ने वहां प्रवेश किया।

अंबिका ने उत्सुकता से दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा तो दंग रह गई। व्यास न सिर्फ कुरूप थे, बल्कि उनके कपड़े भी मैले-कुचैले थे, दाढ़ी और केश बड़े-बड़े थे, लग रहा था जैसे कई दिनों से उन्होंने स्नान भी न किया हो।

व्यास समीप पहुंचे तो अंबिका ने आंखें बंद कर लीं।

थोड़ी देर के बाद व्यास शयनकक्ष से बाहर निकले और सत्यवती से बोले, “अंबिका एक सुंदर बालक को जन्म देगी। वही इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा, किंतु वह बालक जन्म से अंधा होगा, क्योंकि अंबिका ने सहवास के समय अपनी आंखें बंद कर ली थीं।”

जन्मांध बालक! सत्यवती धक से रह गई।

सत्यवती ने व्यास से कहा, “पुत्र! तुम एक बार अंबालिका से भी मिल लो।”

माता के अनुरोध पर व्यास अंबालिका के पास भी गए।

अंबालिका भी शयनकक्ष में सोलह शृंगार किए बैठी थी, लेकिन उसने भी जैसे ही व्यास के दर्शन किए, डर के मारे पीली पड़ गई।

बाहर निकलकर व्यास ने माता को बताया, “अंबालिका को जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह वीर तो होगा, किंतु उसके शरीर का वर्ण पीला होगा।”

एक अंधा और एक पीला! बेचारी सत्यवती एक ओर जहां इस बात से प्रसन्न थी कि बहुएं पुत्रवती होंगी, वहीं उसे यह भी दुःख था कि दोनों पुत्र विकार-युक्त होंगे। वह तो एक ऐसा पुत्र चाहती थी, जो सर्वगुण संपन्न हो।

सत्यवती अंबिका से मिली और कहा, “पुत्री! यह तो बहुत बुरा हुआ। उचित यही है कि तुम एक बार फिर व्यास का संसर्ग प्राप्त करो। ध्यान रहे, इस बार तुम्हें व्यास को प्रसन्न कर देना है, ताकि जो पुत्र जन्म ले, वह हर दृष्टि से उत्तम हो।”

अंबिका मान तो गई, परंतु उसके मन से भय अभी गया नहीं था। पुनः व्यास के संसर्ग में जाने की कल्पना मात्र से वह सिहर उठी। उसने अपनी एक दासी से अनुरोध किया, “सखी! तुम्हीं इस व्यास से बचाओ, अन्यथा मैं तो मर जाऊंगी।”

“मुझे क्या करना है?” दासी ने पूछा।

“तुम मेरे वस्त्र पहनकर व्यास को प्रसन्न कर दो, बस।”

दासी मान गई और अंबिका के वस्त्र पहनकर वह शयनकक्ष में पहुंच गई।

उधर सत्यवती ने व्यास से एक बार फिर अंबिका से मिल लेने का अनुरोध किया। व्यास इस बार अंबिका के कमरे में पहुंचे तो दासी ने व्यास को पूरा सहयोग प्रदान किया। व्यास संतुष्ट हो गए, इसलिए आगे चलकर दासी को जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह विकारहीन और ज्ञानवान हुआ।

समयानुसार अंबिका ने जिस पुत्र को जन्म दिया, वह अंधा था, उसका नाम धृतराष्ट्र पड़ा। उसके बाद अंबालिका ने पीले वर्ण के पुत्र जन्म दिया, जिसका नाम पांडु था। दासी का विकारहीन पुत्र विदुर कहलाया। वह सचमुच सर्वगुण संपन्न था।

तीनों बालक महल में पलने लगे—सगे भाइयों की तरह।

तीनों की शिक्षा-दीक्षा एक साथ आरंभ हुई। शास्त्रों के अलावा अस्त्र-शस्त्र का भी उन्हें ज्ञान कराया गया। भीष्म की देखरेख में तीनों बालक बल, बुद्धि एवं ज्ञान के क्षेत्र में धीरे-धीरे विकसित होने लगे।

जब तीनों बड़े हुए तो धृतराष्ट्र बलशाली सिद्ध हुए, पांडु की धनुर्विद्या का मुकाबला करने वाला कोई नहीं रहा और विदुर धर्म, राजनीति व न्याय में अद्वितीय निकले।

ऐसे कुशल राजकुमारों को पाकर महात्मा भीष्म की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। अब राजकुमार विवाह योग्य हो गए थे, इसलिए भीष्म उनके लिए वधुओं की खोज में लग गए।

धृतराष्ट्र के लिए उन्होंने गांधार देश के राजा सुबल की कन्या गांधारी को पसंद कर लिया। जब गांधारी का धृतराष्ट्र से विवाह हो गया तो पति के अंधे होने के कारण गांधारी ने भी आजीवन अपनी आंखों पर पट्टी बांधे रखने का प्रण किया। जब पति ही दुनिया की बहार देखने से वंचित थे तो भला गांधारी को क्या अधिकार था कि वह खुली आंखों के साथ रहे। वह बहुत ही सुशील, धर्मपरायण व गुणवती थी।

चूंकि धृतराष्ट्र अंधे थे, इसलिए उन्होंने राज्याधिकार अपने छोटे भाई पांडु को सौंप दिया था। पांडु का विवाह दो कन्याओं से हुआ था—एक का नाम था माद्री व दूसरी का नाम कुंती।

कुंती राजा शूरसेन की पुत्री थी, जो श्रीकृष्ण के पितामह थे। कुंती का शैशवकाल कुंतिभोज के यहां बीता था। कुंतिभोज राजा शूरसेन के फुफेरे भाई थे और निःसंतान थे, इसलिए राजा शूरसेन ने अपनी पहली संतान कन्या पृथा कुंतिभोज को सौंप दी थी। यही कन्या पृथा आगे चलकर कुंती के नाम से जानी गई।

एक बार की बात है। कुंतिभोज के यहां ऋषि दुर्वासा का आगमन हुआ। कुंती ने उनकी विशेष सेवा की। इससे ऋषि दुर्वासा अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने कुंती को एक मंत्र सिखाया और बोले, “तुम जिस देवता का स्मरण करके यह मंत्र जपोगी, वह देवता तुम्हारे पास पहुंच जाएगा और तुम्हें तेजस्वी व तपस्वी पुत्र-रत्न का फल देगा।”

ऋषि दुर्वासा ने कुंती को यह मंत्र विद्या निरर्थक ही नहीं दी थी। वे जानते थे कि भविष्य में कुंती को इस मंत्र की आवश्यकता पड़ेगी।

ऋषि दुर्वासा तो यह वरदान देकर चले गए, परंतु कुंती की बाल बुद्धि मचलने लगी। सोचा, क्यों न इस मंत्र का प्रताप देखा जाए। बस, यह सोचते ही उसकी दृष्टि एकाएक आकाश की ओर उठ गई, जहां सूर्य तेजी से चमक रहा था। कुंती ने मंत्र का जाप करके सूर्य को याद किया। पलक झपकते ही सूर्य कुंती के सामने उपस्थित थे। कुंती ने तो हास्य-परिहास में सूर्य को बुलाया था। एकाएक उन्हें अपने सामने पाकर कुंती भयभीत हो गई, किंतु ऋषि दुर्वासा का वरदान विफल कैसे जाता, इसलिए सूर्य ने कहा, “कुंती! डरो मत, मैं तुम्हें पुत्र का फल देता हूं। यह पुत्र अत्यंत तेजस्वी व तपस्वी होगा। जन्म से ही वह कुंडल व कवच धारण करके उत्पन्न होगा। यही कुंडल व कवच उसे सदैव विपदाओं से बचाए रखेंगे।”

“ओह! किंतु एक कुंवारी कन्या पुत्र को जन्म देगी तो संसार क्या सोचेगा?”

“घबराओ मत, इस पुत्र के जन्म से तुम्हारा कौमार्य भंग नहीं होगा।”

यह कहकर सूर्य अंतर्धान हो गए।

यथासमय कुंती ने एक परम तेजस्वी शिशु को जन्म दिया, जो कुंडल व कवच धारण किए हुए था। समाज के भय से कुंती ने शिशु के जन्म लेते ही उसे नदी में बहा दिया।

यह शिशु नदी में नहा रहे अधिरथ को प्राप्त हुआ, जो कुरुराज का रथचालक (सारथी) था। अधिरथ निःसंतान था, इसलिए शिशु को पाकर उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। उसने शिशु का नाम वसुसेन रखा और बड़े लाड़-प्यार से उसका पालन-पोषण करने लगा। यही शिशु वसुसेन बड़ा होकर कर्ण के नाम से विख्यात हुआ।

उधर जब कुंती विवाह योग्य हुई तो स्वयंवर का आयोजन किया गया। स्वयंवर में राजकुमार पांडु भी पधारे थे। कुंती ने वरमाला उन्हीं के गले में डालकर उन्हें अपना आराध्य देव मान

लिया। पांडु ने कुंती के अलावा मद्र देश के राजा शल्य की बहन माद्री से भी विवाह किया।

तीसरे राजकुमार विदुर का विवाह राजा देवक की रूपवती कन्या पारशवी से संपन्न हुआ।

□□

एक अच्छे शासक के रूप में पांडु का बड़ा आदर था। चूंकि धृतराष्ट्र जन्म से अंधे थे, इसलिए पांडु को ही राजगद्दी पर बिठाया गया था। पांडु ने राजा बनते ही अपनी योग्यता का परिचय दिया। वे न्यायप्रिय और प्रजा वत्सल थे। इसके अलावा उन्होंने अनेक पड़ोसी राज्यों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। कई वर्षों तक लगातार अथक परिश्रम के बाद पांडु आराम करने के लिए हिमालय के शाल वन की ओर निकल गए।

उसी शाल वन में रहता था—हिरणों का एक जोड़ा। यह हिरण दंपति वस्तुतः ऋषि पति-पत्नी थे। एक बार जब वे शाल वन में काम-केलि में मग्न थे, तभी पांडु शिकार खेलने के उद्देश्य से वहां पहुंच गए। सामने जोड़े को देखकर उनका मन शिकार के लिए मचल उठा। उन्होंने धनुष संभाला और एक बाण छोड़ दिया, जो सीधे हिरण को जा लगा। हिरण उस समय भाव-विभोर था, बाण लगते ही धरती पर गिरकर छटपटाने लगा। उसने मरते-मरते पांडु को शाप दिया—

“यह तुमने अच्छा नहीं किया। अब तुम भी उसी पल मर जाओगे, जिस पल पत्नी के साथ सहवास करोगे।”

पांडु के पश्चाताप का अंत नहीं रहा। इस अभिशाप के बोझ तले अब वे कैसे जिएं! वे अत्यंत निराश और उदास हो गए। जीने की लालसा जाती रही। उन्हें एक ही चिंता थी, अब वंश की वृद्धि कैसी होगी? दो-दो पत्नियां होते हुए भी वे निःसंतान मर जाएंगे।

जब कुंती को पति के दुःख का कारण मालूम हुआ तो उसे तत्काल ऋषि दुर्वासा का वरदान याद हो आया। वह अभी ऋषि द्वारा प्रदान किया गया मंत्र भूली नहीं थी।

वह पांडु से बोली, “इतना निराश होने की आवश्यकता नहीं। देव! मुझे ऋषि दुर्वासा ने ऐसे मंत्र से अभिषिक्त कर दिया है कि मैं मनचाहा पुत्र प्राप्त कर सकती हूँ।”

“वह कैसे?” पांडु ने चौंककर पूछा।

इस पर कुंती ने अपनी पूरी कहानी सुना दी और यह भी बता दिया कि किस प्रकार खेल-खेल में सूर्यदेव से उसने सौभाग्य प्राप्त किया था।

पांडु के हर्ष का ठिकाना न रहा। वे भाव-विह्वल होकर बोले, “भगवान का कोटि-कोटि धन्यवाद है कि हम निःसंतान नहीं रहेंगे। हमारा वंश भी आगे बढ़ेगा। कुंती! मेरी अच्छी भार्या! तुम विलंब मत करो, शीघ्र ही पिता बनने का सुख दो। सबसे पहले तुम मंत्र से मृत्यु के देव यम का आह्वान करो, वे न्याय व सत्य के प्रतीक हैं। उनके द्वारा प्रदत्त पुत्र हमारे वंश का नाम गौरवान्वित करेगा।”

उसी दिन कुंती ने पुत्र प्राप्ति की तैयारियां शुरू कर दीं। अपने कक्ष में जाकर उसने यम देव का स्मरण करते हुए मंत्र उच्चारित किया। अगले पल ही यमदेव कुंती के सामने उपस्थित हो गए। कुंती ने हाथ जोड़कर उनसे अपनी इच्छा प्रकट कर दी।

यम ने वरदान देकर कहा, “एवमस्तु! कुंती! तुम्हारा यह पुत्र मानवों में श्रेष्ठ, ईमानदार, सत्यप्रिय और वीर होगा। यह युधिष्ठिर कहलाएगा अर्थात् युद्ध का विजेता।”

समयानुसार कुंती को जो पहला पुत्र उत्पन्न हुआ, वह सचमुच इन्हीं गुणों से परिपूर्ण था।

दूसरी बार कुंती ने वायु का आह्वान किया, क्योंकि पांडु दूसरा पुत्र ऐसा चाहते थे, जो क्षत्रिय कुल की संतान की प्रकार शारीरिक रूप से अत्यंत वीर एवं बलिष्ठ हो। वायु ने कुंती को ऐसा ही पुत्र प्रदान किया। इस बालक की शारीरिक क्षमता का इसी से पता चलता है कि जब माता के साथ लेटे-लेटे बचपन में उसने करवट बदली तो हल्का-सा भूकंप आ गया था। वह भीम कहलाया।

दूसरे पुत्र की प्राप्ति के बाद पांडु ने कुंती से कहा, “अब हमें ऐसा पुत्र मिले जो अस्त्र-शस्त्र संचालन में अद्वितीय हो, कोई भी उसकी वीरता का मुकाबला न कर सके।”

इसलिए कुंती ने इस बार देवाधिदेव इंद्र की स्तुति की। इंद्र ने प्रकट होकर कुंती की मनोकामना पूर्ण की। जब कुंती ने तीसरे पुत्र को जन्म दिया तो आकाशवाणी हुई, “यह ऐसा पुत्र है जिसकी शक्ति, वीरता, बुद्धिमत्ता और अस्त्र-संचालन के ज्ञान का कोई मुकाबला नहीं कर सकेगा। यह कुरु वंश का नाम रोशन करेगा।”

माता-पिता ने अपने इस पुत्र का नाम अर्जुन रखा। इंद्र ने अर्जुन को जो वीरता का अद्वितीय गुण प्रदान किया था, वह इसलिए कि सूर्यदेव के पुत्र कर्ण के पास अजेय कवच और कुंडल थे। इंद्र अपने पुत्र को प्रत्येक विपदा से बचाकर रखना चाहते थे।

कुंती तो तीन-तीन पुत्रों की माता बन चुकी थी, जबकि माद्री अभी तक निःसंतान थी। कुंती तीन पुत्रों से ही संतुष्ट हो गई थी। वह आगे अब कोई संतान नहीं चाहती थी, जबकि पांडु और पुत्रों के इच्छुक थे। उधर माद्री की भी इच्छा थी कि वह भी माता बने। इसलिए वह कुंती से मिली और बोली, “कुंती बहन! मेरी कोख सूनी रहेगी? मुझे भी माता बनने का सौभाग्य प्राप्त करने दो।”

सच था, माता बने बिना हर नारी अधूरी होती है। माद्री की मनोव्यथा कुंती से सही नहीं गई, इसलिए उसने माद्री के लिए भी मंत्र के बल पर अश्विनी कुमार को बुलाया। अश्विनी से उसे दो जुड़वां पुत्र-रत्न प्राप्त हुए— नकुल और सहदेव। ये पांचों भाई पांडव कहलाए।

उधर धृतराष्ट्र और गांधारी को पूरे सौ पुत्र प्राप्त हुए। इन पुत्रों के अलावा उनकी 13 पुत्रियां भी थीं। ये सौ पुत्र कौरव कहलाए। इनके सबसे बड़े पुत्र का नाम था— दुर्योधन।

घटनाओं ने कुछ ऐसा मोड़ लिया कि कुंती-पुत्र कर्ण दुर्योधन का घनिष्ठ मित्र बन गया था। दुर्योधन ने उसे अंगदेश का राजा घोषित कर दिया।

इंद्र अपने पुत्र अर्जुन को हर संकट से बचाकर रखना चाहते थे। अर्जुन को सबसे ज्यादा डर कर्ण से ही था, क्योंकि सूर्य ने उसे जीवनरक्षक कुंडल और कवच दे रखे थे। इंद्र किसी भी प्रकार ये कुंडल और कवच प्राप्त कर लेना चाहते थे।

कर्ण महादानी था। वह कभी भी अपने महल के द्वार से किसी याचक को खाली हाथ नहीं भेजता था।

एक दिन इंद्र बूढ़े ब्राह्मण का वेश धरकर कर्ण के पास पहुंच गए। कर्ण ने उसे देखते ही पहचान लिया कि यह और कोई नहीं, स्वयं देवाधिदेव इंद्र हैं।

कर्ण ने अनभिज्ञ होकर पूछा, “आओ, ब्राह्मणदेव! कैसे कष्ट किया?”

“जो मांगूंगा मिलेगा?” इंद्र ने पूछा।

“अवश्य, आदेश दीजिए...।”

“तुम्हारे ये कुंडल-कवच बड़े अच्छे हैं, इन्हें मुझे दे दो।”

कर्ण ने तनिक भी विलंब नहीं किया, तत्काल कवच-कुंडल उतारकर बूढ़े ब्राह्मण को सौंप दिए।

इंद्र कर्ण की दानवीरता से अवाक् रह गए।

इंद्र प्रसन्तापूर्वक बोले, “धन्य हो कर्ण! मैं तुम्हारी दानवीरता से बहुत प्रसन्न हुआ। मैं इंद्र हूं, मुझसे कोई कोई वर मांगो।”

कर्ण भला क्या मांगता! फिर भी इंद्र के बार-बार अनुरोध करने पर कर्ण बोला, “मैं तो क्षत्रिय हूं, अतः मुझे आप अपना ‘शक्ति’ नामक अमोघ अस्त्र प्रदान कीजिए, जिससे कोई भी शत्रु युद्ध में मेरा मुकाबला न कर सके।”

“एवमस्तु!” इतना कहकर इंद्र ने अपना अमोघ अस्त्र कर्ण को दे तो दिया, साथ ही यह भी कहा, “कर्ण! इस अस्त्र का उपयोग तुम मात्र एक बार ही कर सकोगे। इसलिए इसका तभी प्रयोग करना, जब इसकी विशेष आवश्यकता अनुभव हो। इसके बाद यह अस्त्र मेरे पास वापस लौट आएगा। इसकी शक्ति अपार है। जिस पर भी इसका वार करोगे, वह अवश्य मारा जाएगा।”

कर्ण अमोघ अस्त्र पाकर प्रसन्न हो गया, पर विधि की विडंबना! महाभारत के युद्ध में ऐसा हुआ कि वह उसका गलत उपयोग कर बैठा और परशुराम से प्राप्त अन्य शक्तिशाली अस्त्र को चलाने की विधि ही भूल गया।

कर्ण की इच्छा थी कि वह परशुराम से भी युद्ध विद्या सीखे। वह परशुराम से ब्रह्मास्त्र की विद्या सीखना चाहता था, लेकिन कठिनाई यह थी कि परशुराम को क्षत्रियों से घृणा थी, वे तो क्षत्रियों का समूल नाश करना चाहते थे। हां, ब्राह्मणों को वे अवश्य अपना शिष्य बनाते थे। इसलिए कर्ण भी ब्राह्मण का वेश धारण कर परशुराम के पास गया और उनका शिष्यत्व प्राप्त किया।

एक दिन की बात है कि परशुराम कर्ण की जांघ पर सिर रखकर सो रहे थे। वे गहरी नींद में थे, तभी कर्ण की जांघ पर एक काला भंवरा आकर बैठ गया और जांघ में छेद करने लगा। इससे कर्ण को अत्यंत पीड़ा होने लगी, लेकिन वह तनिक भी नहीं हिला। उसे डर था कि अगर हिलने-डुलने की चेष्टा की अथवा भंवरे को उड़ाने का प्रयास किया तो परशुराम की नींद भंग हो जाएगी। भंवरा कर्ण की जांघ को कुतरता हुआ अंदर घुसता जा रहा था। इससे रक्त बहने लगा था।

तभी परशुराम की नींद भंग हो गई। कर्ण की जांघ से बहता हुआ रक्त देखा तो वे चौंक पड़े। कर्ण की जांघ में काला भंवरा गड्ढा बना रहा था और कर्ण अविचल बैठा था। वे तत्काल समझ गए कि कर्ण ब्राह्मण नहीं हो सकता।

उन्होंने पूछा, “सच बताओ, तुम कौन हो? तुम ब्राह्मण नहीं हो सकते, क्योंकि ब्राह्मण इतनी पीड़ा नहीं सह सकता। क्या तुम क्षत्रिय हो?”

कर्ण झूठ कैसे बोलता! उसे स्वीकार करना पड़ा कि वह क्षत्रिय है।

परशुराम क्रोध से बोले, “यह तुमने ठीक नहीं किया। गुरु से झूठ बोलकर तुमने पाप किया है। तुमने जिस ब्रह्मास्त्र की विद्या पाने के लिए यह छल-बल किया है, उसी ब्रह्मास्त्र को उस समय चलाना भूल जाओगे, जब तुम्हें उसकी परम आवश्यकता होगी।”

हुआ भी ऐसा ही। महाभारत के युद्ध में वह ब्रह्मास्त्र की विद्या भूल गया और अर्जुन के तीर से मारा गया।

□□

पांडु का आकमिस्क अंत बहुत दुखद था—ठीक कामातुर हिरण की भांति।

वसंत का मौसम था।

एक दिन पांडु माद्री के साथ वन-भ्रमण के लिए निकले थे। चारों ओर बसंती बयार बह रही थी और डाल-डाल पर फूल खिले थे। ऐसे वातावरण का पांडु पर बड़ा उत्तेजित प्रभाव हुआ। वे हिरण के अभिशाप को भूल गए और प्रेम करने को उनका हृदय मचलने लगा। उन्होंने माद्री को अपने आलिंगन में भर लिया।

सहवास के दौरान पांडु की मृत्यु हो गई।

माद्री को इससे बहुत दुःख हुआ। उसने अपने दोनों पुत्रों— नकुल और सहदेव को कुंती के जिम्मे छोड़ दिया और स्वयं पति के साथ ही चिता में मृत्यु का वरण किया।

□□

धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने जब दुर्योधन को जन्म दिया, तब भारी अपशकुनों के लक्षण दिखाई दिए थे। भविष्यवक्ताओं ने धृतराष्ट्र एवं गांधारी को चेतावनी दी कि बचपन में ही उसे

त्याग दें, अन्यथा आगे चलकर विनाश हो सकता है, लेकिन धृतराष्ट्र व गांधारी अपने पुत्र का मोह त्याग न सके और आजीवन साथ रखा।

जब सत्यवती को पता चला कि दुर्योधन से वंश पर कोई विनाश का भय आ सकता है, तब वह अपनी बहुओं— अंबिका व अंबालिका के साथ महल त्यागकर वन गमन कर गईं। वहीं तपस्या करते हुए वे तीनों मृत्यु को प्राप्त हुईं।

(तीन)

पांडु और माद्री की मृत्यु के पश्चात् कुंती पांचों पुत्रों— युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव के साथ शाल-वन से वापस हस्तिनापुर आ गई।

धृतराष्ट्र ने अपने सौ पुत्रों के साथ इन पांच भतीजों को भी समान रूप से स्नेह दिया। सभी भाई बिना किसी भेदभाव के राजमहल में पलने लगे।

कुछ बड़े होने पर राजकुमारों की उचित शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध किया गया। भीष्म की देखभाल में वे शास्त्रों और अस्त्रों की विधिवत शिक्षा ग्रहण करने लगे।

खेल-कूद के दौरान भीमसेन अपनी शरारतों से बाज नहीं आता था। वह शरीर से सबसे बलवान था। इसलिए जब भी अवसर मिलता, कौरव भ्राताओं से छेड़खानी अवश्य करता। विशेषकर दुर्योधन को परेशान करने में भीम को बड़ा आनंद आता। कभी तो वह उसे जानबूझकर भूमि पर पटक देता या कभी वृक्ष पर चढ़ता तो वृक्ष को बुरी प्रकार हिलाकर उसे नीचे गिरा देता।

दुर्योधन भीम की इन क्रियाओं से मन-ही-मन क्रोधित हो गया था। वैसे भी उसे पांडु पुत्रों से कोई लगाव नहीं था। अब उनका बल देखकर वह सदैव भयभीत रहता था कि कहीं वे उनसे आगे न बढ़ जाएं या कहीं ऐसा न हो कि एक दिन वे राज्य को छीनने का प्रयास करें। उसने तय कर लिया कि वह भीम को अवश्य मजा चखाएगा।

एक दिन राजकुमार नौका विहार के लिए निकले। नदी तट पर खाना खाते समय दुर्योधन ने भीम के खाने में विष मिला दिया। विष के प्रभाव से वह बेहोश हो गया। जब खा-पीकर सभी आगे बढ़ गए तो दुर्योधन ने चुपके से बेहोश भीम को नदी में गिरा दिया।

भीम बेहोशी की हालत में नागलोक जा पहुंचा, जहां सांप उसे घेरकर काटने लगे। विष ही विष को मारता है। सांपों के काटने का परिणाम यह निकला कि भीम का विष उतर गया। होश में आते ही उसने आसपास विचरते हुए सर्पों का नाश करना आरंभ कर दिया।

भीम का यह साहस देखकर सर्प घबराए। वे अपने रजा वासुकि के पास पहुंचे। तब वासुकि स्वयं भीम से मिले। उन्होंने भीम को देखते ही पहचान लिया। भीम के नाना कुंतिभोज वासुकि के संबंधी (धेवते) थे। उन्होंने भीम को एक ऐसी औषधि दी, जिससे भीम विष के प्रभाव से तो सर्वथा मुक्त हो ही गया, साथ ही उसमें अपार शक्ति भी आ गई।

इस प्रकार भीम पहले से अधिक शक्तिशाली होकर हस्तिनापुर लौटा। वह दुर्योधन की धूर्तता भांप चुका था। उसने अपने भाइयों को दुर्योधन से सावधान कर दिया।

भीष्म राजकुमारों को हर प्रकार से दक्ष करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने राजकुमारों को उचित शिक्षा-दीक्षा के लिए एक गुरु की नियुक्ति कर दी। उनका नाम था द्रोणाचार्य।

द्रोणाचार्य ब्राह्मण थे। यह विधि की विडंबना थी कि उन्हें क्षत्रिय-कर्म अपनाना पड़ा और युद्ध कला में पारंगत होना पड़ा। वस्तुतः उन्हें अपने अपमान का प्रतिशोध लेना था और वह भी उससे, जो कभी उनका बाल मित्र था। वे धृतराष्ट्र एवं पांडु के पुत्रों को शास्त्रों और अस्त्रों की विधिवत शिक्षा देने लगे। राजकुमारों के साथ-साथ द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा को भी शिक्षा देते थे।

द्रोणाचार्य बहुत योग्य गुरु थे। उन्होंने राजकुमारों को पहला पाठ सिखाने से पूर्व कहा था, “राजकुमारो! मेरी बात सुनो, मुझे वचन दो कि जब तुम लोगों की शिक्षा पूर्ण हो जाए तो मेरी एक इच्छा पूर्ण करोगे।”

सभी मौन, लेकिन अर्जुन से मौन नहीं रहा गया। वह उत्साह से बोला, “मैं आपकी इच्छा अवश्य पूर्ण करूंगा।”

अर्जुन के उत्तर से द्रोणाचार्य बड़े प्रसन्न हुए। वैसे तो वे सबसे एक समान व्यवहार करते थे, लेकिन अर्जुन के ऊपर उनका विशेष अनुराग रहने लगा।

दुर्योधन से गुरु का यह पक्षपात छिपा नहीं रहा। वह देख कर रहा था कि गुरु अर्जुन को अतिरिक्त लगन से सिखाते हैं। पुत्र अश्वत्थामा के प्रति भी गुरु का विशेष झुकाव था।

द्रोणाचार्य अपने पुत्र को अलग से सबसे छिपाकर भी युद्धाभ्यास कराते थे, ताकि वह राजकुमारों से अस्त्र-संचालन में पीछे न रह जाए। अर्जुन को जब यह पता चला तो वह भी सबकी नजरों से बचकर यह सब सीखता। इसका परिणाम यह हुआ कि अर्जुन अतिशीघ्र अस्त्र-शस्त्रों में पारंगत होने लगा। निशाने पर तीर मारना, तलवारबाजी के घातक दांव-पेंच व घुड़सवारी में अर्जुन सभी राजकुमारों से आगे निकल गया।

□□

द्रोणाचार्य अपनी युवावस्था में अग्निवेश आश्रम में शिक्षा ग्रहण करते थे। आश्रम में उनके साथ पांचाल नरेश पृष्ठ का पुत्र द्रुपद भी अध्ययन करता था। द्रोण एवं द्रुपद में गहरी मित्रता थी।

शिक्षा समाप्ति के बाद जब वे एक-दूसरे से विदा हुए तो द्रोण ने कहा, “बंधु! मुझे भुला तो नहीं दोगे?”

“कैसी बातें करते हो, मित्र!” द्रुपद ने उत्तर दिया, “भला शैशव काल की मित्रता कोई भुला पाता है। सुनो, जब मैं पांचाल देश का राजा बनूंगा, तब तुम्हें किसी भी समय मेरी सहायता की आवश्यकता पड़े तो निःसंकोच मेरे पास चले आना। मैं तुम्हारी हरसंभव सहायता करूंगा।”

यह कहकर द्रुपद तो पांचाल चला गया और कालांतर में पिता की मृत्यु के पश्चात् पांचाल देश का राजा भी बन गया, किंतु इधर द्रोण के दिन संकट में बीत रहे थे।

द्रोण का विवाह महर्षि शरद्वान की पुत्री कृपी से हुआ था।

महर्षि शदद्वान तपस्वी थे और उन्होंने अपनी तपस्या निर्विघ्न पूरी करने के लिए अपने पुत्र कृप व पुत्री कृपी को छोटी आयु में ही वन में छोड़ दिया था, जिनका पालन शांतनु ने किया था। नन्हे कृप व कृपी को शांतनु का एक सेवक वन से उठा लाया था। बाद में जब महर्षि शरद्वान को पता चला कि उनकी संतान शांतनु के यहां पल रही हैं तो उन्होंने वहां जाकर अपनी संतान को शस्त्र-संचालन और युद्ध-कला सिखाई। बाद में कृपी का विवाह द्रोण से संपन्न करा दिया।

विवाहोपरांत द्रोण की स्थिति नहीं सुधरी। कृपी से उन्हें अश्वत्थामा नामक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी, परंतु वे भली-भांति उसका लालन-पालन नहीं कर पाते थे। दूसरे बच्चों को तो दूध मिलता था, किंतु जब उनका पुत्र भूख से बिलखता था तो वे विवश हो उसे आटा घोलकर पिला देते थे। इस दयनीय स्थिति से उनका दिल रोता था, किंतु लाचारी में हाथ मलने के सिवा कोई चारा नहीं था।

ऐसे अवसर पर एक दिन उन्हें अपने बचपन के मित्र और सहपाठी द्रुपद की याद आ गई, जो आजकल पांचाल का राजा बना हुआ था। द्रुपद ने विदा होते समय जो कुछ कहा था, उसे याद कर उन्हें तनिक भी संदेह नहीं रहा कि अगर उससे सहायता की याचना की जाए तो वह इनकार नहीं करेगा। द्रोण को अधिक कुछ नहीं चाहिए था, वे तो अपने पुत्र अश्वत्थामा के लिए एक गाय चाहते थे।

बस, वे पांचाल के लिए चल पड़े।

द्रुपद के महल के पास पहुंचकर जैसे ही उन्होंने अंदर प्रवेश करना चाहा, द्वारपालों ने उन्हें रोक दिया। बोले, “कौन हो भाई! कैसे अंदर घुसे जा रहे हो?”

द्रोण ने बड़ी विनम्रता से कहा, “देखिए! मैं पांचाल नरेश से मिलना चाहता हूं। द्रुपद मेरा बचपन का मित्र है।”

“बचपन का मित्र है!” द्वारपाल व्यंग्य से बोले, “जाओ भइया, जाओ! यहां तुम्हारी भांति अनेक लोग मित्र बनकर आते हैं।”

द्रोण ने कहा, “बस, आप द्रुपद से जाकर मात्र यह कहिए कि उसका सहपाठी द्रोण आया है। अगर वह मुझसे मिलना चाहेगा तो बुला लेगा, अन्यथा मैं वापस चला जाऊंगा।”

“अच्छा! तुम यहीं ठहरो, हम उन्हें तुम्हारे आने की सूचना देते हैं।”

इतना कहकर एक द्वारपाल महल के अंदर चला गया।

द्रोण महल के मुख्य द्वार पर उत्सुकता से द्वारपाल के वापस आने की प्रतीक्षा करने लगा। वहां खड़े-खड़े द्रोण को शाम हो गई, तब जाकर द्वारपाल ने आकर कहा, “जाओ, तुम्हें राजा ने अंदर बुलाया है।”

द्रोण ने दो रक्षकों से घिरकर महल में प्रवेश किया, जैसे वे कारागार के बंदी हों।

दरबार में द्रुपद ऊंचे सिंहासन पर गर्व से बैठा था। चारों ओर दरबारी खड़े थे। उनके बीच द्रोण राजा के सामने ऐसे खड़े थे, जैसे कोई दीन-हीन भिखारी हो।

द्रुपद उन्हें अनभिज्ञों की प्रकार घूरकर देख रहा था, फिर पूछा, “क्या मैं जान सकता हूं कि तुम कौन हो और यहां क्या करने आए हो?”

द्रोण तो एकदम आसमान से गिरे। उन्हें ऐसे प्रश्न की आशा नहीं थी। वे धीरे से बोले, “क्या तुम मुझे भूल गए? मैं द्रोण हूं, तुम्हारा बचपन का मित्र।”

द्रुपद ने घृणा से द्रोण की ओर देखा और मुंह बिगाड़कर बोला, “क्या बकते हो? मैं तुम्हारा मित्र? तुम होश में हो कि नहीं।”

द्रोण अपमान से जड़ हो गए। सभी लोग नेत्रों में आश्चर्य और व्यंग्य भरकर द्रोण की ओर देख रहे थे। द्रोण यहां आकर पछता रहे थे।

अंतिम प्रयास करते हुए द्रोण बोले, “द्रुपद! याद करो, तुमने आश्रम छोड़ते समय मुझसे क्या कहा था। क्या बचपन की मित्रता इतनी शीघ्र भूल गए?”

द्रुपद ने उत्तर दिया, “सुनो ब्राह्मण! मित्रता बराबर वालों से होती है। मैं पांचाल नरेश हूँ और तुम हो याचक ब्राह्मण। भला हमारी-तुम्हारी कैसी मित्रता!”

द्रोण ने सुना और मौन रहे। वे समझ गए कि द्रुपद राजा बनकर अहं से सारी सहृदयता भुला बैठा है। ऐसे प्राणी से सहयोग की आशा रखना व्यर्थ था। वे चुपचाप जाने को उद्यत हुए।

द्रुपद बोला, “ठहरो ब्राह्मण! तुम हमारे यहां याचक बनकर आए हो, हम तुम्हें ऐसे नहीं जाने देंगे। हमसे मित्रता की उम्मीद मत रखो, किंतु तुम्हें कुछ भेंट अवश्य मिलेगी।”

इतना कहकर द्रुपद ने एक दरबारी को कुछ आदेश दिया, फिर द्रोण से कहा, “याद रखो, स्थाई मित्रता नाम की कोई वस्तु नहीं होती। यह तुम्हारा बचपना है। कभी स्थितियों ने हमें एक-दूसरे के समीप ला दिया था, किंतु उस समीपता के रिश्ते को हमेशा कायम नहीं रखा जा सकता, क्योंकि स्थितियां बदल चुकी हैं। समय बड़ा बलवान है।”

मनुष्य ऊंचा पद पाकर इतना निष्ठुर हो सकता है, द्रोण को विश्वास नहीं हो रहा था। इस स्थिति में द्रोण यह बताना भी भूल गए कि वे क्यों आए हैं, न उन्हें गाय मांगने का स्मरण रहा और न ही उन्होंने अपने पुत्र अश्वत्थामा का वर्णन किया। द्रोण विश्वास नहीं कर पा रहे थे कि सामने ऊंचे सिंहासन पर बैठा व्यक्ति वही है, जिसके साथ वे बचपन में एक ही आश्रम में पढ़ते थे और वन में खेला करते थे।

तभी एक दरबारी द्रोण के लिए भेंट लेकर आ पहुंचा। द्रोण का पूरा शरीर क्रोध से कांप रहा था। उन्होंने भेंट को ठोकर मारकर तीव्र स्वर में कहा, “द्रुपद! मैं जा रहा हूँ, किंतु याद रखना कि एक दिन ऐसा अवश्य आएगा, जब मैं आज के अपमान का बदला लूंगा। सचमुच समय बड़ा बलवान होता है।”

यह कहकर द्रोण महल से निकल आए थे।

इसके बाद द्रोणाचार्य जीविका के लिए कई जगह भटके। इसी दौरान उनकी भेंट भीष्म पितामह से हुई और उन्होंने राजकुमारों को शस्त्रास्त्र चालन सिखाने का भार उनको सौंप दिया।

वे अभी तक द्रुपद के अपमान को भूले नहीं थे। बस, उन्हें प्रतीक्षा थी तो अवसर की।

□□

राजकुमारों को, विशेष रूप से अर्जुन को युद्ध-कला में सुयोग्य बनाने के लिए द्रोण किसी को भी आगे नहीं बढ़ने देना चाहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि एक निर्धन युवक, जो अत्यंत मेधावी था, को भी द्रोण ने अपना शिष्य नहीं बनाया। अगर उसे शिष्य बनाते तो वह आगे चलकर सब राजकुमारों से आगे बढ़ सकता था। द्रोण ने एक दृष्टि में ही यह भांप लिया कि युवक कुशाग्र बुद्धि है।

वह युवक भी कम नहीं निकला। द्रोण से निराश होकर उसने ऐसा चमत्कार कर दिखाया कि बाद में स्वयं द्रोण भी आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सके।

वह युवक और कोई नहीं, निषाद पुत्र एकलव्य था।

एक दिन की बात है। सभी राजकुमार आखेट के लिए वन में गए। बहुत दूर निकल जाने के बाद उन्होंने देखा कि वन में एक युवक धनुष-बाण का अभ्यास कर रहा है। राजकुमारों के साथ था— एक कुत्ता। उसने जैसे ही वन में एक अनभिज्ञ युवक को देखा, वह भौंकने लगा।

कुत्ते के भौंकने से एकलव्य की साधना में विघ्न हुआ। उसने धनुष-बाण कुत्ते की ओर किया और एक के बाद एक लगातार सात बाण छोड़ दिए, जो सरसराते हुए कुत्ते के मुंह में जाकर बिंध गए। इससे कुत्ते का भौंकना बंद हो गया। आश्चर्य की बात यह थी कि कुत्ते के मुंह से रक्त की एक भी बूंद नहीं टपकी थी।

सभी राजकुमार चकित रह गए। वे दौड़े-दौड़े उसके पास गए। अर्जुन ने पूछा, “तुम कौन हो?”

“मैं निषाद पुत्र एकलव्य हूँ।”

“तुम तीर तो खूब चला लेते हो, कौन हैं तुम्हारे गुरु?”

“मैं द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ।”

एकलव्य का यह उत्तर सुनकर अर्जुन का हृदय बैठ गया। भला इस वनवासी युवक को गुरु द्रोणाचार्य ने अपना शिष्य कैसे बना लिया? और अगर बना भी लिया तो तीरंदाजी में सिद्धहस्त कैसे कर दिया, जबकि एकमात्र अर्जुन ही उनका प्रिय शिष्य था।

हस्तिनापुर वापस आकर उसने गुरुदेव से भेंट की और बोला, “यह कैसा न्याय है गुरुदेव! आपने तो कहा था कि आप मात्र राजपुत्रों को ही शिष्य बनाएंगे, फिर एक निषाद पुत्र को शिष्य बनाने का क्या अर्थ है?”

“निषाद पुत्र? मेरा शिष्य?” द्रोणाचार्य ने आश्चर्य से पूछा, “यह क्या कह रहे हो पार्थ!”

“मैं ठीक ही कह रहा हूँ आचार्य!” अर्जुन बोला, “मैं उसे अभी-अभी वन में देखकर आ रहा हूँ। ऐसा पटु तीरंदाज मैंने आज तक नहीं देखा। आप तो कहते थे कि मैं ही आपका प्रिय शिष्य हूँ, फिर निषाद पुत्र पर इतना प्रेम क्यों? उसने स्वयं बताया है कि आप ही उसके गुरु हैं।”

द्रोणाचार्य कुछ सोचकर बोले, ‘चलो, मुझे भी दिखाओ, कौन है वह तीरंदाज, जो मेरा शिष्य होने का दावा करता है।’

अर्जुन गुरुदेव को साथ लेकर वन में पहुंचा।

द्रोणाचार्य को देखते ही एकलव्य उनके चरणों में गिर पड़ा।

द्रोणाचार्य बोले, “उठो एकलव्य! यह बताओ कि तुमने मेरा शिष्यतत्त्व कैसे ग्रहण किया?”

“गुरुदेव!” एकलव्य ने हाथ जोड़कर कहा, “जब आपका सान्निध्य पाने से मैं वंचित रहा तो वन में आकर आपकी प्रतिमा बनाई और उसी के सामने तीरंदाजी का अभ्यास करने

लगा।”

द्रोणाचार्य सोच में पड़ गए, जो युवक मात्र गुरु की प्रतिमा से प्रेरणा पाकर इतनी सफल धनुर्विद्या सीख सकता है, वह आगे चलकर उच्च स्तरीय धनुर्धर बन सकता है। क्या पता कि वह अर्जुन और अश्वत्थामा से भी दो पग आगे बढ़ जाए। ऐसा द्रोणाचार्य चाहते नहीं थे। इससे उनकी साख को आंच पहुंच सकती थी। उन्होंने निर्णय कर लिया कि एकलव्य को तीरंदाजी में एकदम विफल कर देंगे। तीरंदाजी अंगूठे के बल पर चलती है, इसलिए द्रोणाचार्य कुछ सोचकर बोले, “तुमने मुझे अपना गुरु माना है, परंतु दक्षिणा तो कुछ दी नहीं।”

“आज्ञा कीजिए गुरुदेव!” एकलव्य नतमस्तक होकर बोला, “मेरे प्राण भी प्रस्तुत हैं।”

“मुझे तुम अपने दाहिने हाथ का अंगूठा दक्षिणा में दे दो।”

इतना जटिल आदेश सुनकर एकलव्य तनिक भी विचलित नहीं हुआ, “जो आज्ञा।” यह कहकर अपने उसने दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर गुरुदेव के चरणों में रख दिया।

इस प्रकार अर्जुन का मार्ग प्रशस्त करके द्रोणाचार्य वापस चले आए।

एकलव्य भी धुन का पक्का था। दाहिने हाथ के निष्क्रिय हो जाने के बाद उसने पांव के अंगूठे से धनुष विद्या का अभ्यास जारी रखा।

□□

समस्त राजकुमारों की शिक्षा ठीक-ठाक चल रही थी। द्रोणाचार्य मन लगाकर परिश्रम कर रहे थे। एक दिन द्रोणाचार्य ने सोचा, “तनिक इनकी परीक्षा लेनी चाहिए, ताकि पता चले कि इन राजकुमारों ने क्या कुछ सीखा है।”

द्रोणाचार्य परीक्षा की तैयारी में लग गए।

उन्होंने एक वृक्ष पर नकली चिड़िया बिठा दी, जिसका मात्र सिर ही दिखाई दे रहा था। सब राजकुमारों को बुलाकर उन्होंने उनसे कहा, “तुम सब वृक्ष की ओर ध्यान से देखो।”

सबकी दृष्टि वृक्ष की ओर उठ गई।

द्रोणचार्य ने दुर्योधन से पूछा, “तुम्हें वृक्ष में क्या दिखाई दे रहा है?”

दुर्योधन बोला, “वृक्ष, पत्ते, डालियां...।”

द्रोणचार्य ने अन्य राजकुमारों को बुलाकर पूछा, “तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है?”

“आकाश...बादल...।” राजकुमारों ने उत्तर दिया।

द्रोणचार्य ने इस प्रकार एक-एक करके सभी राजकुमारों से यही प्रश्न पूछा। सभी ने चिड़िया के अलावा अनेक वस्तुओं के नाम गिनाए। अब द्रोणचार्य ने अर्जुन को बुलाया और पूछा, “हे अर्जुन! तुम्हें वृक्ष में क्या दिखाई दे रहा है?”

अर्जुन ने वृक्ष की ओर देखा और बोला, “एक चिड़िया!”

“कितना अंश दिखाई दे रहा है?”

“मात्र उसका सिर।”

“हूं, उस पर तीर से वार करो।”

इतना सुनना था कि अर्जुन ने कमान पर तीर चढ़ाया और खींचकर तीर छोड़ दिया। तीर एक झटके से चिड़िया के सिर पर जा लगा और सिर का हिस्सा कटकर धरती पर आ गिरा।

अर्जुन परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका था। द्रोण ने हर्षित होकर अर्जुन को अपने आलिंगन में ले लिया। वे बोले, “यही है वास्तविक युद्धक की पहचान। जो अपने लक्ष्य को तत्काल पहचान लेता है, वह कभी पराजित नहीं होता।”

(चार)

अर्जुन की अचूक निशानेबाजी का शीघ्र ही एक और उदाहरण द्रोणाचार्य को प्राप्त हुआ।

एक बार द्रोणाचार्य नदी में नहा रहे थे। एकाएक एक मगरमच्छ ने द्रोणाचार्य की जांघ मुंह में पकड़ ली। द्रोणाचार्य छटपटाने लगे। गुरु के प्राण विपदा में देखकर अर्जुन ने एक के बाद एक पांच तीरों से मगरमच्छ को मार डाला और द्रोणाचार्य की प्राणरक्षा की।

द्रोणाचार्य अर्जुन की इस बहादुरी से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, “वत्स अर्जुन! तुमने आज मेरी जान बचाई है, इसलिए मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें एक विशेष अस्त्र दे रहा हूँ।” फिर उस अस्त्र को चलाने की विधि समझाते हुए वे बोले, “ध्यान रहे कि यह अस्त्र अत्यंत भयंकर है। जब तुम पर किसी घातक ब्रह्मास्त्र से हमला किया जाए, तब इस अस्त्र का प्रयोग करना। किसी छोटे अस्त्र के विरुद्ध इसका प्रयोग वर्जित है, क्योंकि सारे जगत में आग लग जाने का भय है। इस अस्त्र के रहते तुमसे कोई नहीं जीत सकता।”

□□

कौरव पुत्रों ने भी पांडवों की तरह एक ही गुरु से युद्ध-कला एवं शस्त्र चालन की विद्या सीखी थी, किंतु दुर्योधन एवं उसके भाइयों ने इन शिक्षाओं में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई थी। हालांकि वे भी वीर थे, परंतु पांडवों के स्तर के नहीं, क्योंकि उनका अधिकांश समय ईर्ष्या एवं द्वेष में ही व्यतीत होता था। पांडव उनके चचेरे भाई थे, लेकिन उनकी वीरता से उन्हें कभी भी प्रसन्नता नहीं होती थी। पांडवों की प्रशंसा से उनका हृदय जलता था। विशेषकर अर्जुन की लोकप्रियता से दुर्योधन कभी भी प्रसन्न नहीं रहा।

अर्जुन युद्ध-कला के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवीण था। भीम भारी गदा उठाकर किसी भी हमलावर को धराशायी कर सकता था। इस विद्या में दुर्योधन भी कम नहीं था। युधिष्ठिर रथ-युद्धक था।

नकुल-सहदेव की तलवारबाजी का जवाब नहीं था। गुरु-पुत्र अश्वत्थामा अनेक अस्त्र-शस्त्रों को कुशलता से चला लेता था।

जब कौरव-पांडव राजकुमारों की शिक्षा संपन्न हो गई तो द्रोणाचार्य ने संतोष की सांस ली। अब बारी थी अपने शिष्यों की समवेत परीक्षा की।

द्रोणाचार्य ने महाराज धृतराष्ट्र को सूचना दी, “राजन! मैंने सभी राजकुमारों को युद्ध-कला एवं शस्त्र-विद्या में पूर्ण प्रवीण कर दिया है। अब मैं उनकी कलाओं का सार्वजनिक प्रदर्शन करना चाहता हूँ, ताकि उनकी योग्यता का प्रमाण मिल सके।”

धृतराष्ट्र ने प्रसन्नता से कहा, “ठीक है, शीघ्र ही एक समारोह का आयोजन किया जाए। इस अवसर पर आम जनता भी प्रदर्शन-स्थल पर आकर राजकुमारों का प्रदर्शन देख सकती है।”

धृतराष्ट्र के आदेशानुसार समारोह की तैयारियां शुरू हो गईं।

□□

परीक्षण का निर्धारित दिन आ पहुंचा।

एक बहुत बड़े मैदान में समारोह का आयोजन किया गया था। मैदान के चारों ओर दर्शकों के बैठने की व्यवस्था की गई थी। दूर-दूर से लोग उत्साह से राजकुमारों का प्रदर्शन देखने आए थे। आम जनता के अलावा विभिन्न देशों से महत्त्वपूर्ण लोग भी पहुंचे थे। सारा समारोह-स्थल लोगों के शोर-शराबे से गूंज रहा था।

सामने एक ऊंचे आसन पर राजा धृतराष्ट्र, रानी गांधारी, मंत्रीगण व दरबारी बैठे थे। धृतराष्ट्र की बगल में ही बैठा था—संजय। वही धृतराष्ट्र को आंखों देखा हाल सुनाया करता था, क्योंकि जन्मजात अंधे होने के कारण धृतराष्ट्र स्वयं तो कुछ देख नहीं पाते थे।

लोगों के गननभेदी नारों के बीच युधिष्ठिर ने घोड़े पर सवार होकर परीक्षा-स्थल में प्रवेश किया, उनके पीछे शेष राजकुमार भी आ पहुंचे। पुरोहितों के मंगलाचरण के पश्चात् समारोह

की कार्रवाई आरंभ की गई।

फिर एक-एक करके राजकुमार आगे बढ़ते और जनसमूह को अपने-अपने प्रिय हथियार का कौशल दिखाते। प्रत्येक कौशल से उपस्थित जनसमुदाय प्रसन्नता से झूम उठता।

प्रत्येक राजकुमार का प्रदर्शन अद्वितीय था।

गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के प्रदर्शन से पूर्णतः संतुष्ट थे। उन्होंने सभी राजकुमारों को श्रेष्ठ प्रदर्शन की बधाई दी।

दुर्योधन इन प्रदर्शनों से प्रसन्न नहीं था। उसने स्पष्ट देखा था कि पांडवों के प्रदर्शन पर जनता अधिक प्रसन्न होती थी। भीम से दुर्योधन की ईर्ष्या छिपी नहीं रह सकी। वह दुर्योधन को चिढ़ाने के लिए उसके सामने गदा नचाने लगा। दुर्योधन के क्रोध का पारावार न रहा। भीम को इस धृष्टता का आनंद चखाने के लिए उसने भी अपनी गदा उठा ली। लगा, जैसे दो उन्मत्त हाथी एक-दूसरे से भिड़ने के लिए आमने-सामने खड़े हो गए हों। दुर्योधन का शरीर उत्तेजना से कांप रहा था। चेहरा गुस्से से लाल हो गया था।

अश्वत्थामा ने बिगड़ती स्थिति को संभाला! अगर वह उन दोनों के बीच में पड़कर बीच-बचाव नहीं करता तो निश्चित था कि वे दोनों लड़ पड़ते। अश्वत्थामा ने अपने पिता द्रोणाचार्य को बुलाया। द्रोणाचार्य ने भीम और दुर्योधन को शांत किया।

संजय प्रत्येक घटना का विवरण विस्तार से धृतराष्ट्र को सुना रहा था। पांडवों की कीर्ति से धृतराष्ट्र को प्रसन्नता तो हो रही थी, लेकिन अपने पुत्रों का गुणगान न सुनकर व्यथित भी थे।

इस संपूर्ण प्रदर्शन में अर्जुन की युद्ध-कला अद्वितीय थी। हर अस्त्र को वह बखूबी चलाना जानता था। बाणों के चलाने में वह इतना दक्ष था कि कभी अपने बाणों से अग्नि प्रज्ज्वलित कर देता तो कभी पानी बरसा देता। रथ पर उसकी युद्ध-कला बेजोड़ थी तो पैदल अस्त्र-संचालन में वह लाजवाब था।

उसका रण कौशल देखकर तो गुरु द्रोणाचार्य के नेत्रों में प्रसन्नता के आंसू छलक आए थे।

जब सारा सभास्थल अर्जुन की वाहवाही के शोर से गूंज रहा था, तभी एक युवक उठकर गरजा—

“मैं अर्जुन को चुनौती देता हूँ।”

एकाएक सभास्थल में सन्नाटा छा गया।

सभी लोगों ने चौंककर युवक की ओर देखा। वह तेजस्वी था, वीरता उसके शरीर से फूटी पड़ रही थी, शरीर पर कवच और कानों में कुंडल झूल रहे थे। वह सूर्य पुत्र कर्ण था। आज से पहले उसे किसी ने नहीं देखा था। वह भी विभिन्न अस्त्रों में पारंगत होकर इस बहुचर्चित आयोजन को देखने आया था। अर्जुन ने जो भी प्रदर्शन किया था, उसका कर्ण की दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं था, क्योंकि ये सारे प्रदर्शन तो उसके बाएं हाथ के खेल थे।

कुंती भी वहां उपस्थित थी। उसने अपने इस पुत्र को पहली दृष्टि में ही पहचान लिया। उसका हृदय हाहाकार कर उठा!

लोग इस तेजस्वी युवक को देखकर कानाफूसी करने लगे—

“अरे, देखो तो कौन है? कैसा वीर है? कहां से आया है?”

कर्ण ने कमर पर हाथ रखकर उस दिशा की ओर देखा, जहां राजा धृतराष्ट्र के साथ महत्त्वपूर्ण लोग बैठे थे। उसने गुरु द्रोणाचार्य की ओर दृष्टि जमाकर कहा—

“अर्जुन के प्रदर्शन पर इतना प्रसन्न होने की आवश्यकता नहीं। यह सब तो मैं भी कर सकता हूँ, बल्कि इससे भी अधिक कर सकता हूँ। अगर आप आज्ञा दें तो मैं भी इसी समय अपनी युद्ध-कला का यहां प्रदर्शन कर सकता हूँ।”

क्षण भर के लिए कोई कुछ नहीं बोला। गुरु द्रोणाचार्य आश्चर्य से उस अनभिज्ञ युवक को देख रहे थे, जो सचमुच वीरता की प्रतिमूर्ति प्रतीत हो रहा था, परंतु वे युद्ध-कला के प्रदर्शन

की अनुमति कैसे देते ? अगर वह सचमुच अर्जुन से श्रेष्ठ साबित हुआ तो... ?

कर्ण की ललकार सुनकर कोई और प्रसन्न हुआ हो या न हुआ हो, दुर्योधन की प्रसन्नता का कोई अंत नहीं रहा। सचमुच, यह युवक अगर अर्जुन से श्रेष्ठ साबित हो जाए तो आनंद आ जाए, फिर तो अर्जुन की हेकड़ी धरी-की-धरी रह जाएगी। वह ऐसा ही तो कोई वीर चाहता था, जो पांडवों का मुकाबला कर सके।

दुर्योधन ने कर्ण से कहा, “बंधु! हम तुम्हारी इच्छा का आदर करते हैं। तुम हमारे साथ रहो, हमें अपना ही मानो, हम हर स्थिति में तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे।”

कर्ण बोला, “मुझे आपकी मित्रता पाकर प्रसन्नता है। बस, मेरी एक ही छोटी-सी इच्छा है कि मुझे भी युद्ध-कला का कौशल दिखाने का अवसर मिलना चाहिए। मैं अर्जुन से द्वंद्व युद्ध करना चाहता हूं।”

दुर्योधन बोला, “हां-हां, क्यों नहीं। आगे बढ़ो नौजवान! हमारी शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं।”

अर्जुन अब तक चुपचाप खड़ा था, किंतु अब उससे सहा नहीं गया। वह बोला, “जो बहारी लोग बिन बुलाए और अनामंत्रित पहुंचकर अपनी शेखी बघारते हैं, उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह मैं भलीभांति जानता हूं। तुम्हें भी मैं अच्छा सबक दूंगा।”

कर्ण ने उत्तर दिया, “इसमें बिन बुलाए का कोई प्रश्न नहीं उठता। यहां सार्वजनिक प्रदर्शन हो रहा है, यह सार्वजनिक स्थल है, यहां कोई भी अपनी कला प्रदर्शित कर सकता है। जैसे आप लोगों को अपनी कला दिखाने का अधिकार प्राप्त है, वैसे ही मुझे भी। सच तो यह है कि एक सच्चा वीर ऐसी बातों में अपना समय बरबाद नहीं करता। सच्चे वीर की तो यही एक निशानी है कि चुनौती का डटकर मुकाबला करे। अगर तुम अस्त्र-शस्त्र में निपुण हो तो आओ दो-दो हाथ हो जाए। हमारे अस्त्र-शस्त्र एक-एक से भिड़कर स्वयं ही निर्णय कर लेंगे कि सच्चा वीर कौन है ?”

प्रदर्शन-स्थल पर विचित्र-सा दृश्य उपस्थित हो गया। सभी उत्सुक, उत्तेजित व शंकित थे—न जाने क्या होने वाला है ?

पांडवों और कौरवों में जो एक-दूसरे के प्रति मनमुटाव था, वह कर्ण के आने से स्पष्ट प्रकट हो गया।

अर्जुन के भाई उसे घेरकर खड़े हो गए थे और शेष कौरव अपने बड़े भाई दुर्योधन के आस पास जमा हो गए थे।

गुरु द्रोणाचार्य की समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। भीष्म एवं विदुर भी किंकर्तव्यविमूढ़ थे। कुंती की दशा दयनीय थी। कर्ण उसका पुत्र था, जिसे उसने बचपन में ही नदी में बहा दिया था। वर्षों बाद उसे देखकर उसके नेत्र भर आए थे। यह कैसी विडंबना थी कि अपने भाई अर्जुन से ही वह द्वंद्व युद्ध करने को उद्यत था। कुंती अपनी हालत पर काबू नहीं पा सकी और मूर्च्छित हो गई। विदुर ने आगे बढ़कर कुंती को संभाला लिया। विदुर को कर्ण की वास्तविकता का ज्ञान था।

स्थिति विस्फोटक थी। वातावरण में उत्तेजना व्याप्त हो गई थी। ऐसे गंभीर क्षणों में कृपाचार्य ने बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया। वे भी युद्ध-कला में निष्णात थे तथा उन्होंने कौरव बंधुओं को अनेक विलक्षण दांव सिखाए थे।

कृपाचार्य ने कर्ण से कहा, “हे वीर युवक! तुम जानते हो कि अर्जुन राजा का पुत्र है, अब तुम भी अपने कुल के बारे में बताओ कि तुम कौन हो, किस वंश से तुम्हारा संबंध है, तभी अर्जुन से तुम्हारा द्वंद्व युद्ध हो सकता है। हमारी परंपरा है कि द्वंद्व युद्ध तभी संभव है, जब दोनों पक्षों के वीरों का संबंध राजकुल से हो।”

कर्ण का हृदय बैठ गया। उसे एक सारथी ने पाल-पोसकर बड़ा किया था। वह किस कुल से था, यह अज्ञात था। कृपाचार्य की शर्त ने उसे निराश कर दिया। हां, वह किसी देश का राजा होता तो बात बन सकती थी।

दुर्योधन किसी भी प्रकार अर्जुन को नीचा दिखाना चाहता था, इसलिए उसने सार्वजनिक घोषणा की, “आज से मैं कर्ण को अंग देश का राजा घोषित करता हूँ। अब तो कर्ण को कोई द्वंद्व युद्ध से नहीं रोक सकता।”

सचमुच अब द्वंद्व युद्ध को टालना मुश्किल था। दुर्योधन ने अपना अधिकृत अंग देश कर्ण को समर्पित कर दिया था। अब वह भी राजा था। फिर भला राजकुमार अर्जुन से टक्कर लेने से उसे कौन रोक सकता था।

कर्ण ने अपने पालक पिता सारथी के चरण छुए, धर्मपिता ने उसे आशीर्वाद दिया। कर्ण आगे बढ़ा।

तभी भीम ने व्यंग्य से कहा, “अरे! यह कैसा राजा है, जो मामूली सारथी के पांव छू रहा है। सारथी भी कैसा? जो युद्ध के रथों का संचालन नहीं करता, बल्कि भाड़े का रथ चलाता है। भले ही आज से यह अंग देश का राजा बन गया, पर यह सच्चाई तो छिप नहीं सकती कि यह एक मामूली सारथी का पुत्र है। जाओ भैया! युद्ध का मैदान तुम्हारे जैसों के लिए नहीं है, तुम तो जाकर घोड़े की लगाम पकड़ो।”

“भीम!” दुर्योधन का तेज स्वर गूँजा, “अभी तुम्हें पता चल जाएगा कि कर्ण घोड़े की लगाम पकड़ने में ही दक्ष नहीं, इन्हीं हाथों से बाणों की अचूक निशानेबाजी भी कर सकता है। वह तुम पांच भाइयों से अकेला ही लड़ सकता है। वह रथ पर सवार होकर आगे बढ़ रहा है, जिसमें हिम्मत हो, इसे रोके...।”

जनसमूह में खलबली मच गई। कई लोगों को दुर्योधन की घोषणा पसंद नहीं आई, किंतु भीड़ में कुछ लोग ऐसे भी थे, जो कर्ण की वीरता का आदर करते थे। लोगों की उत्सुक दृष्टि मैदान के बीचोबीच टिकी हुई थी। अब द्वंद्व युद्ध को टालना कठिन प्रतीत हो रहा था।

तभी सूरज सरकता हुआ अस्त हो गया। चारों ओर शाम का अंधेरा फैल गया। तत्कालीन युद्ध का नियम था कि सूर्यास्त के बाद युद्ध नहीं हो सकता, इसलिए कृपाचार्य ने समारोह के

समापन की घोषणा कर दी। अर्जुन और कर्ण का संभावित द्वंद्व युद्ध अपने आप टल गया। लोगों ने चैन की सांस ली।

सबने अपनी-अपनी राह पकड़ी।

दुर्योधन कर्ण का हाथ अपने हाथ में पकड़ उसे अपने साथ ले गया।

□□

राजकुमारों का शिक्षा-सत्र समाप्त हो चुका था।

गुरु द्रोणाचार्य अपने प्रतिशोध की प्रतिज्ञा भूले नहीं थे। उन्होंने अपने शिष्यों को एक बार अपने पास बुलाया और कहा—

“हे राजकुमारो! तुम्हें याद है कि शिक्षा आरंभ करने से पहले मैंने तुमसे एक वचन लिया था।”

“हां याद है।” अर्जुन बोला, “आपने कहा था कि शिक्षा समाप्ति के पश्चात् हम आपकी एक इच्छा पूर्ण करें।”

“आज वह दिन आ गया है जब तुम मेरी इच्छा पूर्ण करो। इस दिन की मैं बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था।”

“गुरुदेव! हम तैयार हैं।” राजकुमारों ने कहा, “आप आदेश दें, हमें क्या करना है?”

गुरुदेव क्षण भर मौन रहे। एकाएक उनके नेत्रों के समक्ष पांचाल देश का राजदरबार कौंध गया, जहां वर्षों पहले राजा द्रुपद ने उनका अपमान किया था। वे आज तक उस अपमान को भूले नहीं थे। समय बीतने के साथ द्रुपद से अपमान का बदला लेने की आग उनके मन में बढ़ती चली गई थी। अब वे उसी द्रुपद को सबक सिखाना चाहते थे। उन्होंने राजकुमारों को युद्ध-कला में विशारद बना दिया था। उनकी वीरता के आगे द्रुपद की पराजय निश्चित थी।

गुरुदेव द्रोणाचार्य ने द्रुपद के असभ्य आचरण की कहानी सुनाकर कहा, “वीरो! वर्षों पहले द्रुपद ने मेरा जो अपमान किया था, आज तुम लोग उसका बदला चुकाकर मेरे हृदय को शांति प्रदान करो। तुम लोग विश्व के श्रेष्ठ वीर हो, इसलिए तत्काल पांचाल जाकर द्रुपद को पराजित करो और उसे बंदी बनाकर मेरे सामने प्रस्तुत करो। यही मेरी इच्छा है, जिसे तुम्हें पूर्ण करना है।”

राजकुमारों के लिए यह कोई कठिन कार्य नहीं था। वे तत्काल तैयार हो गए। वे बोले, “गुरुदेव! हम पल भर में पांचाल सेना को नष्ट करके द्रुपद को आपके सामने खड़ा कर देंगे। हमें आशीर्वाद दीजिए।”

गुरुदेव ने उन्हें आशीर्वाद दिया, “जाओ और अपने अभियान में सफल होकर शीघ्र लौटो।”

राजकुमार अपने-अपने अस्त्र लेकर पांचाल की ओर प्रस्थान कर गए। सभी उत्साह में थे। आज पहली बार उन्हें अपने अस्त्र-शस्त्रों को खुलकर प्रयोग करने का अवसर मिला था। दुर्योधन अपने साथ कर्ण को भी ले गया था।

पांचाल पहुंचकर उन्होंने सचमुच कुशलता से वीरता का प्रदर्शन किया। उनके आक्रमण को रोकना पांचाल की सेना के लिए कठिन था। शीघ्र ही पांचाल नरेश को राजकुमारों ने अपने हाथों में ले लिया। द्रुपद पराजित हो चुका था। उसने राजकुमारों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। राजकुमार राजा द्रुपद को बंदी बनाकर अगले कुछ दिनों में ही हस्तिनापुर ले गए।

द्रुपद को बंदी अवस्था में गुरु के आगे खड़ा कर राजकुमार बोले, “लीजिए! आपका बंदी उपस्थित है।”

द्रोणाचार्य ने ऊपर से नीचे तक एक बार द्रुपद की ओर देखा, फिर बोले, “राजन! तुम्हें याद है, एक बार जब मैं तुम्हारा मित्र बनकर एक याचक के रूप में तुम्हारे पास पहुंचा था, तब तुमने क्या कहा था? तुमने कहा था, एक राजा भला एक याचक का मित्र कैसे बन सकता है और आज तुम मेरे सामने एक याचक के रूप में खड़े हो।”

द्रुपद शांत रहे। वह क्या उत्तर देते।

द्रोणाचार्य बोले, “पांचाल को मेरे आदेश से मेरे शिष्य राजकुमारों ने नष्ट किया है। मैं चाहूँ तो तुम्हें भी पल भर में समाप्त कर सकता हूँ, परंतु मैं ऐसा नहीं करूँगा।”

द्रुपद मौन रहे।

“अंततः तुम मेरे बचपन के साथी हो। मैं तो मात्र तुम्हें सबक सिखाना चाहता था। तुमने कहा था कि तुम्हारी मित्रता केवल राजा से ही हो सकती है, अतएव मैं तुम्हारे राज्य का आधा हिस्सा अपने अधिकार में लेता हूँ और शेष आधा तुम्हें सौंपता हूँ। लो, अब मैं भी राजा हो गया। अब तो तुम्हें मेरी मित्रता से कोई गिला नहीं।”

द्रुपद पराजित राजा था, इसलिए चुपचाप सुनने के अलावा उसके पास और कोई चारा नहीं था, लेकिन मन-ही-मन वह ताव खा रहा था। सोचा, यहां से फुर्सत पाते ही मैं द्रोण को इस करनी का मजा अवश्य चखाऊंगा।

इस प्रकार द्रुपद को आधा राज्य वापस देकर तथा स्वयं आधे राज्य का स्वामी बनकर गुरुदेव ने राजकुमारों से विदा ली और पांचाल चले गए।

□□

द्रुपद का प्रत्येक पल इसी चिंता में व्यतीत होता था कि द्रोणाचार्य को किस प्रकार विनष्ट किया जाए।

उन्होंने तपस्या की और याज व उपयाज नाम के ऋषियों के सहयोग से पुत्रेष्टि यज्ञ का आयोजन किया। कालांतर में उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम था धृष्टद्युम्न। इस पुत्र ने द्रुपद की इच्छा पूर्ण की और जब महायुद्ध अपने चरम पर था, तब धृष्टद्युम्न ने ही द्रोणाचार्य को मारा था।

द्रुपद की एक पुत्री थी—कृष्णा। उसे पांचाल और द्रौपदी भी कहा जाता है। आगे चलकर इसी द्रौपदी का विवाह अर्जुन से हुआ था। द्रुपद अर्जुन को दामाद बनाकर अपना हितैषी बनाए रखना चाहता था।

गुरुदेव द्रोणाचार्य के चले जाने के बाद कौरव-पांडव राजकुमारों का मनमुटाव क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था। दुर्योधन पांडवों से अत्यंत जलता था, क्योंकि पांडव भ्राता न केवल अधिक वीर थे, बल्कि प्रजा में लोकप्रिय भी थे।

इधर धृतराष्ट्र भी चिंतित थे। वे सोचते थे, उनके बाद कौरव भ्राताओं का क्या होगा, क्या पांडव उन्हें सुख से रहने देंगे ?

पांडवों की लोकप्रियता एवं वीरता धृतराष्ट्र से भी छिपी नहीं थी।

□□

(पांच)

कुछ भी हो, पांडवों की वीरता तथा योग्यता से धृतराष्ट्र विमुख नहीं रह सके। पुत्रों के प्रति स्वाभाविक झुकाव के बावजूद उन्हें भतीजों से भी कम स्नेह नहीं था, इसलिए उन्होंने अपने पश्चात् राजपाट अग्रज युधिष्ठिर को सौंप देने की घोषणा कर दी।

युधिष्ठिर और उनके भाइयों ने इस घोषणा का यथोचित सम्मान किया। उन्होंने एक साथ मिलकर न केवल अपने साम्राज्य का विस्तार किया, बल्कि अपनी वीरता तथा योग्यता के बल पर जन-जन से अपार लोकप्रियता भी प्राप्त की। प्रजा पांडवों को ही अपना जननायक मानती थी। युधिष्ठिर ने प्रजाजनों की भलाई के लिए अनेक नए कदम उठाए थे। वे उनकी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करते थे। अपनी सेना का भी पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। समय-समय पर वे सेना के बड़े-बड़े अधिकारियों से मिलते और सेना की गतिविधियों का स्वयं निरीक्षण करते थे।

धृतराष्ट्र को अंततः अपनी घोषणा से अप्रसन्नता होने लगी। न केवल उन्हें अपने पुत्रों से प्रताड़ित होना पड़ा, बल्कि यह दुःख भी हुआ कि अपने पुत्रों के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया। पांडवों की लोकप्रियता तो दिनोदिन बढ़ती जा रही थी, परंतु उनके पुत्रों की चर्चा कहीं नहीं होती थी। राजा के गुप्तचर उन्हें प्रतिदिन बताया करते थे कि पांडवों की कीर्ति से सारी प्रजा उत्साहित है और युधिष्ठिर को भावी राजा के रूप में पाकर प्रसन्न है। युधिष्ठिर राजकाज में इतने दक्ष थे कि अपने ताऊ धृतराष्ट्र को किसी मामले में परेशान करना उचित नहीं समझते थे।

अब धृतराष्ट्र को अपने पुत्रों की चिंता हुई। वे सोचने लगे, एक दिन पांडव राजा बन जाएंगे और अपने सुकार्यों से जन-जन का हृदय जीत लेंगे, तब मेरे पुत्रों का क्या होगा? कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि एक दिन बलशाली होकर वे मेरे पुत्रों को उनके अधिकारों से ही वंचित कर दें। पुत्र भले ही निकम्मे हों, परंतु कौन-सा पिता उनका अहित सोचेगा!

ऐसे अवसर पर उन्हें अपने मंत्री कणिक की याद आई। वह राजनीति के दांव-पेचों से भली-भांति परिचित था। धृतराष्ट्र ने उसे बुलाया और अपने मन की शंका कह सुनाई। उसने कहा, “राजन! आपकी शंका उचित है। राजनीति में चौकस रहना अति आवश्यक है। सत्य तो यह है कि अपने प्रतिद्वंद्वी को कभी भी कमतर नहीं समझना चाहिए। सांप, आग, रोग आदि से जिस प्रकार मानव को सतर्क रहना चाहिए, वैसे ही अपने शत्रु से भी। हमें पांडवों की एक-एक गतिविधि पर निगाह रखनी चाहिए और जब उचित अवसर मिले, उन्हें काबू में करना चाहिए, अन्यथा कौरव भ्राताओं का भविष्य चौपट हो जाएगा।”

धृतराष्ट्र को कणिक की बात उचित ही लगी।

दुर्योधन भी इन गतिविधियों से अनभिज्ञ नहीं था। एक दिन वह अपने पिता से एकांत में मिला और बोला, “पिताश्री! आपने युधिष्ठिर को भावी राजा घोषित करके अच्छा नहीं किया। अब तो प्रजा में पांडवों की लोकप्रियता और बढ़ गई है। हर कोई युधिष्ठिर को ही राजा के रूप में मानता है। अब हमारा क्या होगा? पांडवों के राजगद्दी पर बैठते ही हम राजकाज से बेदखल हो जाएंगे।”

धृतराष्ट्र क्या उत्तर देते? उन्हें अपने पुत्रों के भविष्य की तो चिंता थी, किंतु यह चिंता भी थी कि अगर उन्होंने पांडवों को राज्याधिकार से एकाएक वंचित कर दिया तो प्रजा क्या सोचेगी? प्रजा का रोष सहना आसान नहीं था। वे बोले, “पुत्र! तुम्हीं कोई उपाय बताओ, मैं क्या करूँ?”

दुर्योधन बोला, “पिताश्री! आप प्रजा की चिंता मत कीजिए। प्रजा का क्या है, हम उन्हें धन-दौलत और उपहारों का लालच देकर अपनी ओर मिला लेंगे, फिर वे हमारा विरोध नहीं करेंगे। धीरे-धीरे प्रजा हमारे पक्ष में हो जाएगी, तब हम पांडवों को राजगद्दी से बड़े आराम से दूर कर देंगे।”

“यह सब इतना आसान नहीं है।”

“यह आप मुझ पर छोड़ दीजिए।” दुर्योधन बोला, “बस, इस बीच किसी प्रकार पांडवों को थोड़े समय के लिए राजधानी से दूर कर देना चाहिए, फिर हम जनता को धीरे-धीरे अपनी मुट्ठी में कर लेंगे।”

“किंतु...।”

“किंतु-परंतु का चक्कर छोड़िए। अगर पांडव राजा बन गए तो याद रखिए, हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। हमारी संतान भी दूसरों के टुकड़ों पर पलेगी। जब तक आप जीवित हैं, तब तक तो पांडव मौन रहेंगे और आपके नेत्र मूंदते ही आपकी संतान का नामोनिशान मिट जाएगा।”

“पुत्र! जो तुम उचित समझो वही करो।” धृतराष्ट्र ने लाचारी से कहा। दरअसल, धृतराष्ट्र खुलेआम अपने भतीजों के विरुद्ध कोई कदम उठाना नहीं चाहते थे। पांडवों की कार्यकुशलता से प्रभावित थे, परंतु यह अवश्य चाहते थे कि उनके पुत्रों के भविष्य पर भी कोई आंच नहीं आनी चाहिए।

दुर्योधन पिता का अंतर्द्वंद्व समझता था। वह जानता था कि वे अपने भतीजों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेंगे, इसलिए उसने स्वयं ही पांडवों को अपने मार्ग से हटाने का निर्णय कर लिया। उसने मन-ही-मन एक योजना बनाई और पिता से बोला, “आप किसी प्रकार पांडवों को राजधानी से कुछ दिनों के लिए बाहर भेज दीजिए। उचित हो कि उन्हें वारणावत भेज दीजिए। वह नगर राजधानी से बहुत दूर भी है।”

धृतराष्ट्र ने यह बात स्वीकार कर ली।

□□

युधिष्ठिर इस दुरभिसंधि से अनभिज्ञ अपने राजकाज में व्यस्त थे। धृतराष्ट्र ने उन पर जो महान उत्तरदायित्व सौंप रखा था, उसे वे पूरी तत्परता से निभा रहे थे। युधिष्ठिर प्रायः व्यस्त

रहते थे, इसलिए धृतराष्ट्र से बहुत ही कम मिल पाते थे।

धृतराष्ट्र ने एकाध दिन के बाद युधिष्ठिर को अपने पास बुलवाया।

युधिष्ठिर उनके दरबार में पहुंचे। चारों ओर दुर्योधन के सिखाए-पढ़ाए दरबारी बैठे थे।

युधिष्ठिर राजा को अभिवादन करके अपने आसन पर बैठे तो धृतराष्ट्र ने पूछा, “कहो युवराज! काम-काज कैसे चल रहा है?”

“राजन! आपने मुझ पर जो भरोसा रखा है, उसे प्राण-पण से निभाने का प्रयास कर रहा हूँ।”

“हूँ।” धृतराष्ट्र ने कहा, “मैंने सुना है कि तुम आजकल बहुत व्यस्त रहते हो, हमेशा राज-काज में मग्न। सत्य तो यह है कि मैं तुम्हारे जैसा सहायक पाकर बहुत प्रसन्न हूँ। काश! मैं भी तुम्हें कोई सहयोग दे पाता। खैर, मैं सोचता हूँ कि अब तुम्हें कुछ दिनों के लिए विश्राम करना चाहिए। इतनी व्यस्तता भी किस काम की! उचित यह है कि तुम अपनी माता और भाइयों सहित राजधानी से दूर किसी रमणीक स्थान पर चले जाओ और निश्चिंत होकर भ्रमण करो। अब सोचना यह है कि तुम्हें कहां भेजना चाहिए।”

यह कह धृतराष्ट्र विचारों में खो गए।

इस पर अन्य दरबारियों ने कई नगरों के नाम सुझाए। इन नामों में सबने वारणावत की एक स्वर से प्रशंसा की। तब धृतराष्ट्र ने कहा, “ठीक है, तुम वारणावत जाकर ही विश्राम करो। वहां तुम्हें बड़ा आनंद आएगा। शीघ्र ही शिवरात्रि का पर्व भी आने वाला है। इस अवसर पर वारणावत की शोभा तो बस देखने लायक ही होती है। वहां तुम्हारे थके हुए दिमाग को शांति भी मिलेगी। फिर भावी राजा के लिए देश-भ्रमण भी अति आवश्यक है। अपनी जनता से मिलने का इससे बढ़िया अवसर और कौन-सा हो सकता है? तुम वारणावत में जब तक चाहो, रहो और अपनी प्रजा से करीबी संबंध बनाओ।”

युधिष्ठिर राजा की इस अचानक सहानुभूति से अवाक् थे। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक उन्हें राजधानी से दूर भाइयों व माता सहित एकांत में विश्राम के लिए भेजने की आवश्यकता क्यों आ पड़ी। उन्होंने नेत्र उठाकर दरबार में बैठे दुर्योधन की ओर देखा। दुर्योधन ने भी चेहरे की कुटिलता छिपाकर कहा, “पिताजी ठीक कह रहे हैं युधिष्ठिर! तुम्हें विश्राम की अति आवश्यकता है। तुम शीघ्र-से-शीघ्र वारणावत प्रस्थान करो।”

युधिष्ठिर को दाल में कुछ काला दिखाई देने लगा, परंतु वे शांत रहे। उन्होंने चुपचाप धृतराष्ट्र का सुझाव स्वीकार कर लिया।

दुर्योधन की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। अब वह बड़ी आसानी से पांडवों को अपने मार्ग से हटा सकता था।

□□

शुभ मुहूर्त में पांडवों ने राजधानी से विदा ली और वारणावत की ओर चल पड़े। राजधानी की प्रजा तो उन्हें छोड़ना ही नहीं चाहती थी, इसलिए लोगों का एक बहुत बड़ा समूह उन्हें सीमा तक छोड़ने चल पड़ा। कई व्यक्ति पांडवों को इस प्रकार राजधानी से बाहर भेजने पर शंकित थे, किंतु युधिष्ठिर ने यह कहकर उनकी शंका दूर कर दी, “राजा के व्यवहार पर शंका करना उचित नहीं, वे तो सचमुच हमारा भला ही चाहते हैं।”

पांडवों के साथ कुछ दूर तक भीष्म, द्रोण, विदुर आदि वृद्धजन भी गए। भीष्म व द्रोण तो उन्हें आशीर्वाद देकर शीघ्र ही राजधानी की ओर लौट पड़े, किंतु विदुर उनके साथ राजधानी की सीमा तक गए।

विदुर को दुर्योधन की कूट योजनाओं का पूरा ज्ञान था। पांडवों को विदा करते समय विदुर ने उन्हें कूट भाषा में सावधान कर दिया, “सुनो युधिष्ठिर! शत्रुओं से हमेशा सावधान रहना चाहिए। जो शत्रुओं को पहले ही पहचान लेता है, वह कभी मात नहीं खाता। कुछ हथियार ऐसे भी होते हैं जो लोहे के नहीं होते, परंतु जिनका वार घातक होता है। ऐसे हथियारों से हमेशा

सावधान रहना चाहिए। अग्नि जंगलों को खाक कर सकती है, किंतु बिल में नहीं घुस सकती। अब तुम लोग जाओ और मेरी बात का ध्यान रखना।”

युधिष्ठिर कुछ पल तक कुछ सोचते रहे, फिर बोले, “हमारा मार्गदर्शन करने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। आप निश्चिंत रहें, हम पूरी प्रकार सतर्क रहेंगे।”

□□

पांडव अपनी माता कुंती के साथ वारणावत पहुंचे तो वहां उनका भव्य स्वागत किया गया। जनता ने उन्हें सिर-आंखों पर बिठा लिया। घर-घर से उनके लिए स्वादिष्ट व्यंजन बनकर आ गए। बड़े आग्रह से लोग उन्हें अपने घर ले गए और सम्मान दिया।

शिवरात्रि के अवसर पर पांडवों को सचमुच बड़ा आनंद आया। आम जनता के साथ मिल-जुलकर पांडवों ने उत्सव में भाग लिया और खूब आनंद किया।

उधर दुर्योधन ने अपने विश्वस्त पुरोचन को वारणावत भेज दिया। वारणावत पहुंचकर पुरोचन को क्या करना है, यह सब दुर्योधन ने उसे समझा दिया था।

पुरोचन भवन-निर्माण की कला का महान ज्ञाता था। उसने वारणावत में पहुंचते ही यथाशीघ्र एक भव्य भवन का निर्माण किया। इस भवन की सुंदरता का जवाब नहीं था। दूर से देखते ही भवन की भव्यता अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। भवन सभी सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण था। खाने-पीने की विपुल सामग्री वहां विद्यमान थी। सभी कमरे बहुमूल्य सज्जा से सजे हुए थे। फर्श पर कीमती कालीन बिछे थे और बिस्तर इतने मुलायम और साफ-सुथरे थे कि देखते ही सोने को मन ललचा उठे। भवन का नाम रखा गया—‘शिवम’। शिवम यानी कल्याणकारी। जिस भवन में विनाशकारी योजना क्रियान्वित होने वाली थी, उसका कितना सुंदर नाम रखा था दुर्योधन ने!

भवन बन जाने के बाद पुरोचन पांडवों से मिला और उनसे नए भवन में कुछ दिन रहने का आग्रह किया। युधिष्ठिर को भवन इतना भाया कि तत्काल उसकी बात मान ली और माता व भाइयों सहित उस नए भवन में रहने को पहुंच गए।

भवन के अंदर पग रखते ही युधिष्ठिर का माथा ठनका। भवन की दीवारों से लाख, तेल, सन आदि की दुर्गंध निकल रही थी। युधिष्ठिर समझ गए कि यहां उनकी मृत्यु की पूरी तैयारी की गई है। तभी उन्हें विदुर का संदेश भी याद आ गया। अब वे समझे कि विदुर की बात का क्या अर्थ था। उन्होंने माता कुंती एवं भाइयों को सतर्क कर दिया। वे बोले, “शत्रु हमें इस भवन में जलाकर मार देना चाहता है, पर हमें डरने की कोई आवश्यकता नहीं। बस, सावधान अवश्य रहना है। मुख पर हमें घबराहट का ऐसा कोई भाव नहीं लाना चाहिए, जिससे शत्रु सतर्क हो जाए। अगर उन्हें पता चल गया कि हम उनकी चाल जान गए हैं तो वे कोई और पग उठा सकते हैं।”

सचमुच दुर्योधन की यही योजना थी। पुरोचन के इस भवन में वह पांडवों को मारकर हमेशा के लिए निश्चिंत हो जाना चाहता था।

पांडव हंसी-खुशी नए भवन में बस गए।

कुछ दिनों के बाद पांडवों से मिलने एक आगंतुक आया। वह बोला, “राजकुमारो! मैं हस्तिनापुर से आया हूं। महात्मा विदुर ने मुझे भेजा है।”

युधिष्ठिर जानते थे कि विदुर उनके शुभचिंतक हैं। अतः पूछा, “कैसे आना हुआ? चाचा विदुर ने तुम्हें क्यों भेजा है?”

“मैं सुरंग खोदने में माहिर हूं। अग्नि लकड़ी और सन को शीघ्रता से पकड़ लेती है, किंतु सुरंग में नहीं पहुंच सकती।” आगंतुक बोला, “दुर्योधन ने पुरोचन को आदेश दिया है कि माह के कृष्ण पक्ष में वह इस महल को मध्य रात्रि में उस समय आग लगा दे, जब आप लोग गहरी नींद में सोए हुए हों।”

“ओह!” युधिष्ठिर दुर्योधन की इस चाल पर आह भरकर रह गए।

“आप घबराइए मत।” आगंतुक बोला, “मैं इसी बीच महल के किसी सुरक्षित कोने में सुरंग बना दूंगा, ताकि महल में आग लगते ही आप सकुशल बाहर निकल जाएं।”

इतना कहकर आगंतुक महल के एक गुप्त भाग में पहुंच गया और सुरंग खोदने के काम में लग गया। यह काम इतनी सावधानी से किया गया कि पुरोचन को तनिक भी पता न चल सका।

सुरंग बनकर तैयार हो गई। अब पांडवों को प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं थी। वे पुरोचन से पहले ही अपना कारनामा करना चाहते थे।

कुंती ने उस दिन वारणावत निवासियों को भवन में खाने की दावत दी। लोग प्रसन्नतापूर्वक भवन में पहुंचे और पांडवों के साथ मिल-जुलकर भोज का आनंद उठाया।

मध्य रात्रि से पहले ही भोजन समाप्त हो गया। पांडवों ने अतिथियों को विदा किया और स्वयं भी आपस में निर्णय कर लिया कि अब उन्हें शीघ्र-अतिशीघ्र भवन को त्याग देना चाहिए।

आधी रात को एक-एक कर चार भाई माता कुंती सहित उस गुप्त सुरंग से बाहर निकल गए। केवल भीम महल में रह गया, क्योंकि उसे ही भवन में आग लगानी थी। पुरोचन अपने कमरे में गहरी नींद में सोया हुआ था। भीम ने पहले उसी के कमरे में आग लगाई, जो शीघ्र ही पूरे भवन में फैलने लगी। इसी बीच भीम भी सुरंग के मार्ग से बाहर निकल चुका था।

आग की लपटें आकाश में ऊपर तक उठ रही थीं। वारणावत के निवासी पलक झपकते ही जाग गए। भवन को आग में बुरी प्रकार जलता देखकर लोगों में हड़कंप मच गया। भवन में पांडव अपनी माता सहित रहते थे। उनके इस दुखद अंत से वारणावत की जनता का हृदय भर आया।

यह समाचार चारों ओर फैल गया कि पांचों पांडव अपनी माता कुंती सहित भवन में जलकर मर गए। अगले दिन भवन में एक महिला एवं उसके पांच युवा पुत्रों की लाशें भी मिल गईं। दरअसल, यह महिला अपने पांच पुत्रों के साथ रात्रि भोज में आई थी और इतना खा-पी लिया था कि नशे की धुत्त में भवन में ही सो गई थी।

दुर्योधन को अग्निकांड की सूचना मिली तो उसे सुखद आश्चर्य हुआ कि कितनी आसानी से उसकी योजना सफल हो गई। वह प्रसन्न था कि उसके शत्रु उसकी राह से हट गए। ऊपरी मन से उसने शोक प्रकट किया और पूरे देश में चचेरे भाइयों की अकाल मृत्यु का शोक मनाने का निर्देश जारी कर दिया।

□□

किंतु पांडव जीवित थे।

वे सुरंग से निकलकर एक नदी के किनारे जा पहुंचे थे। नदी के तट पर पहले से ही नाव तैयार थी, जिस पर विदुर का भेजा हुआ नाविक उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

नाविक ने पांडवों को नाव पर बिठाया और नदी के पार पहुंचा दिया। नदी की दूसरी ओर भयावह वन था। पांडवों ने उसी वन की राह पकड़ी। जब तक संकट पूरी प्रकार टल नहीं जाता, वे हस्तिनापुर से दूर किसी एकांत में रहना चाहते थे।

□□

वन में भटकते हुए पांडव बहुत दूर निकल आए।

चलते-चलते वे थककर चूर हो गए थे। भीम की शारीरिक स्थिति तनिक सुदृढ़ थी, इसलिए वह भाइयों का धैर्य बंधाता और अपने कंधों पर बिठाकर आगे ले जाता।

एक जगह जब सभी भाई निढाल हो गए तो वे एक वृक्ष के नीचे आराम करने बैठ गए।

भीम बोला, “आप लोग विश्राम कीजिए, मैं कहीं आसपास से पानी लाता हूं।”

थोड़ी देर बाद जब भीम लौटकर आया तो देखा कि चारों भाई माता सहित गहरी नींद में सो गए हैं। अपनी माता व भाइयों के लिए भीम का हृदय भर आया। आज वे वन में भटक रहे थे और भूमि पर सोने को विवश थे, जबकि उनकी जगह महलों में थी। कैसा था विधि का विधान!

भीम ने उन्हें आराम से सोने दिया और स्वयं पहरा देने लगा।

उस वन में हिडंब नाम का एक राक्षस रहता था, जो मानवभक्षी था। वन में मानव गंध पाकर उसके नथुने फड़क उठे। वह अपनी बहन हिडिंबा से बोला, “देखो! वन में कुछ मानव आए हैं, तुम उन्हें पकड़कर यहां लाओ। आज जमकर भोजन करेंगे।”

हिडिंबा पांडवों को लाने चल पड़ी।

एक वृक्ष के नीचे एक स्त्री और चार मानव सोए हुए थे और एक सुदृढ़ काठी का सुदर्शन पुरुष उनकी पहरेदारी कर रहा था। हिडिंबा एकटक भीम को देखती रह गई। भीम पहली दृष्टि में ही उसे भा गया। वह अपने भाई का आदेश भूल गई और सुंदर युवती का रूप धारण कर भीम के पास जाकर बोली, “सुनो! मैं हिडिंबा हूं। मेरे भाई ने मुझे तुम लोगों को पकड़कर लाने को भेजा है, क्योंकि वह तुम लोगों को खाना चाहता है, किंतु मैं तुमसे प्रेम करने लगी हूं। अगर तुम मुझसे विवाह कर लो तो तुम्हें अपने भाई से बचा सकती हूं।”

भीम बोला, “मैं तुम्हारे भाई से नहीं डरता। तुम्हारा भाई या तुम हमें हाथ भी नहीं लगा सकते।”

“मूर्ख मत बनो मानव!” हिडिंबा बोली, “कहीं ऐसा न हो कि हिडंब यहीं चला आए और तुम लोगों के प्राण संकट में पड़ जाएं। इससे अच्छा तो यही है कि तुम मेरी बात मान लो।”

किंतु भीम को हिडिंबा की बात स्वीकार नहीं थी।

हिडंब ने कुछ देर तक बहन की प्रतीक्षा की, फिर देर होते देखकर वह स्वयं मानवों की खोज में चल पड़ा।

भीम ने उस विशालकाय राक्षस को अपनी ओर आते देखा तो वह उसका मुकाबला करने को तैयार हो गया।

अगले ही पल वे दोनों दो पर्वतों की प्रकार आपस में टकरा गए। दोनों बलशाली थे। उनकी मुठभेड़ से धरती डोल उठी और वातावरण में धूल का गुबार उठने लगा। राक्षस जोर-जोर से चीखकर भीम को पछाड़ने का प्रयास कर रहा था।

राक्षस की गर्जना और उठापटक की ध्वनि सुनकर शेष भाइयों और माता की नींद उचट गई। पास ही एक सुंदर युवती को देखकर कुंती ने उससे पूछा, “तुम कौन हो? मेरे पुत्र से क्यों लड़ रहे हो?”

हिडिंबा बोली, “यह मेरा भाई हिडंब राक्षस है, जो आप लोगों को खाने के लिए यहां आया है।”

कुंती बोली, “यह तो अनाचार है। तुम अपने भाई को रोकती क्यों नहीं?”

“मैं आप लोगों को बचाना चाहती हूं, परंतु भीम ने मेरा प्रस्ताव ठुकरा दिया।”

“प्रस्ताव? कैसा प्रस्ताव?”

“मैंने उससे कहा था कि वह मेरे साथ विवाह कर ले तो मैं आप लोगों को हिडंब से बचाकर आकाशमार्ग से निरापद जगह ले जाऊंगी।” हिडिंबा बोली, “परंतु भीम ने मेरी बात नहीं मानी और तब तक मेरा भाई आ पहुंचा।”

युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल व सहदेव हिडिंबा की बात सुनकर तैश में आ गए। वे राक्षस से लड़ने दौड़ते हुए भीम के पास पहुंचे।

भीम बोला, “आप लोग बीच में मत पड़िए। इस राक्षस के लिए तो मैं अकेला ही बहुत हूं।”

इतना कहकर भीम ने हिडंब को दोनों हाथों से पकड़कर ऊपर उठाया और जोर से धरती पर पटक दिया। धरती पर गिरते ही हिडंब ने दम तोड़ दिया।

भीम ने एक दृष्टि हिडिंबा पर डाली, फिर अपनी माता और भाइयों के साथ आगे बढ़ चला। उसने हिडिंबा से बात तक नहीं की।

हिडिंबा भीम के बिना नहीं रह सकती थी। वह भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ी।

भीम को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने क्रोधित होते हुए कहा, “सुंदरी! हमारे पीछे जाने की आवश्यकता नहीं, अन्यथा मुझे विवश होकर तुम्हारे साथ भी वही व्यवहार करना पड़ेगा जो तुम्हारे भाई के साथ किया है।”

हिडिंबा की आंखें भर आईं। वह कुंती से याचना करती हुई बोली, “हे माता! आप ही भीम को समझाइए, मैं उनके बिना जी नहीं सकती। कृपया उन्हें आदेश दीजिए कि वे मेरे साथ विवाह कर लें।”

कुंती असमंजस में पड़ गई। युधिष्ठिर पास ही खड़े थे। उन्हें हिडिंबा पर दया आ गई। बोले, “भीम! तुम्हें ऐसी नारी का प्रेम नहीं ठुकराना चाहिए, जो मन-प्राण से तुम्हें अपनाना चाहती है।”

बड़े भाई के आग्रह पर भीम ने अंततः हिडिंबा से विवाह कर लिया। इस विवाह से कालांतर में वे घटोत्कच नामक वीर पुत्र के पिता बने।

वीर घटोत्कच ने सदैव संकट में पिता की सहायता की और बाद में युद्धकाल में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

□□

पांडवों का वन-वन भटकना जारी था।

पांडवों ने अपना भेष बदल लिया था, ताकि उन्हें कोई पहचान न सके।

उन्हें पता नहीं था कि इस भटकन का अंत कहां होगा। बस, वे नदी, नाले, पहाड़ और जंगल पार करते हुए निरंतर आगे बढ़ते जा रहे थे। हस्तिनापुर पीछे छूटता जा रहा था और आगे

अंतहीन पथ था। मार्ग में मत्स्य पांचाल, वीचक, त्रिगर्त आदि कई देश पड़े, किंतु वे कहीं भी अधिक समय के लिए नहीं ठहरे।

कुंती अपने पुत्रों को इस प्रकार दीन-हीन स्थिति में देखकर मन-ही-मन रोती थी। एक दिन उससे रहा नहीं गया तो अपने पुत्र से पूछा, “अंततः इस प्रकार कब तक भटकते रहोगे युधिष्ठिर?”

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, “घबराओ मत माता! भले ही फिलहाल हमारे सामने कोई मंजिल न हो, किंतु मुझे विश्वास है कि अनुकूल अवसर आते ही हमें मार्ग मिल जाएगा।”

इतना कहकर युधिष्ठिर अनभिज्ञ दिशा की ओर बढ़ चले और माता व भाई उनके पीछे चल पड़े।

युधिष्ठिर की बात सच निकली।

एक दिन जब वे शाम को एक सरोवर के किनारे लेटे हुए विश्राम कर रहे थे, तभी उचित मार्गनिर्देश देने वाला उनके पास पहुंच गया। वह कोई और नहीं महर्षि व्यास थे, जो वस्तुतः उनके दादा ही थे। व्यास उन्हें इस हालत में देखकर हैरान रह गए, बोले, “यह मैं क्या देख रहा हूं? अपना राजपाट छोड़कर यहां क्यों भटक रहे हो?”

इस पर पांडवों ने उन्हें आदि से अंत तक सारी कथा कह सुनाई। सुनकर व्यास अत्यंत दुखी हुए। बोले, “प्रारब्ध को कौन टाल सकता है। यदि धैर्यपूर्वक स्थितियों का सामना करोगे तो सारी विपत्तियों पर विजय पा लोगे। अब तुम एकचक्र नगरी चले जाओ। वह सुरक्षित जगह है। वहां तुम ब्राह्मण के वेश में रहो। समय की प्रतीक्षा करो। एक दिन ऐसा आएगा, जब तुम्हारे सिद्धांतों की विजय होगी और खोया हुआ वैभव तुम्हें वापस मिल जाएगा।”

पांडव महर्षि व्यास का आशीर्वाद पाकर एकचक्र नदी की ओर चल पड़े।

एकचक्र में उन्होंने एक ब्राह्मण के घर में आश्रय लिया। वे स्वयं भी ब्राह्मणों के वेश में थे। पांचों भाई दिन भर नगर में भिक्षाटन करते और शाम को सारी सामग्री माता के सामने रख देते। माता भिक्षा की सामग्री को दो भागों में बांट देती। एक भाग भीम को सौंप देती, दूसरा भाग शेष चार भाइयों के आगे परोस देती।

एक दिन की बात है, जिस ब्राह्मण के घर में पांडव रहते थे, वहां शोक छाया हुआ था। परिवार का प्रत्येक सदस्य रो रहा था। शोक करने की ध्वनि सुनकर पांडव अपनी माता के साथ तत्काल ब्राह्मण के पास पहुंचे और पूछा, “क्या कष्ट है भाई! इतना क्यों रो रहे हो?”

ब्राह्मण ने आंसू पोंछते हुए कहा, “हमारे दुखों का कोई अंत नहीं। हमारा नगर एक भयानक राक्षस के अत्याचार से पीड़ित है। यह राक्षस नगर की सीमा पर रहता है। उसका आदेश है कि प्रतिदिन शाम को गाड़ी भर अन्न व दो बैल लेकर नगर के एक परिवार का एक सदस्य बारी-बारी उसके पास पहुंचे, तभी वह हमें यहां रहने देगा। इसलिए प्रतिदिन किसी-न-किसी परिवार का एक सदस्य एक गाड़ी में अन्न भरकर व दो बैल लेकर उसके पास पहुंचता है। राक्षस की भूख इतनी प्रबल होती है कि वह सारा अन्न व दो बैल खाने के बाद परिवार के सदस्य को भी खा जाता है। हम उस राक्षस का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, क्योंकि वह अत्यंत बलशाली है। आज हमारे परिवार की बारी है। हमारे परिवार से एक सदस्य राक्षस की भोजन सामग्री लेकर जाएगा और वापस लौटकर नहीं आएगा। बस, इसी का रोना है।”

सुनकर पांडव स्तब्ध रह गए। पांचों भाइयों की मुद्रियां क्रोध में तन गईं। कुंती ने ब्राह्मण को सांत्वना दी और भीम से बोली, “भीम! आज राक्षस के लिए भोजन की सामग्री लेकर तुम जाओ।”

“जो आज्ञा माताजी!”

भीम जाने को जैसे ही मुड़ा, युधिष्ठिर ने उसे रोककर माता से कहा, “माता! भीम को मत भेजो। हमें भीम की आवश्यकता है। भीम को हम विपदा में नहीं डाल सकते। अर्जुन की भी हमें

आवश्यकता है, उसे भी राक्षस के पास भेजना उचित नहीं और नकुल व सहदेव हमारे छोटे भाई हैं, उन्हें भेजना अन्याय है। राक्षस के पास मेरा जाना ही ठीक रहेगा। मैं अगर वापस नहीं भी लौटा तो भीम व अर्जुन शत्रुओं से टक्कर लेने को काफी हैं।”

“मैं तुम्हारी भावनाओं का आदर करती हूँ युधिष्ठिर!” कुंती बोली, “परंतु मेरा निर्णय सही है, तुम भीम को राक्षस के पास जाने दो, वह विजयी होकर ही लौटेगा।”

भीम ने एक गाड़ी में अन्न भरा और उसमें दो बैलों को जोतकर नगर की सीमा की ओर चल पड़ा। उस राक्षस का नाम था बकासुर। वह भूखा-प्यासा अपने भोजन की प्रतीक्षा में ही बैठा था। भीम जान-बूझकर देर से पहुंचा।

भीम ने बैलों को छिपा दिया और चीखकर राक्षस को पुकारा, “ओ बक! आ जाओ, मैं तुम्हारे लिए खाना लाया हूँ।”

बकासुर भागा-भागा बाहर निकला।

भीम ने उसे पास आते देखा तो बोला, “बस-बस! वहीं खड़े रहो। अब देखो, मैं कैसे खाता हूँ।” यह कहकर भीम स्वयं ही दोनों हाथों से अन्न उठाकर खाने लगा।

बकासुर पहले ही भूख से बेहाल था, ऊपर से भीम की यह हरकत देखकर उसका शरीर क्रोध से थर-थर कांपने लगा। वह चीखकर बोला, “कौन हो तुम? मेरा खाना खाने का तुम्हें क्या अधिकार है?”

भीम ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप अन्न खाता रहा। बकासुर का क्रोध बढ़ता ही चला गया। भीम यही तो चाहता था कि वह क्रोध से बेकाबू हो जाए, क्योंकि भूख और क्रोध में अच्छे-अच्छों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। वह भीम के पास पहुंचा और उसकी पीठ पर दो-चार जबरदस्त वार कर दिए, परंतु इन वारों का भीम पर कोई असर नहीं हुआ। वह बिना बकासुर की ओर देखे मजे से खाता रहा।

बकासुर चीखकर बोला, “यह मेरा खाना है, तुम इसे नहीं खा सकते। मेरे बैल कहां हैं?”

भीम बोला, “बैल बेचारे कहीं घास चर रहे होंगे। मुझे दुःख है कि आज तुम्हें कुछ भी खाने को नहीं मिलेगा और सुनो! मुझे चुपचाप खाने दो, खाने के समय मुझे तुम्हारा चीखना-चिल्लाना या मारपीट करना तनिक भी पसंद नहीं।”

बकासुर के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसने आगे बढ़कर भीम पर दो-चार और घातक वार किए, परंतु भीम ने फिर भी उसकी ओर देखा तक नहीं और चुपचाप खाता रहा। अपने प्रहारों का भीम पर कोई असर न देखकर उसने भीम को खींचकर गाड़ी से हटाना चाहा, लेकिन भीम को वह तनिक-सा भी हिला तक नहीं पाया। भूख और थकावट से बकासुर बेहाल हो गया। वह दांत भींचकर बोला, “मैं कहता हूं, भाग जाओ यहां से, अन्यथा मैं तुम्हें खा जाऊंगा।”

भीम बोला, “हां, तुम अब तक उन बेचारे प्राणियों को खाते ही रहे हो, जो तुम्हारे लिए खाना लाते थे, किंतु अब तुम ऐसा कभी नहीं कर सकोगे।”

बकासुर भूख से व्याकुल था और भीम से हाथापाई करते-करते थक भी गया था। क्रोध व मायूसी से उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया। वह चीखकर जैसे ही आगे बढ़ा, भीम ने उसे अपने दोनों हाथों में उठाकर भूमि पर पटक दिया। बकासुर के प्राण-पखेरू उड़ गए।

भीम ने लाश की टांगें पकड़ीं और घसीटते हुए नगर के द्वार पर पटक दीं।

नगर में जब बकासुर की मृत्यु का समाचार पहुंचा तो लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। चारों ओर आनंद और उत्साह का वातावरण छा गया। लोगों ने भीम का भव्य स्वागत किया। सभी सोच रहे थे—भीम में अवश्य कोई अलौकिक शक्ति है। जो काम क्षत्रियों का है, उसे एक ब्राह्मण ने कर दिखाया।

पांडव थोड़ा घबराए। उन्हें डर था कि कहीं उनकी वास्तविकता का भेद न खुल जाए। उन्होंने तत्काल एकचक्र नगरी छोड़ देने का निर्णय कर लिया, परंतु कहां जाएं? अंततः कब तक

लोगों की निगाहों से बचते हुए भटकते रहेंगे ?

एक दिन वहां एक तपस्वी घूमता हुआ आ पहुंचा। उससे पता चला कि पांचाल देश का राजा द्रुपद अपनी कन्या द्रौपदी का स्वयंवर कर रहा है। स्वयंवर में देश-विदेश के राजकुमार भाग लेने पहुंच रहे हैं।

यह समाचार पांडवों को मिला तो उन्होंने सोचा—उन्हें भी स्वयंवर में भाग लेना चाहिए, अंततः वे भी तो राजकुमार हैं। इसलिए उन्होंने नगरवासियों से विदा ली और पांचाल की ओर चल पड़े।

(छह)

पांचाल में स्वयंवर की तैयारियां जोर-शोर से की गई थीं। देश-विदेश से लोग स्वयंवर की शोभा देखने आए हुए थे। पांचल नई नवेली दुल्हन की प्रकार सजाया गया था।

पांडव बदले हुए वेश में पांचाल पहुंचे और कुम्हारों की बस्ती में आश्रय लिया। एक कुम्हार ने उन्हें ब्राह्मण जानकर अपने घर में सम्मान से रहने को जगह दी। यहां भी वे भिक्षाटन द्वारा ही अपना गुजर-बसर करते थे।

स्वयंवर का नियत समय आ गया।

उस दिन पांचाल की शोभा देखने लायक थी। दूर-दूर से नरेश व राजकुमार द्रौपदी को प्राप्त करने आ पहुंचे। सारा नगर उल्लास व आनंद से ओत-प्रोत था। पांडव सुबह ही अपने घर से निकले और स्वयंवर-स्थल की ओर चल पड़े।

स्वयंवर-स्थल अति विशाल था। स्थल के बीचोबीच एक मंच पर भारी धनुष खड़ा हुआ था। वहीं पर एक बड़ी-सी कड़ाही में तेल भरा हुआ था और पास में एक यंत्र पर एक नकली मछली तेजी से घूमती हुई लटक रही थी। सभास्थल के दोनों ओर देश-विदेश के नामी नरेश, राजकुमार अपनी किस्मत आजमाने बैठे थे। चारों ओर ऊंची-ऊंची दीर्घाएं बनी थीं, जिन पर दर्शकगण बैठे हुए आज के भव्य समारोह के शुरू होने की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

द्रौपदी के वरण की इच्छा से कौरव राजकुमार भी पहुंचे थे। दुर्योधन अपने भाइयों व कर्ण के साथ राजकुमारों के बीच बैठा था।

स्वयंवर की शोभा निहारने श्रीकृष्ण भी द्वारिका से पधारे थे। पांडव ब्राह्मण-वेश में दर्शक-दीर्घा में वहां बैठे थे, जहां ब्राह्मण समुदाय बैठा था। चारों ओर शोर गूंज रहा था।

थोड़ी देर में ही द्रौपदी अपने पिता द्रुपद एवं भाई धृष्टद्युम्न के साथ समारोह-स्थल पर आ पहुंची। एक ऊंचे आसन पर राजा सहित भाई-बहन बैठ गए। सभा में सन्नाटा छा गया। सभी

द्रौपदी की ओर निहार रहे थे। द्रौपदी की सुंदरता व श्रृंगार देखकर अभिलाषी राजकुमारों के हृदय की धड़कनें तेज हो गईं। द्रौपदी बिना किसी की ओर देखे चुपचाप भाई की बगल में बैठी रही। उसकी अद्वितीय सुंदरता से सभी अभिभूत थे।

समारोह आरंभ होने से पहले यथाविधि पुरोहितों ने यज्ञ किया। तत्पश्चात् धृष्टद्युम्न ने अपने आसन से उठकर सभा को संबोधित किया—

“हे सम्मानित आगंतुको! आपका स्वागत है। जैसा कि आप जानते हैं, आज राजकुमारी द्रौपदी का स्वयंवर है। राजकुमारी उसी वीर पुरुष का वरण करेगी, जो तेल की कड़ाही में मछली की परछाई की ओर देखते हुए इस धनुष से तीर चलाकर यंत्र पर लटके लक्ष्य को पांच बार भेद देगा। अब आप लोग एक-एक कर आगे बढ़िए और अपनी धनुर्विद्या का परिचय दीजिए। सफल धनुर्धारी ही राजकुमारी द्रौपदी का पति बनने का सौभाग्य प्राप्त करेगा।”

इतना कहकर धृष्टद्युम्न बैठ गया। सभा में फिर शांति छा गई। सबकी दृष्टि सभास्थल के बीचोबीच तेल की कड़ाही, धनुष तथा ऊंचाई पर लटके मछली के निशान की ओर उठ गई। सभी की उत्सुकता यह जानने की कि कौन वीर निशाने को तीर से भेदकर द्रौपदी को प्राप्त कर पाता है।

उपस्थित राजकुमारों ने लापरवाही से इन वस्तुओं को देखा और मूंछों पर ताव देकर द्रौपदी की ओर निहारने लगे। उनके विचार से ये बहुत ही मामूली शर्तें थीं। अब एक-एक राजकुमार उठने लगे और सभा स्थल के बीचोबीच पहुंचने लगे।

धनुष को हाथ लगाते ही राजकुमारों को पता चल गया कि जिस शर्त को उन्होंने आसान समझा था, वह आसान नहीं थी। लक्ष्य को भेदना तो दूर की बात थी, वे धनुष तक न उठा सके। कुछ राजकुमार तो धनुष को उठाने का प्रयास करते-करते पसीने से तर-बतर हो गए, कुछ तनिक-सा उठा सके तो असहाय भार से हांपने लगे और कुछ तो ऐसे थे, जो धनुष उठाने के चक्कर में धड़ाम से नीचे गिर पड़े।

प्रत्येक राजकुमार की असफलता से सभास्थल में बैठे लोग जोरों से हंस पड़ते थे। वातावरण में तेज हंसी की लहर दौड़ जाती थी। इस हंसी में असफल राजकुमार भी शामिल थे। द्रौपदी मंद-मंद मुस्कराती हुई अपनी जगह पर चुपचाप बैठी थी।

दुर्योधन के साथ-साथ अन्य अनेक राजा व राजकुमार भी असफल होकर सिर झुकाए बैठे थे, तभी कर्ण अपनी जगह से उठा और धनुष की ओर बढ़ा।

कर्ण को देखकर चारों ओर कोलाहल मच गया। लोग कहने लगे, “अरे! यह तो कर्ण है-सारथी पुत्र। भला क्षत्रिय कन्या इसका वरण कैसे करेगी?”

कर्ण सधे पगों से आगे बढ़ा और पलक झपकते ही धनुष उठा लिया। जब उसने तेल में लक्ष्य की परछाई की ओर दृष्टि गड़ाकर धनुष की प्रत्यंचा खींची, तभी सभास्थल में द्रौपदी का स्वर गूंज उठा, “मैं सारथी-पुत्र का वरण नहीं कर सकती।”

यह सुनते ही कर्ण लज्जा से अभिभूत हो गया। उसने चुपचाप धनुष अपनी जगह रख दिया और सिर झुकाकर वापस लौट आया। अपमान और लज्जा के मारे वह आंखें नहीं उठा पा रहा था।

पास ही बैठे दुर्योधन ने कहा, “तुम वापस क्यों लौट आए? तुमने लक्ष्य का भेदन क्यों नहीं किया? द्रौपदी को बोलने का कोई अधिकार नहीं। क्या तुम जानते नहीं कि स्वयंवर का नियम है, कन्या कोई विरोध प्रकट नहीं कर सकती। जो भी शर्त पूरी करेगा, उसे ही कन्या वरेगी।”

कर्ण खिसयानी-सी हंसी के साथ बोला, “मुझे द्रौपदी पसंद नहीं।”

इस प्रकार समस्त राजकुमार व नरेश असफल होकर बैठ गए। यह देखकर पांडवों का क्षत्रिय रक्त खौलने लगा। भाइयों के कहने पर अर्जुन अपनी जगह से उठा और धनुष उठाने आगे बढ़ गया।

एक तेजस्वी ब्राह्मण युवक को धनुष उठाने को बढ़ते देखकर सभा में फिर कोलाहल मच गया। लोग सोच रहे थे, जो कार्य क्षत्रियों से नहीं हो सका, वह भला ब्राह्मणों से कैसे हो सकेगा? राजकुमार निश्चित थे कि यह ब्राह्मण क्या खाकर धनुष उठा सकेगा। हां, श्रीकृष्ण ने उसे पहली दृष्टि में ही पहचान लिया था। उन्होंने अपने भाई बलराम से कहा, “अरे! यह तो अर्जुन है। इसका अर्थ है कि पांडव जीवित हैं, जलकर नहीं मरे।”

अर्जुन तो श्रेष्ठ धनुर्धारी था ही। उसने धनुष को यूँ उठा लिया, जैसे वह कोई खिलौना हो। फिर तेल की कड़ाही में देखते हुए उसने निशाने की ओर तीर भेदने शुरू कर दिए। एक-एक करके उसके पांचों तीर ठीक मछली पर जा लगे।

अब तो सभास्थल में हर्ष और उत्साह छा गया। वातावरण तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। लोग अर्जुन की वीरता की प्रशंसा करने लगे, परंतु क्षत्रीय राजकुमार व नरेशों को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने खड़े होकर विरोध किया, “यह अन्याय है, स्वयंवर में केवल क्षत्रिय वीर ही भाग ले सकते हैं, एक ब्राह्मण राजकुमारी का पति नहीं बन सकता।”

द्रुपद ने किसी की एक नहीं सुनी। वे बोले, “आप लोग जानते हैं कि स्वयंवर में जात-पात व ऊँच-नीच का भेदभाव किए बिना कोई भी भाग ले सकता है और फिर क्षत्रिय राजवंशों को भी यहां पूरा-पूरा अवसर दिया गया था। दुःख की बात है कि उनमें से कोई भी अपनी वीरता का प्रदर्शन नहीं कर सका। अब अगर ब्राह्मण युवक ने अपनी योग्यता का परिचय दिया है तो उसका विरोध करना उचित नहीं। ...जाओ पुत्री द्रौपदी! ब्राह्मण युवक का वरण करो।”

द्रौपदी तो पहले ही इस तेजस्वी ब्राह्मण पर मुग्ध थी और उसकी वीरता देखकर मन-ही-मन उसका वरण कर चुकी थी। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ी और वरमाला अर्जुन के गले में डाल दी।

सभास्थल हर्षोल्लास के गगनभेदी नारों से गूँज उठा। पांडवों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था, किंतु पराजित राजकुमारों का क्रोध सिर पर चढ़कर बोलने लगा था। एक तो पहले ही वे अपनी हार से निराश हो चले थे, अब एक ब्राह्मण को द्रौपदी जैसी सुंदर कन्या का वर बनते

देखकर अपमान से उनका बुरा हाल हो गया था। वे बोले, “राजा द्रुपद! अगर आपने इस अन्याय को नहीं रोका तो विवश होकर हमें कोई कठोर कदम उठाना पड़ेगा। क्षत्रिय-कन्या को ब्राह्मण के हवाले करना धर्म के विरुद्ध है।”

राजा द्रुपद ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने वर-वधु को आशीर्वाद दिया। अर्जुन द्रौपदी का हाथ अपने हाथ में लेकर भाइयों की ओर बढ़ने लगा।

राजकुमार चीखे, “यह धोखा है। हम क्षत्रियों को यहां बुलाकर राजा द्रुपद ने हमारा अपमान किया है। हम क्षत्रिय-कन्या को ब्राह्मण की पत्नी नहीं बनने देंगे। हम द्रौपदी को इस ब्राह्मण के चंगुल से बचाकर ले जाएंगे, राजा द्रुपद को मार डालेंगे।”

सभामंडप में हंगामा मच गया। समस्त राजकुमार एकजुट होकर अर्जुन की ओर बढ़े, किंतु अर्जुन की रगों में भी क्षत्रिय रक्त बह रहा था, वह अपनी पत्नी की सुरक्षा के लिए तैयार हो गया। उसने बढ़ते हुए राजकुमारों को ललकारा। अगले ही पल अर्जुन के शेष भाई भी मैदान में कूद पड़े। स्वयंवर-स्थल युद्ध का मैदान बन गया। पांडव एक-एक राजकुमार को अच्छा सबक सिखाने लगे। भीम ने अपने दोनों हाथों में वृक्ष की दो मोटे तने थाम लिए और उनको गदा की भांति हिलाता हुआ राजकुमारों पर भीषण वार करने लगा। अर्जुन ने भी तीरों के वार से राजकुमारों को लहूहलान कर दिया। राजकुमारों में खलबली मच गई। पांचों पांडव वीरता से लड़ते व सबको पछाड़ते द्रौपदी को स्वयंवर-स्थल से सुरक्षित ले आए। अर्जुन अपनी नववधु व भाइयों के साथ कुम्हारों की बस्ती की ओर चल पड़ा।

कुंती घर में अकेली थी।

पुत्र सुबह से भिक्षाटन के लिए घर से निकले थे और अब शाम होने वाली थी, लेकिन वे अभी तक लौटे नहीं थे। कुंती व्याकुलता से पुत्रों की ही प्रतीक्षा कर रही थी।

तभी घर के बाहर पांचों भाई पहुंच गए। घर का द्वार बंद था। भीम ने एक दृष्टि द्रौपदी की ओर देखा और फिर माता को चौंकाने के लिए बाहर से ही पुकारकर बोला, “माता...माता!

शीघ्रता से आओ, देखो आज हमें शिक्षा में कितनी सुंदर वस्तु मिली है।”

कुंती पुत्रों का आगमन जानकर प्रसन्न हो गई। उसे प्रतीत हुआ, सचमुच उन्हें आज भिक्षा में कोई उत्तम पदार्थ मिला है। वह अंदर से बोली, “वत्स! जो कुछ मिला है, उसे तुम पांचों भाई आपस में बांट लो।”

“अरे माता! यह क्या कह डाला!” भीम आश्चर्य और दुःख से बोला।

“ओह माता!” अर्जुन का हृदय तेजी से धड़क उठा।

कुंती पुत्रों की घबराहट भरी ध्वनि सुनकर चौंकी। वह भागी-भागी पुत्रों के पास पहुंची। वह अर्जुन के साथ एक अत्यंत रूपसी युवती को देखकर ठिठक गई। युवती सोलह शृंगार से परिपूर्ण थी और राजकुमारी प्रतीत हो रही थी। कुंती को समझते देर नहीं लगी कि वस्तुस्थिति क्या है। वह मन-ही-मन पछताई, “हाय! मैंने क्या कह दिया!”

द्रौपदी ने आगे बढ़कर कुंती के चरण स्पर्श किए। कुंती ने उसे हृदय से लगाकर कहा, “अर्जुन! मुझे हर्ष है कि आज तुम पांचाल की राजकुमारी को जीत लाए हो। इतनी सुंदर पुत्रवधु पाकर तो मैं निहाल हो गई। चलो, अंदर चलो। आओ पुत्री! तुम भी अंदर आओ।”

बेचारी द्रौपदी के मस्तिष्क में भांति-भांति के बुरे विचार आ रहे थे। कहां तो वह अर्जुन को अपना पति मानकर आई थी और कहां अब वह पांचों भाइयों की पत्नी बनने को बाध्य थी। उसे विश्वास था कि वे लोग अपनी माता का वचन नहीं टालेंगे।

कुंती कैसे सह सकती थी कि उसके वचन को मान लिया जाए। सब अंदर आ गए तो कुंती धीरे से बोली, “पुत्रो! मैंने जो कुछ कहा था, वह अनभिज्ञता में कहा था। मुझे क्या पता कि तुम लोग क्या प्राप्त करके आए हो। मैंने तो समझा था कि प्रतिदिन की प्रकार भिक्षा लेकर आए हो, इसलिए मेरी बात पर ध्यान मत देना। अर्जुन! तुम्हारी पत्नी पर केवल तुम्हारा ही अधिकार रहेगा।”

अर्जुन बोला, “नहीं माता! मैं तुम्हारे वचन का अनादर नहीं कर सकता। अब तो द्रौपदी हम पांचों भाइयों की ही पत्नी बनेगी।”

“ऐसा मत कहो पुत्र!” कुंती सिसककर बोली, “यह उचित नहीं है।”

युधिष्ठिर भी माता का समर्थन करते हुए बोले, “माता ठीक कर रही है अर्जुन! द्रौपदी को तुमने जीता है और उसने तुम्हारे ही वरण किया है। वह तुम्हारी पत्नी है। नारी एक ही पुरुष की पत्नी बनती है। एक से अधिक पुरुषों की पत्नी बनना अनुचित है। ऐसी नारी पत्नी नहीं कहलाती नगरवधु कहलाती है, यह तो पाप है।”

अर्जुन बोला, “माता का वचन मेरे लिए अंतिम आदेश है। भ्राताश्री! तुम हम सबसे बड़े हो, धर्मपरायण हो, न्यायप्रिय हो, तुम्हीं मुझे माता के आदेश का पालन करने से रोक रहे हो, यह तो अनर्थ है। भ्राताश्री! उचित तो यही है कि अब तुम्हीं निर्णय करो, हमें क्या करना चाहिए? द्रौपदी से कैसा व्यवहार करना चाहिए?”

युधिष्ठिर भी माता के आदेश का उल्लंघन करने का साहस न कर सके। इसलिए अर्जुन की बात सुनकर उन्होंने विवशता में निर्णय किया, “ठीक है, आज से द्रौपदी हम पांचों भाइयों की पत्नी हुई।”

तभी वहां श्रीकृष्ण अपने भाई बलराम के साथ आ पहुंचे। श्रीकृष्ण बोले, “द्रौपदी जैसी सुशील पत्नी पाने की बधाई हो अर्जुन!”

श्रीकृष्ण को अपने बीच पाकर पांडवों की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। युधिष्ठिर ने पूछा, “श्रीकृष्ण! हम तो ब्राह्मण वेश में रहते हैं, परंतु आपने हमें कैसे पहचान लिया?”

“इसमें क्या कठिनाई है।” श्रीकृष्ण बोले, “भला वीर राजपुरुषों के चिह्न छिप सकते हैं। मैंने तो तुम लोगों को स्वयंवर में ही पहचान लिया था।”

पांडवों ने श्रीकृष्ण का हार्दिक स्वागत किया। कुछ देर तक श्रीकृष्ण पांडवों के साथ रहे, फिर उन्हें आशीर्वाद देकर वापस लौट गए।

द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न भी ब्राह्मणों का पता-ठिकाना मालूम करने उनका पीछा करता हुआ कुम्हारों की बस्ती में आ पहुंचा था। उसने श्रीकृष्ण व पांडवों की बातें छिपकर सुन ली थीं। इस बातचीत से जब पता चला कि वे वास्तविक ब्राह्मण नहीं, बल्कि क्षत्रिय राजकुमार पांडव हैं तो वह प्रसन्न हो गया कि उसकी बहन राजकुल में ब्याही है। वह वहां अधिक देर तक नहीं रुका। वह उल्टे पांव राजमहल पहुंचा और राजा द्रुपद को सूचना दी, “पिताजी! हम जिन्हें ब्राह्मण समझ रहे थे, वे वास्तव में हस्तिनापुर के राजकुमार हैं। द्रौपदी ने वस्तुतः पांडु-पुत्र अर्जुन का वरण किया है।”

“अच्छा!” द्रुपद प्रसन्नता से बोले, “यह तो बहुत ही शुभ समाचार है। अब मैं द्रोणाचार्य के अपमान का बदला बड़ी सुगमता से ले सकूंगा। शीघ्रता से पांडवों को संदेश भेजो कि विवाह का विधिवत संस्कार पूर्ण करने को यहां पहुंच जाएं।”

“ऐसा ही होगा पिताजी!” धृष्टद्युम्न बोला।

□□

पांडवों को पांचाल नरेश द्रुपद का संदेश मिला कि वे यथाशीघ्र राजमहल पहुंचें, ताकि विधिवत् विवाह आदि के बारे में विचार-विमर्श किया जाए।

पांडव पांचाल नरेश के आमंत्रण पर राजमहल पहुंचे। पांचों भाइयों के साथ माता कुंती एवं द्रौपदी भी थी। द्रुपद ने उनका उत्साह से स्वागत किया। द्रुपद ने उन पर यह प्रकट नहीं होने दिया कि वे उनकी वास्तविकता से परिचित हो चुके हैं। पांचाल नरेश ने विशेष भोज का आयोजन किया और पांडवों का खूब सम्मान किया।

बाद में पांचों भाइयों ने राजमहल की सैर की। उन्होंने राजमहल की प्रत्येक वस्तु में खूब रुचि ली। विशेषकर उन्होंने शस्त्रागार में सबसे अधिक समय बिताया। शस्त्रागार में एक-से-एक अधिक अस्त्र-शस्त्र रखे थे। वे स्वयं योद्धा थे, इसलिए एक-एक अस्त्र उठाकर वे उसका भली-भांति निरीक्षण करते और एक-दूसरे को उनकी खूबियों के बारे में बताते।

उनकी यह रुचि देखकर पांचाल नरेश को उनकी वास्तविकता जानने का बहाना मिल गया। जब पांचों भाई राजमहल घूमकर द्रुपद के पास पहुंचे तो पांचाल नरेश ने युधिष्ठिर से कहा, “आप लोगों की अस्त्र-शस्त्रों में असीम रुचि देखकर मैं शंका में पड़ गया हूं। ब्राह्मणों को अस्त्र-शस्त्रों में कोई रुचि नहीं हो सकती, यह तो क्षत्रियों का ही शौक है। आप तो कभी झूठ नहीं बोलते, सच बताइए आप कौन हैं?”

अब युधिष्ठिर से अपनी वास्तविकता छिपाई न जा सकी। उन्होंने धीरे से कहा, “पांचाल नरेश! आपकी शंका सही है। हम ब्राह्मण नहीं, पांडु-पुत्र हैं। वास्तव में हम अपने चचेरे भाई कौरवों के षड्यंत्र का शिकार होकर दर-दर भटक रहे हैं। वे हमारे प्राणों के शत्रु हैं। उन्होंने हमें वारणावत में लाख के घर में जलाकर मारना चाहा था, किंतु भाग्य से हम बच गए। पिछले एक वर्ष से हम कौरवों से बचते हुए ब्राह्मण वेश में नगर-नगर घूम रहे हैं।”

“ओह! दुर्योधन की ऐसी दुष्टता। यह तो सरासर अन्याय है। अच्छा, अब भूल जाइए अपने दुखद अतीत को।” पांचाल नरेश बोले, “मुझे प्रसन्नता है कि द्रौपदी ने क्षत्रिय वंशी अर्जुन का ही वरण किया। अर्जुन की वीरता से भला कौन अपरिचित है! अब आप लोग घबराइए नहीं, कौरव मेरे भी शत्रु हैं। उन्होंने मेरा आधा राज्य छीना है। हम अब मिलकर उनके अन्याय का मुकाबला करेंगे।”

कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होने के बाद द्रुपद बोले, “अब हमें द्रौपदी और अर्जुन का शीघ्र विवाह कर देना चाहिए, ताकि हम लोग एक-दूसरे के निकटतम संबंधी बनकर शत्रुओं का नाश करने को तत्पर हो जाएं।”

एक पल तक शांत रहकर युधिष्ठिर बोले, “आपकी बात सही है, हम स्वयं चाहते हैं कि यह शुभ कार्य शीघ्र संपन्न हो जाए, लेकिन इस विवाह में केवल अर्जुन ही भाग नहीं लेगा।”

“क्या मतलब ? मैं समझा नहीं।” द्रुपद ने आश्चर्य से कहा।

“मैं जो कुछ कहूंगा, उसे सुनकर आपको विचित्र तो लगेगा, लेकिन हम विवश हैं।”

“कैसी विवशता ? आप विस्तार से तो बताइए।”

“द्रौपदी से हम पांचों भाई विवाह करेंगे।”

“क्या ?” द्रुपद तो जैसे आसमान से गिरे।

“हां, पांचाल नरेश ! द्रौपदी हम पांचों की पत्नी बनेगी। हमें जब भी कोई वस्तु मिली है, उसे हमने हमेशा आपस में बांटा है। इस बार भी ऐसा ही होगा।”

“परंतु यह तो अधर्म है।” द्रुपद तेज स्वर में बोले।

युधिष्ठिर ने दो टूक उत्तर दिया, “हमारे लिए यही धर्म है।”

द्रुपद बड़े असमंजस में पड़ गए। उन्होंने तो सोचा भी नहीं था कि एक दिन उनकी पुत्री को पांच-पांच पतियों का वरण करना पड़ेगा। वे तो प्रसन्न थे कि द्रौपदी को अर्जुन जैसा वीर क्षत्रिय राजकुमार पति के रूप में मिला है, लेकिन युधिष्ठिर की बात सुनकर द्रुपद गहरी सोच में डूब गए। वे धीरे-धीरे बोले, “युधिष्ठिर ! तुम तो धर्मप्रिय व्यक्ति हो। तुम्हीं सोचो, भला यह कहां तक उचित है। आज तक ऐसा नहीं सुना कि एक नारी ने पांच-पांच पुरुषों से विवाह किया हो। अगर द्रौपदी पांच व्यक्तियों की पत्नी बनी तो संसार क्या कहेगा ?”

युधिष्ठिर स्वयं इस तथ्य को महसूस कर रहे थे, फिर भी बोले, “आपकी बात उचित है, परंतु मैं विवश हूं...।”

“उचित होगा कि एक बार आप लोग इस विषय पर फिर से विचार कर लें...।”

“हमने अच्छी प्रकार विचार कर लिया है। यही हमारा अंतिम निर्णय है।”

“ओहो!” द्रुपद ने सिर पर हाथ रखकर कहा, “हे भगवान! अब क्या होगा?”

तभी वहां महर्षि व्यास पहुंच गए। उपस्थित लोगों ने उठकर महर्षि व्यास का स्वागत किया। द्रुपद ने सम्मान के साथ उन्हें आसन पर बिठाया। महर्षि ने पूछा, “बड़े चिंतित दिखाई दे रहे हो द्रुपद! क्या बात है?”

द्रुपद बोले, “महर्षि! बड़ी विकट समस्या है। आप ही हमें कोई मार्ग दिखा सकते हैं। भला एक कन्या पांच पुरुषों को वर सकती है?”

“ओह!” महर्षि व्यास मुस्कराकर बोले, “तुम शायद द्रौपदी के बारे में चिंतित हो, किंतु प्रारब्ध यही है और तुम इसे रोक नहीं सकते। द्रौपदी के भाग्य में पांच पुरुषों का ही सुख लिखा है।”

“यह कैसा भाग्य है महर्षि?”

महर्षि बोले, “इसकी लंबी कहानी है। सुनो, मैं तुम्हें बताता हूं कि द्रौपदी को यह सौभाग्य कैसे प्राप्त हुआ। पिछले जन्म में द्रौपदी का नाम नलयनी था। वह अत्यंत सती साध्वी स्त्री थी। उसकी गिनती भारत की पांच आदर्श नारियों में होती थी। उसका विवाह एक महर्षि से हुआ था, जिनका नाम मौद्गल्य था। वे न केवल शरीर से जर्जर व कृशकाय थे, बल्कि कोढ़ी व रोगी भी थे, किंतु नलयनी ने अपने पति से कभी घृणा नहीं की और हमेशा तन-मन से उनकी सेवा करते हुए स्वयं को धन्य अनुभव करती थी। पति जिस हाल में रखता, वह उसी हाल में प्रसन्न रहती थी। नलयनी युवा थी और सुंदर भी थी, फिर भी अपनी इच्छाओं का दमन करके उसने वर्षों तक पति की निःस्वार्थ भाव से सेवा-सुश्रुषा की। एक दिन अचानक उसका पति स्वस्थ, सुंदर और बलवान व्यक्ति के रूप में परिवर्तित होकर बोला, ‘नलयनी! मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ हूं। दरअसल, मैं न कोढ़ी था, न बीमार था और न ही बूढ़ा-कृशकाय। मुझे तो देवताओं ने तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए भेजा था। तुम इस परीक्षा में पूर्णतः सफल रही हो।

सचमुच तुमने सिद्ध कर दिया कि वास्तविक अर्थों में अर्द्धांगिनी क्या होती है। तुम्हारी जैसी पत्नी पाकर मैं अत्यंत उपकृत हुआ। मांगो, तुम्हें क्या चाहिए?’

नलयनी प्रसन्न होकर बोली, ‘मुझे तुम मिल गए, यही बहुत है।’

उस दिन के पश्चात् वे पति-पत्नी के रूप में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। नलयनी ने जो अब तक न पाया था, वही सुख भोग रही थी। वे वर्षों तक एक-दूसरे को प्रेम करते हुए रहने लगे। फिर ऐसा समय आया कि मौद्गल्य में वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे संसार और घर-गृहस्थी की मोहमाया से निकलकर तप करने के लिए व्याकुल हो उठे। इसलिए एक दिन उन्होंने नलयनी को त्याग देने का निर्णय कर लिया। जब नलयनी को पता चला तो वह व्याकुल हो गई। उसने पति को बहुत समझाया, परंतु उसने नलयनी की एक न सुनी और घर-संसार छोड़कर तपस्या करने चले गए। नलयनी पर तो जैसे पहाड़ टूट पड़ा। वह और कुछ नहीं मात्र अपना पति चाहती थी, इसलिए उसने भी तप से भगवान शंकर को मनाने का प्रयास शुरू कर दिया। उसके घोर तप से भगवान शंकर को दया आ गई और वह नलयनी के सामने उपस्थित हो गए। वे बोले, “उठो नलयनी! मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हुआ, बोलो क्या चाहिए?’

नलयनी भावावेश में बोली, ‘मुझे पति चाहिए— पति, पति, पति, पति...।’

‘तथास्तु!’ भगवान शंकर ने कहा, ‘तुम्हें पांच पति ही मिलेंगे।’

‘पांच पति!’ नलयनी चौंकी, ‘मैं पांच पतियों का क्या करूंगी?’

‘क्यों, तुम्हीं ने तो पांच बार पति मांगे, इसलिए अब तुम पांच पतियों की पत्नी ही बनोगी।’

नलयनी मौन रह गई। वह जानती थी कि अब कुछ नहीं हो सकता क्योंकि भगवान ने जो कुछ कह दिया, वह होकर ही रहेगा। इसलिए अगले जन्म में नलयनी ने तुम्हारे यहां द्रौपदी के रूप में जन्म लिया और पिछले जन्म के वचन के अनुसार उसे पांच वर ही मिले। यह सब

भगवान का रचा प्रारब्ध है और इसे कोई नहीं टाल सकता। इसलिए तुम भी इसे भगवान की मर्जी मानकर चुपचाप स्वीकार कर लो।”

महर्षि व्यास की बात सुनकर द्रुपद से कुछ बोला नहीं गया। लाचार होकर उन्हें युधिष्ठिर की बात मान लेनी पड़ी।

पांचों भाइयों का विधि के अनुसार द्रौपदी से विवाह हुआ।

द्रौपदी युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव की पत्नी बन गई। आचार संहिता बनाई गई कि द्रौपदी प्रत्येक पति के साथ एक-एक वर्ष रहेगी। जिस वर्ष वह एक भाई के पास रहेगी, उस वर्ष शेष चार भाई द्रौपदी के बारे में सोचेंगे भी नहीं। यही नहीं, यह नियम भी बनाया गया कि अगर कोई भूल से भी उस भाई के कक्ष में पहुंच जाएगा, जिसमें वह द्रौपदी के साथ रह रहा होगा तो उसे बारह वर्षों के लिए घर से निकाल दिया जाएगा और पवित्र नदियों में नहाकर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। (यह आचार संहिता नारद के सुझाव पर बनी थी, जिसका उल्लेख आगे किया गया है।)

द्रौपदी बारी-बारी से पांचों पतियों की सेवा में संलग्न हो गई।

(सात)

जब से पांडव हस्तिनापुर से निकले थे, तब से एकमात्र विदुर ही थे, जो उनकी कुशलता के प्रति चिंतित रहते थे। उन्हें पांडवों की गतिविधियों का बराबर समाचार मिलता रहता था। पांचाल में जो कुछ हुआ था, विदुर जान चुके थे। उन्हें प्रसन्नता थी कि द्रौपदी जैसी सुंदर व सुशील कन्या उनके वंश की वधु बन गई है।

हां, कौरव अवश्य क्षुब्ध थे। पांडवों को मृत जानकर वे अब तक निश्चित थे, लेकिन पांडव न केवल जीवित थे, अपितु पांचाल के शत्रु नरेश के संबंधी भी बन गए थे।

दुर्योधन को पुरोचन पर गुस्सा आ रहा था, जिस पर पांडवों को जलाकर मार डालने की जिम्मेदारी थी। पुरोचन स्वयं तो पांच अज्ञात नगर निवासियों के साथ जल मरा किंतु पांडव पिछले एक वर्ष से जीवित थे।

एक दिन विदुर ने यह सूचना धृतराष्ट्र को दी, “यह कितनी प्रसन्नता की बात है कि द्रौपदी जैसी सुशील कन्या हमारी वधु बनकर आ रही है।”

धृतराष्ट्र बोले, “तो क्या द्रौपदी ने दुर्योधन को वर लिया? वाह! यह तो सचमुच अत्यंत हर्ष की बात है।”

“नहीं महाराज! आप गलत समझे, द्रौपदी ने अर्जुन को वरा है।” विदुर ने बताया।

धृतराष्ट्र थोड़ा निराश हुए, फिर भी उन्होंने ऊपरी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, “तो क्या हुआ? पांडव भी तो हमारे कुल के ही दीपक हैं। द्रौपदी हमारे वंश में ही तो बहू बनकर आ रही है। उनके स्वागत की भरपूर तैयारियां की जाएं।”

दुर्योधन को पिता की यह बात जंची नहीं। उसने एकांत पाते ही धृतराष्ट्र से बात की, “आप कैसे पिता हैं? आपको अपने पुत्रों के शत्रुओं की विजय पर प्रसन्नता हो रही है। आपको पता नहीं, पांचाल नरेश द्रुपद हमारा शत्रु है।”

धृतराष्ट्र अपने पुत्रों से अपरिमित स्नेह करते थे, लेकिन पांडु-पुत्रों से भी उन्हें कम स्नेह नहीं था। हां, हर दौड़ में अपने पुत्रों को पांडवों से पिछड़ते देखकर वे दुखी अवश्य थे। वे जन्मजात अंधे थे, उन्हें अपने पुत्रों के सहारे का ही भरोसा था। इसलिए दुर्योधन की नाराजगी महसूस करते हुए बोले, “नहीं पुत्र! ऐसी बात नहीं। मुझे सच्ची प्रसन्नता तो तभी हासिल होती, जब तुम्हीं द्रौपदी को जीतकर लाते। यह तो मैंने विदुर के सामने ऐसे ही कह दिया था। तुम तो जानते हो कि विदुर पांडवों का पक्षपाती है। उसके सामने अगर ऐसा नहीं कहता तो न जाने वह पांडवों के कान में क्या कुछ फूंक डालता।”

“अब हमें पांडवों से सतर्क रहना चाहिए।” दुर्योधन बोला, “उचित तो यही है कि पांडवों को किसी प्रकार पुनः समाप्त कर देना चाहिए। वरना वे पांचाल नरेश के साथ मिलकर हमारा जीवन दूभर कर देंगे। काश! हमने पांचाल पर आक्रमण करते समय द्रुपद को भी मृत्यु के घाट उतार दिया होता। गुरु द्रोणाचार्य के कारण हमें उसे जीवित छोड़ देना पड़ा। तब तो पांडवों ने भी उन पर हमला किया था, पर अब वे उसके दामाद बन गए हैं और उसका सारा गुस्सा हम पर ही उतरेगा। वह हमें पराजित करके अपने अपमान का बदला अवश्य लेगा।”

धृतराष्ट्र लाचार थे। वे धीरे से बोले, “तुम क्या करना चाहते हो?”

“पांडवों को यहां बुलाकर चालाकी से मार देना चाहिए। उन्हें विष देकर हमेशा के लिए मार्ग से हटा देना चाहिए।”

धृतराष्ट्र मन-ही-मन कांप उठे, परंतु खुलकर विरोध नहीं कर सके। बोले, “पुत्र! जो कुछ करो, सोच-समझकर करो। पहले भी एक बार तुमने उन्हें नष्ट करने का प्रयास किया था, किंतु उसका कोई फल नहीं निकला। उचित यही है कि बुजुर्गों से विचार-विमर्श कर लो। भीष्म, विदुर और गुरु द्रोणाचार्य से मिलो, वे तुम्हारा उचित मार्ग निर्देशन करेंगे।”

उसी समय भीष्म, विदुर व गुरु द्रोणाचार्य को बुलाया गया। धृतराष्ट्र ने उनसे कहा, “पांडव एक वर्ष से हस्तिनापुर से बाहर रह रहे हैं, अब उनके साथ द्रौपदी भी है। कृपया बताइए कि हमें

क्या करना चाहिए।”

दुर्योधन बोला, “कोई भी विचार करने से पहले यह तथ्य मत भूलिएगा कि वे हमारे शत्रु के दामाद हैं।”

भीष्म ने पलक झपकते ही सारा मामला समझ लिया। बोले, “सुनो दुर्योधन! पांडव कोई पराये नहीं हैं, वे भी हमारे ही कुल के ज्योतिष्फंज हैं। उन्होंने आज तक जो कुछ किया है, धर्मानुसार किया है, प्रजा में उनका मान है, उनकी वीरता व बुद्धि का विश्व में मान किया जाता है, आज वे द्रौपदी जैसी सुंदर व सुशील कन्या के पति हैं। हमें तो उन पर गर्व करना चाहिए। उचित यही है कि हम हृदय खोलकर उनका व नववधु का स्वागत करें। वे एक वर्ष से राजधानी से बाहर भटक रहे हैं। अब हमें न्यायपूर्वक उनका अधिकार उन्हें सौंपना चाहिए। उनका भी इस राज्य पर उतना ही अधिकार है, जितना कौरवों का। पांडु ने ही अपने बाहुबल से इस राज्य का विस्तार किया था।”

दुर्योधन अपना क्रोध छिपाकर बोला, “आप कहना क्या चाहते हैं? क्या हम अपने शत्रुओं को स्वयं ही यहां आमंत्रित करें?”

“कैसी शत्रुता?” भीष्म बोले, “जो थोड़ी-बहुत कटुता है, उसे मित्रता में बदलते देर ही कितनी लगेगी। हमें यथाशीघ्र पांडवों को यहां बुलाकर युधिष्ठिर को उनका अधिकार सौंप देना चाहिए। यही न्यायसंगत है।”

विदुर बोले, “भीष्म ठीक कहते हैं। हमने पांडवों को पहले ही कम कष्ट नहीं दिए हैं, लेकिन वे हमेशा संकट से उबरकर खरे उतरे हैं। हमें अब अपनी भूल स्वीकार कर उनके साथ समानता का व्यवहार करना चाहिए। पहले ही हमारी बहुत बदनामी हो चुकी है।”

“और आपका क्या कहना है गुरुदेव?” दुर्योधन ने आशा से द्रोणाचार्य की ओर देखते हुए पूछा।

द्रोणाचार्य सारी स्थितियों से भली-भांति परिचित थे। वे जानते थे कि चचेरे भाइयों में संघर्ष हुआ तो मामला गंभीर हो जाएगा। पांडवों की वीरता से भला कौन अपरिचित था। इसके अलावा द्वारकाधीश श्रीकृष्ण पांडवों के सहायक थे। वे आवश्यकता पड़ने पर पांडवों की सहायता कर सकते थे, फिर पांचाल नरेश का सहयोग तो प्राप्त था ही। इसलिए उन्होंने भी दुर्योधन से वही कहा, जो भीष्म व विदुर ने कहा था। साथ ही चेतावनी भी दी, “पिछली भूलों से कुछ सीखो। संघर्ष के पथ से कुछ प्राप्त नहीं होगा, पांडवों के साथ मिल जुलकर ही रहो।”

इस बातचीत का परिणाम यह निकला कि दुर्योधन की बोलती बंद हो गई। वह मन मसोसकर रह गया। वह धृतराष्ट्र, भीष्म आदि की बात से असहमति प्रकट नहीं कर सकता था। बोला, “ठीक है, अगर आप लोगों का यही विचार है तो पांडवों को नववधु के साथ हस्तिनापुर लाने का प्रबंध किया जाए। विदुरजी! आप ही पांचाल जाइए और पांडवों को सम्मानपूर्वक हस्तिनापुर ले आइए। पांचाल नरेश को हमारी हार्दिक शुभकामनाएं भी दे दें। पांडवों के आने पर हम आपस में मिलकर यह निर्णय करेंगे कि भविष्य में कौरव-पांडव शांति व सद्भाव के साथ कैसे रहें।”

विदुर ढेर सारी शुभकामनाएं व उपहार लेकर पांचाल की ओर रवाना हो गए।

□□

दुर्योधन की रातों की नींद व दिन का चैन जाता रहा था। पांडवों को वह किसी भी अवस्था में हस्तिनापुर में सहन नहीं कर सकता था।

कर्ण उसकी दुविधा समझता था। इसलिए बोला, “दुर्योधन! इतना चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। हमें वृद्धों की बात पर इतना ध्यान देने की आवश्यकता नहीं, विदुर तो आरंभ से ही पांडवों के शुभचिंतक रहे हैं और भीष्म भी मन-ही-मन उन्हें चाहते हैं। शेष बचे द्रोणाचार्य तो उनकी बातों का क्या? वे क्या जानें राजनीति कैसे की जाती है, उन्हें तो मात्र अस्त्र-शस्त्र चलाना आता है। राजनीति में चालाकी से काम लेना चाहिए। उचित तो यही है कि

पांडव अथवा पांचाल नरेश कोई पग उठाएं, उसके पहले ही हमें उन पर हमला आक्रमण कर देना चाहिए।”

“तुम्हारा विचार उचित है कर्ण!” दुर्योधन बोला, “तुम्हारे जैसे वीर हमारे साथ हैं, इसलिए मुझे भरोसा है कि हम एक दिन पांडवों को अवश्य मात देंगे।”

□□

विदुर असीम शुभकामनाओं और मूल्यवान सौगातों के साथ पांचाल पहुंचे।

पांचाल नरेश द्रुपद ने उनका हृदय से स्वागत किया। पांडव भी उनका आगमन सुनकर उनसे मिलने आए। द्रुपद ने पूछा, “कैसे आना हुआ महात्मा विदुर! हस्तिनापुर में सब कुशल तो है?”

“पांचाल नरेश! मैं महाराज धृतराष्ट्र व उनके पुत्रों की ओर से शुभकामनाएं व उपहार लेकर आया हूं। अब तो हम लोग निकट के संबंधी बन गए हैं, इसलिए पुरानी शत्रुता भूल जाइए। मैं पांडवों व पुत्रवधु को हस्तिनापुर ले जाने आया हूं।”

द्रुपद ने नेत्र उठाकर युधिष्ठिर की ओर देखा। युधिष्ठिर से कुछ बोला नहीं गया। वे भूले नहीं थे कि उनके साथ कौरवों ने कैसा व्यवहार किया था। यह तो विदुर ही थे, जिनकी कृपा से वे मौत के मुंह में जाने से बच गए थे। अब वही विदुर उन्हें हस्तिनापुर ले जाने के लिए आए थे। युधिष्ठिर के अलावा अन्य चारों भाई एकाएक सोच नहीं पाए कि उन्हें क्या करना अथवा कहना चाहिए।

द्रुपद बोले, “यह तो हर्ष की बात है कि आप पांडवों को लेने आए हैं। अंततः द्रौपदी तथा पांडवों का वास्तविक घर तो हस्तिनापुर ही है। मेरी ओर से तो कोई आपत्ति नहीं। पांडव जैसा उचित समझें, वैसा करें।”

विदुर ने पूछा, “क्या विचार है वत्स! कब चलना चाहते हो?”

युधिष्ठिर इस विषय पर भली-भांति सोच लेना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उत्तर दिया, “अभी तो हस्तिनापुर चलना संभव नहीं। अभी तो हम पांचाल नरेश के अतिथि हैं। जैसा वे कहेंगे, वैसा ही करेंगे। हमें थोड़ा सोचने का समय दें।”

विदुर ने कोई हठ नहीं की। वे जानते थे कि पांडव एक बार कौरवों द्वारा छले जा चुके हैं, इसलिए अब वे अपना हर पग फूंक-फूंककर रखना चाहते हैं।

उन दिनों पांचाल में श्रीकृष्ण भी आए हुए थे और उन्होंने राजमहल में डेरा डाल रखा था। पांडवों ने उनसे इस विषय में सलाह मांगी तो वे बोले, “अपना अधिकार गंवाना उचित नहीं। मेरा तो विचार है कि आप लोगों को हस्तिनापुर तुरंत जाना चाहिए। मैं भी साथ चलूंगा।”

भला पांडवों को अब क्या आपत्ति हो सकती थी। वे द्रुपद से विदा लेकर विदुर व श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर की ओर चल पड़े।

धृतराष्ट्र ने उनके पहुंचने पर उनका भव्य स्वागत किया। अपनी कुलवधु को आशीर्वाद दिया।

कुछ दिन शांति के साथ बीते।

एक दिन धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को बुलाकर कहा, “वत्स! अब समय आ गया है कि मैं जीते-जी अपना कर्तव्य निभा दूं। मैं नहीं चाहता कि मेरे पश्चात् तुम चचेरे भाइयों में किसी प्रकार का कलह हो। तुम लोगों का इस राज्य पर बराबर का अधिकार है, इसलिए मैं राज्य को दो बराबर-बराबर भागों में विभक्त करता हूं और खांडवप्रस्थ तुम लोगों को सौंपता हूं। तुम लोग उस प्रदेश में बस जाओ। तुम्हारे चचेरे भाई हस्तिनापुर में ही रहेंगे। बोलो, मेरा यह निर्णय तुम्हें स्वीकार है?”

युधिष्ठिर एक पल मौन रहे। वे भली-भांति जानते थे कि कौरवों से राज्याधिकार पाना कोई सहज नहीं, इसलिए धृतराष्ट्र का यह निर्णय मान लेना ही बुद्धिमत्ता थी। वे बोले, “अगर

आपका यही निर्णय है तो हमें सहर्ष स्वीकार है।”

□□

इस प्रकार पांडवों के हिस्से खांडवप्रस्थ आ गया।

युधिष्ठिर अपने भाइयों व माता तथा पत्नी के साथ खांडवप्रस्थ आ गए। वह ऊबड़-खाबड़ भूमि और जंगल था। दूर-दूर तक कोई आबादी नहीं थी। फिर भी पांडवों को संतोष था कि रहने को कोई जगह तो मिल गई। कौरवों की शत्रुता तो ऐसी थी कि वे उन्हें हस्तिनापुर से तो खदेड़ ही देते, राज्य की भूमि पर पांव भी रखने नहीं देते।

पांडव उद्यमी थे। उन्होंने तय कर लिया कि खांडवप्रस्थ को वे रहने योग्य बना देंगे। उन्हें हस्तिनापुर के कारीगरों पर कोई विश्वास नहीं था, क्या पता कि कौरव पुरोचन जैसे कारीगरों को भेज दे और वे ऐसे भवन बनाएं कि एक दिन पांडव उन भवनों में ही जलकर समाप्त हो जाएं। इसलिए श्रीकृष्ण के सहयोग से द्वारका के अच्छे-अच्छे कारीगरों को खांडवप्रस्थ बुलवाया गया, फिर भूमि-पूजन के बाद नए सिरे से नए नगर का निर्माण आरंभ हो गया।

देखते-ही-देखते खांडवप्रस्थ जैसे निर्जन क्षेत्र की कायापलट हो गई। पांडवों के लिए सुंदर महल के अलावा भव्य किला भी बनाया गया। नगर में चारों ओर बाग-बगीचे, पूजा-स्थल, इमारतें, चौड़ी सड़कें व बड़े-बड़े बाजार बन गए। नगर की शोभा तो बस देखते ही बनती थी। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह भूमि कभी बंजर थी। इस नए नगर का नाम दूर-दूर फैल गया। पांडवों की योग्यता व वीरता से सभी परिचित थे ही तो परिणाम यह हुआ कि देश-विदेश के लोग बसने के लिए खांडवप्रस्थ में आ गए। सामान्य नागरिकों के अलावा बड़े-बड़े व्यापारियों ने खांडवप्रस्थ को अपना लिया। जो प्रदेश अब तक ऊबड़-खाबड़ पड़ा था, वहां रौनक छा गई। श्रीकृष्ण के आशीर्वाद से युधिष्ठिर ने नए राज्य का कार्यभार संभाल लिया। नए राज्य का नाम खांडवप्रस्थ से बदलकर इंद्रप्रस्थ रखा गया।

श्रीकृष्ण अपना कार्य निपटाकर द्वारिका चले गए और जाते-जाते कह गए, “बंधुओ! कभी भी कोई विपत्ति आए तो मेरे पास निःसंकोच पहुंच जाना।”

□□

नए नगर की चर्चा नारद के कानों में पड़ी तो वे इंद्रप्रस्थ की शोभा देखने पहुंच गए।

युधिष्ठिर ने उनका यथायोग्य स्वागत किया। नारद नगर की रौनक व पांडवों का यश देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, “और सब तो ठीक है, परंतु एक ही महिला को पांच भाइयों ने अपनी पत्नी बना लिया है, यह अवश्य ही चिंता का विषय है।”

“इसमें कैसी चिंता मुनिवर?” युधिष्ठिर बोले, “हम भाई पांच शरीर एक आत्मा हैं। हममें किसी बात को लेकर कोई कलह होने की संभावना नहीं।”

“धर्मवीर! तुम लोगों की प्रकार एक-दूसरे को प्राणपण से प्रेम करने वाले दो भाई थे, जिनका नाम था सुंदर और उपसुंदर। एक बार ऐसा हुआ कि वे तलोत्तमा नामक एक अप्सरा के दीवाने हो गए। कोई भी उसके बिना रह नहीं सकता था। उनकी प्रतिद्वंद्विता इतनी बढ़ गई कि एक दिन आपस में लड़ पड़े। युद्ध से भला किसका भला हुआ है, इसलिए वे एक-दूसरे से लड़-झगड़कर मिट गए। अब मुझे भय है कि कहीं तुम पांचों भाई भी एक नारी को लेकर आपस में लड़-झगड़कर मिट न जाओ।”

युधिष्ठिर मुस्कराकर बोले, “आप निश्चित रहें मुनिवर! हमारे साथ ऐसा कभी नहीं होगा।”

“फिर भी मेरी मानो तो कोई ऐसा नियम बना लो कि एक-दूसरे से टकराने की स्थिति ही न आए।”

“आप ही कोई नियम बना दीजिए।”

“ठीक है।” नारद मुनि कुछ सोचकर बोले, “ऐसा करो कि द्रौपदी को एक वर्ष तक बारी-बारी से पांचों भाइयों के पास रहना होगा। ऐसे समय कोई दूसरा भाई द्रौपदी को देखेगा भी नहीं।

अगर इस नियम को किसी ने भंग किया तो उसे बारह वर्ष तक राज्य से निष्कासित होना पड़ेगा।”

“आपकी आज्ञा सिर-आंखों पर, ऐसा ही होगा।”

नारदजी तो यह नियम बनाकर चले गए, लेकिन एक समय ऐसा आया कि इस कठोर नियम की सजा अर्जुन को भुगतनी पड़ी।

सच तो यह था कि पांचों भाई आरंभ से ही बड़े नियम व संयम से रहते थे। द्रौपदी के कारण कभी उनमें कोई कलह नहीं हुई थी। एक बार ऐसा हुआ कि द्रौपदी युधिष्ठिर के साथ अपना समय बिता रही थी, तभी एक गरीब ब्राह्मण अर्जुन से मिला और हाथ जोड़कर निवेदन किया, “महाराज! एक चोर मेरी गाएं चुराकर ले गया है, मुझे मेरी गाएं दिलवा दें, अन्यथा मैं तो बरबाद हो जाऊंगा। गायों के सिवा मेरा और कुछ नहीं।”

अर्जुन ने चोरों से गाएं छुड़ाकर गरीब ब्राह्मण को वापस लौटा दीं। तभी अर्जुन को याद आया कि वह युधिष्ठिर के कक्ष में अनाधिकार प्रवेश कर गया था, जो नितांत आपत्तिजनक था। वह उसी समय युधिष्ठिर के पास पहुंचा और बोला, “भ्राताश्री! मुझसे अपराध हो गया है, अतः मैं बारह वर्षों के लिए वन में जा रहा हूं।”

युधिष्ठिर बोले, “कैसा अपराध अर्जुन? तुम तो मेरे छोटे भाई हो, इसलिए कक्ष में घुस आना अपराध नहीं। हां, अगर बड़ा भाई छोटे भाई के कक्ष में अनायास घुस जाए तो यह जघन्य अपराध है। इसलिए तुम निश्चिंत रहो और बारह वर्ष के लिए वन जाने की कोई आवश्यकता नहीं।”

“आप कुछ भी कहिए, भ्राताश्री! मुझसे नियम भंग हुआ है। यदि हम ही अपने नियमों का पालन ठीक से नहीं करेंगे तो सामान्य जन का क्या होगा। आप मुझे रोके नहीं, मुझे धर्म का पालन करने दें।”

विवश होकर युधिष्ठिर को अर्जुन की बात मान लेनी पड़ी। अर्जुन इंद्रप्रस्थ त्यागकर बारह वर्षों के लिए वन चला गया।

अर्जुन वन में गंगा किनारे एक कुटिया बनाकर रहने लगा। चारों ओर बड़ा ही मनोहारी वातावरण था। अर्जुन के दिन बड़े आराम से व्यतीत हो रहे थे।

वहीं रहती थी सर्प सुंदरी उलूपी, जो कौरव्य सर्प की पुत्री थी। वह अर्जुन की सुंदरता पर मोहित हो गई थी।

एक दिन की बात है। अर्जुन गंगा में नहा रहा था। बस, अवसर पाकर उलूपी वहां पहुंची और अर्जुन को खींचकर अपने साथ नागलोक ले गई।

अर्जुन ने आश्चर्य से उलूपी से पूछा, “तुम कौन हो? मुझे यहां क्यों ले आई हो?”

उलूपी बोली, “मैं नागलोक की कन्या हूं। मैं तुम्हें पसंद करती हूं और तुमसे विवाह करना चाहती हूं।”

“विवाह!” अर्जुन घबराकर बोला, “परंतु मैं तो पहले से ही विवाहित हूं।”

“मैं कुछ नहीं जानती। अगर आपने मेरी विनती अस्वीकार कर दी तो मैं आत्महत्या कर लूंगी।”

अर्जुन से उलूपी का हृदय दुखाया नहीं गया, इसलिए उसने उलूपी से विवाह कर लिया।

उलूपी के बाद अर्जुन ने चित्रांगदा से भी विवाह किया। चित्रांगदा मणिपुर के राजा चित्रवाहन की पुत्री थी। चित्रांगदा की सुंदरता से अर्जुन बहुत प्रभावित हो गया था और उससे विवाह करने की इच्छा त्याग नहीं सका था। इस विवाह से अर्जुन को वभ्रुवाहन नामक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी। चित्रवाहन का अपना कोई पुत्र नहीं था, इसलिए वभ्रुवाहन को ही मणिपुर का भावी राजा घोषित किया गया।

इन दो विवाहों के पश्चात् अर्जुन ने इन बारह वर्षों में एक तीसरा विवाह किया था। तीसरा विवाह सुभद्रा से हुआ था, जो श्रीकृष्ण की बहन थी।

अर्जुन घूमते-घूमते निष्कासन के अंतिम वर्ष द्वारका पहुंचा तो श्रीकृष्ण ने उसका अपने यहां भव्य स्वागत किया। वहीं एक उत्सव में अर्जुन ने सुभद्रा को देख लिया था और उस पर मोहित हो गया था। उसने श्रीकृष्ण से सुभद्रा का विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

श्रीकृष्ण ने कहा, “मुझे क्या आपत्ति हो सकती है, किंतु उसके हृदय में क्या है, कौन कह सकता है। हो सकता है स्वयंवर में सुभद्रा तुम्हारी बजाय किसी और को वर ले। अतः उचित यही है कि तुम बलपूर्वक सुभद्रा को ले जाओ।”

अर्जुन को श्रीकृष्ण का यह सुझाव पसंद आ गया। बस फिर क्या था, अर्जुन अपने भाई युधिष्ठिर की सहायता से सुभद्रा का अपहरण करके इंद्रप्रस्थ पहुंच गया। इंद्रप्रस्थ में यथाविधि उन दोनों का विवाह कर दिया गया।

सुभद्रा से अर्जुन को अभिमन्यु नामक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। उधर द्रौपदी भी पांच पुत्रों की माता बनी। युधिष्ठिर से उसे प्रातर्विद्य नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था और भीम से श्रुतसोम, अर्जुन से श्रुतकर्मा, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतासन।

□□

श्रीकृष्ण इंद्रप्रस्थ में ही थे।

एक दिन अर्जुन यमुना के किनारे श्रीकृष्ण के साथ भ्रमण कर रहा था, तभी एक तेजस्वी ब्राह्मण उन दोनों के पास आ खड़ा हुआ। उसके सारे शरीर से तेज की किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं।

श्रीकृष्ण व अर्जुन ने ब्राह्मण का अभिवादन किया और पूछा, “हे ब्राह्मण देव! आप कौन हैं? हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं?”

“मैं अग्नि हूं। मुझे बड़ी भूख लगी है। कृपया मेरी क्षुधा शांत कीजिए।” ब्राह्मण ने उत्तर दिया।

“आप क्या खाएंगे? क्या सामग्री प्रस्तुत की जाए?”

“मेरी इच्छा है कि मैं खांडव वन को जलाकर उसमें रह रहे जानवरों को खाऊं, लेकिन बहुत प्रयास करने के बावजूद मैं खांडव वन को जला नहीं पा रहा हूं, क्योंकि इंद्र बार-बार पानी बरसा देता है। वह नहीं चाहता कि मैं खांडव वन को जलाऊं, क्योंकि वहां तक्षक नाग का निवास है। अब तो आप ही खांडव वन को जलाकर मेरी भूख शांत कर सकते हैं।”

अर्जुन बोला, “अग्निदेव! मैं आपकी कैसे सहायता करूं? मेरे पास इस समय ऐसा धनुष नहीं है, जिससे मैं देवराज इंद्र की वर्षा को ऊपर ही रोक सकूं।”

“बस, इतनी-सी बात है।” अग्निदेव ने कहा, “मैं तुम्हें अभी एक शक्तिशाली धनुष देता हूं, जिसे तुम्हारे जैसा प्रवीण धनुर्धारी ही चला सकता है।”

इतना कहकर अग्निदेव ने अर्जुन को सोमराज का ‘गांडीव’ नामक धनुष दे दिया, साथ ही श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र भी दिया। सुदर्शन चक्र की विशेषता थी कि उससे जिस पर वार करो, वह निश्चित रूप से मारा जाता था और फिर सुदर्शन चक्र अपना काम पूरा कर वापस धारण करने वाले के पास पहुंच जाता था।

अर्जुन ने गांडीव पाकर अग्निदेव से कहा, “अब आप खांडव वन को प्रज्ज्वलित कीजिए, मैं उसे बुझने नहीं दूंगा।”

अग्निदेव ने देखते-ही-देखते खांडव वन को जला दिया। इंद्र ने पुनः पानी बरसाया, किंतु इस बार अर्जुन ने अगणित तीर चलाकर खांडव वन के ऊपर आवरण-सा तान दिया, जिनसे पानी की एक बूंद भी वन पर न गिर सकी। वन में चारों ओर अग्नि फैल गई और अग्निदेव जंगल

के जीवों को खाने लगे। तक्षक नाग उन दिनों वन में नहीं था, इसलिए वह बच गया। तक्षक का पुत्र अश्वसेन भी आग से बच निकला।

वन में ही 'मय' नामक एक राक्षस रहता था। मय बहुत ही उच्चकोटि का भवन निर्माता था। उसने जब देखा कि वह इस प्रचंड आग से बच न सकेगा तो उसने अर्जुन से प्राणरक्षा की भीख मांगी। अर्जुन को उस पर दया आ गई और मय को वन से सुरक्षापूर्वक बाहर निकाल दिया।

इस कांड से अर्जुन को गांडीव जैसा शक्तिशाली धनुष तो मिला ही, साथ ही इंद्र ने भी कई दिव्य अस्त्र अर्जुन को प्रदान किए।

मय तो अर्जुन की कृपा से इतना अभिभूत हो उठा कि उसने अर्जुन से कहा, “हे वीर पुरुष! मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं। कृपया मुझे सेवा का अवसर देकर अनुग्रहीत करें।”

“तुम क्या कार्य कर सकते हो?”

“मैं बहुत अच्छा वास्तुकार हूं। भवन-निर्माण में मेरा कोई मुकाबला नहीं।”

कुछ सोचकर अर्जुन बोला, “यह बात है तो इंद्रप्रस्थ में जहां हमारी नई-नई राजधानी बनी है, वहां तुम हमारे लिए एक ऐसा भवन बनाओ, जैसा संसार में अब तक न बना हो।”

“यह तो मेरे बाएं हाथ का खेल है। मैं ऐसा भवन बनाऊंगा, जिसे देखकर लोगों के विस्मय का ठिकाना नहीं रहेगा।”

यह कहकर मय मैनाक पर्वत की ओर चल पड़ा। मैनाक पर्वत पर भवन-निर्माण की उच्चकोटि की सामग्री उपलब्ध थी। वहीं पर मय जाति के राक्षसों के अद्भुत महल बने हुए थे। मय ने वहां से भवन निर्माण की सामग्री ली और चल पड़ा इंद्रप्रस्थ को।

मय ने जैसा कहा था, वैसा ही भवन बनाया। इंद्रप्रस्थ मय के कलात्मक हाथों से सजकर अद्वितीय बन गया। पांडव तो ऐसा भव्य और मनोहारी भवन देखकर विस्मित रह गए। मय का परिश्रम सार्थक हो गया।

अब इंद्रप्रस्थ का क्या कहना।

इंद्रप्रस्थ की सुंदरता, भव्यता तथा वैभव की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। युधिष्ठिर के कुशल नेतृत्व में पांडवों का नया राज्य दिनोदिन प्रगति के नए सोपान तय करता जा रहा था।

एक दिन नारद मुनि पांडवों का नया नगर देखने पधारे। नगर की रूप-सज्जा देखकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए। विशेषकर मय ने जो सभागार का विशाल भवन बनाया था, उसकी सुंदरता देखकर तो वे विस्मित ही रह गए।

नारद ने पांडवों से कहा, “सचमुच! तुम लोगों की कर्मठता प्रशंसा योग्य है। इतने अल्प समय में बंजर भूमि में इतनी भव्य राजधानी का निर्माण कर लेना तुम लोगों की योग्यता का ही प्रमाण है और तुम्हारा यह सभागार इसकी तो जितनी प्रशंसा की जाए कम है। मैं तो तीनों लोकों में घूम चुका हूं, किंतु ऐसा सभागार न तो गंधर्वों के यहां देखा और न अप्सराओं के यहां। यक्षों व राक्षसों के सभागार तो इसके सामने एकदम हेय हैं। अब तो एक ही कार्य रह गया है, जिसे पूर्ण कर तुम लोग अपनी यश-पताका दिग-दिगांतर तक फैला सकते हो।”

युधिष्ठिर ने उत्सुकता से पूछा, “ऐसा कौन-सा कार्य है मुनिवर! हमें शीघ्र बताइए।”

“बस, अब तुम लोग राजसूय यज्ञ करो। यज्ञ में विश्व के समस्त प्रदेशों के नरेशों को आमंत्रित करो। उन्हें अपने अधीन कर लो, फिर तुम लोगों का सम्मान अक्षुण्ण रहेगा।”

नारदजी इतना कहकर चले गए, किंतु उनकी बात पांडवों के मन में घर कर गई। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे राजसूय यज्ञ अवश्य करेंगे। फिर क्या था, वे यज्ञ की तैयारियों में लग गए। चारों दिशाओं के राज्याध्यक्षों को इंद्रप्रस्थ आकर राजसूय यज्ञ में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया।

इंद्रप्रस्थ को दुल्हन की प्रकार विशेष रूप से सजा दिया गया। राजसूय यज्ञ के महान पर्व की सूचना चारों ओर फैल गई।

□□

राजसूय के अवसर पर सभी निमंत्रित राजे-महाराजे भाग लेने इंद्रप्रस्थ पहुंचे। हस्तिनापुर से कौरव भी पधारे थे। श्रीकृष्ण को विशेष रूप से बुलाया गया था। इंद्रप्रस्थ का वैभव देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गए। बड़ी-बड़ी इमारतों, चौड़ी सड़कों, भव्य बाग-बगीचों, रमणीक सरोवरों व कलात्मक भवनों ने सभी का मन मोह लिया। मय द्वारा निर्मित विशाल सभागार की विशिष्ट कारीगरी देखकर तो लोगों के विस्मय का ठिकाना ही नहीं रहा। पांडवों की कीर्ति की सभी दिल खोलकर प्रशंसा करने लगे।

बस, अगर कोई पांडवों की कीर्ति से ईर्ष्या के मारे जल-भुन गए थे तो वे थे कौरव। विशेषकर दुर्योधन का तो रोयां-रोयां सुलग रहा था पांडवों का वैभव देखकर। दुर्योधन के साथ कौरवों का मामा शकुनि भी आया था।

राजसूय यज्ञ से पांडवों के यश में चार चांद लग गए।

यज्ञ के दौरान ही मगध के राजा जरासंध का भी वध हुआ, जो अत्यंत अत्याचारी था। जरासंध की पुत्री का विवाह श्रीकृष्ण के मामा कंस के साथ हुआ था। उसके अत्याचार की स्थिति यह थी कि उसने अनेक राजाओं को बंदी बनाकर उनका राज्य हथिया लिया था। श्रीकृष्ण किसी भी प्रकार उसका अंत चाहते थे, इसलिए उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, “बंधु! तुम्हारा राजसूय यज्ञ तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक जरासंध जैसे अत्याचारी राजा का अंत न हो जाए।”

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का आदेश शिरोधार्य कर लिया और भीम को जरासंध का वध करने के लिए भेज दिया। भीम ने जरासंध को युद्ध में पराजित कर दिया और उसे चीरकर मार डाला।

राजसूय यज्ञ संपन्न हो गया।

सभी राजे-महाराजे पांडवों का गुण गाते हुए अपने-अपने देश की ओर लौट गए। हां, दुर्योधन इंद्रप्रस्थ की भव्यता से इतना प्रभावित हुआ कि वहां वह कुछ दिनों के लिए और रुक गया।

एक दिन वह नयनाभिराम भवनों की सुंदरता देखने के लिए इधर-उधर घूम रहा था। मन-ही-मन पांडवों की प्रगति देखकर वह जला-भुना जा रहा था। उसने पांडवों को नष्ट करने के अनेक प्रयास किए थे, किंतु सदैव असफल रहा था और अब पांडव अपने श्रम एवं योग्यता से भव्य राजधानी के मालिक बन बैठे थे। पांडवों के सम्मुख दुर्योधन स्वयं को अत्यंत दीन-हीन अनुभव कर रहा था और उन्हें विनष्ट करने की मन-ही-मन अनेक योजनाएं बना रहा था।

यही सब सोचता-विचारता दुर्योधन उस सभागार में पहुंचा, जिसकी कारीगरी का जवाब नहीं था। ऐसी रमणीक साज-सज्जा देखकर दुर्योधन के नेत्र फटे-के-फटे रह गए। तभी सभागार के एक ओर उसे तालाब दिखाई दिया, जिसमें कमल का प्यारा-सा पुष्प खिला हुआ था। दुर्योधन उस पुष्प को तोड़ने का लोभ संवरण न कर सका। उसने आगे बढ़कर जैसे ही कमल का पुष्प तोड़ना चाहा, उसका हाथ फर्श से जा टकराया। तब उसे पता चला कि जिस कमल के पुष्प को वह तालाब में उगा हुआ समझ रहा था, वह तो भवन निर्माण की कारीगरी का उच्च नमूना था। वस्तुतः वह फर्श इतना पारदर्शी था कि निकट से भी तालाब की भांति नजर आ रहा था। कमल का पुष्प फर्श को सजाने के लिए उकेरा गया था।

दुर्योधन अभी संभला भी नहीं था कि चारों ओर से हंसी की लहर गूंज गई। दुर्योधन की मूर्खता पर सभागार के दास-दासी हंस रहे थे। दुर्योधन क्रोध एवं झेंप से जल्दी-जल्दी आगे बढ़ा। सामने की दीवार में एक द्वार देखकर उसने अपना पग बढ़ाया, परंतु द्वार पार करने के बजाय वह दीवार से टकराकर रह गया। जिसे उसने द्वार समझा था, वह तो दीवार पर अनोखी सजावट थी। दुर्योधन की इस अनभिज्ञता पर भी आसपास खड़े लोग ठहाका मारकर हंस पड़े। दुर्योधन बुरी प्रकार झेंपकर रह गया। अब तो उसकी यह हालत हो गई कि सामने एक वास्तविक द्वार को देखकर भी उसे पार नहीं कर सका कि कहीं वह भी दीवार न हो।

सबसे दुखद दुर्गति तो तब हुई, जब उसने फर्श पर एक और भव्य सरोवर देखा। सोचा यह भी पहले वाले सरोवर की भांति पारदर्शी फर्श होगा और वह निश्चित होकर आगे बढ़ा। फिर हुआ यह कि वह धड़ाम से सरोवर में जा गिरा। इस बार जिसे उसने फर्श समझ लिया था, वह सरोवर ही निकला। उसके सारे वस्त्र गीले हो गए और वह झल्लाकर बाहर निकला।

इस बार तो सारा सभागार ठहाकों से गूंज उठा। दास-दासियों के अलावा पांडव और उनकी पत्नी भी खूब हंसी। भीम ने कहा, “ओहो दुर्योधन! तुम्हारे तो सारे वस्त्र गीले हो गए। सहदेव इन्हें सूखे वस्त्र ला दो।”

सहदेव अगले पल ही सूखे वस्त्र ले आया और मुस्कराते हुए दुर्योधन को सौंप दिए।

इस अपमान से तो दुर्योधन आगबबूला हो गया। पुरुषों की हंसी तो सहन की जा सकती थी, किंतु द्रौपदी की हंसी ने जले पर नमक छिड़क दिया था। वह रक्त का घूंट पीकर रह गया। सोचा कि एक दिन इस अपमान का बदला अवश्य लूंगा।

इस अपमान के बाद उससे इंद्रप्रस्थ में एक पल भी न रहा गया। तन-मन में ईर्ष्या व अपमान से आग दहक रही थी। उसने उसी समय पांडवों से विदा ली और मामा शकुनि के साथ हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गया।

दुर्योधन को सबसे गहरा रोष तो इस बात का था कि वह पांडवों को अब तक मात नहीं दे सका था। उसने जितनी बार पांडवों को नष्ट करना चाहा, पांडव नई शक्ति के साथ उत्कर्ष पर पहुंच गए थे। उसने पांडवों को जान-बूझकर खांडवप्रस्थ जैसा निकृष्ट क्षेत्र दिया था, किंतु वहां भी उन्होंने इंद्रप्रस्थ जैसा भव्य नगर खड़ा कर दिया, जहां के विस्मयकारी सभागार में उसका अपमान हुआ था।

मार्ग में वह शकुनि से एक शब्द भी न बोला। गुम-सुम-सा वह पांडवों को समाप्त करने की योजनाओं में लिप्त रहा। शकुनि से रहा नहीं गया तो उसने पूछा, “क्या बात है दुर्योधन! जब से इंद्रप्रस्थ से निकले हो विचारों में खोए हुए हो? सब ठीक तो है?”

“मामा! जले पर नमक मत छिड़को।” दुर्योधन ने झल्लाकर कहा, “तुम अच्छी प्रकार जानते हो कि इंद्रप्रस्थ में हमें अपमानित करने के लिए बुलाया गया था। पांडव अपना वैभव दिखाकर हमें जलाना चाहते थे।”

“यह तो पांडवों के श्रम का फल है। चाहो तो अपने श्रम से तुम भी हस्तिनापुर को भव्य बना सकते हो।”

“मैं तो पांडवों की हस्ती मिटाकर ही संतुष्ट होऊंगा।” दुर्योधन ने दांत भींचकर कहा, “तुम देख रहे थे न कि राजे-महाराजे किस प्रकार पांडवों का गुणगान कर रहे थे। विश्व के समस्त भागों से राजा बड़े-बड़े उपहार लेकर इंद्रप्रस्थ पहुंचे थे। सोचने की बात यह है कि अगर सभी बड़े-बड़े राजा उनके पक्ष में हो गए तो हमारा क्या होगा? हम तो एकदम अकेले पड़ जाएंगे। मामा! यदि शीघ्र ही पांडवों के विनाश का कोई उपाय नहीं सोचा गया तो उनका वैभव और यश देखते-ही-देखते बढ़ जाएगा।”

“यह सब सोचने से क्या लाभ दुर्योधन! उन पर भगवान की कृपा है।”

“आप कुछ भी कहिए, जब तक मैं उन्हें नीचा नहीं दिखाऊंगा, तब तक मुझे शांति नहीं मिलेगी।”

“तुम उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। पांचों भाई वीर हैं और उनके पास देवताओं के दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं। युद्ध में उनसे विजय पाना एकदम कठिन है।”

“तो आप ही कोई उपाय बताइए मामा! अन्यथा मैं जीवित नहीं रहूंगा। इस अपमान के पश्चात् तो मेरी जीवित रहने की इच्छा ही नहीं रही है।”

“निराश मत हो दुर्योधन!” कुछ सोचकर शकुनि बोला, “उनसे अगर जीतना ही चाहते हो तो चालाकी से काम लेना होगा। पांडवों को नीचा दिखाने का एक ही उपाय है कि उन पर धोखे से वार किया जाए।”

“कुछ भी कीजिए मामा! किंतु उनका वैभव अवश्य समाप्त कीजिए।” दुर्योधन बोला, “उफ! मैं कैसे बताऊं आपको कि वे किस प्रकार हंस रहे थे मुझ पर। द्रौपदी की हंसी तो मेरे कानों को अब तक लावे की प्रकार जला रही है।”

“हूं।” शकुनी बोला, “एक योजना है मेरे मस्तिष्क में। तुम तो जानते हो कि युधिष्ठिर को जुए के खेल का बड़ा शौक है, जबकि जुए में वह एकदम अनाड़ी है। बस, किसी प्रकार उसे हस्तिनापुर बुलवाओ, फिर देखना मैं देखते-ही-देखते उसकी क्या हालत बनाता हूं।”

दुर्योधन को शकुनि की योजना पसंद आ गई। बोला, “ठीक है, आप किसी प्रकार पिताश्री को राजी कीजिए कि वे पांडवों को आमंत्रित करें, मैं तो उनसे बात भी नहीं करना चाहता।”

“यही होगा। अब प्रसन्न हो जाओ। हस्तिनापुर पहुंचते ही मैं तुम्हारी सारी चिंताओं को दूर कर दूंगा।”

□□

शकुनि अवसर मिलते ही धृतराष्ट्र से मिला। शकुनि के मस्तिष्क में पूरी योजना बन चुकी थी।

धृतराष्ट्र ने उससे पूछा, “कहो शकुनि! इंद्रप्रस्थ का क्या हाल है?”

“पांडवों ने तो कमाल ही कर दिया महाराज! उन्होंने इंद्रप्रस्थ को बहुत ही खूबसूरत बनाया है।”

“और राजसूय यज्ञ कैसा रहा?”

“बहुत ही सफल, दूर-दूर के नरेश इंद्रप्रस्थ पहुंचे थे। बड़ी रौनक थी वहां, किंतु...”

“किंतु क्या?”

“दुर्योधन प्रसन्न नहीं है।” शकुनि ने धीरे से कहा, “वह जब से इंद्रप्रस्थ से लौटा है, तब से खिन्न है, चेहरा पीला पड़ गया है और शरीर मुरझा गया है। नेत्रों से नींद गायब हो गई है।

खाना-पीना छोड़ दिया है। मुझे तो लगता है कि उसका मस्तिष्क दुःख से बोझिल है।”

धृतराष्ट्र घबरा गए। बोले, “क्यों?”

“कुछ कह नहीं सकता महाराज! कृपया आप दुर्योधन को बुलाकर पूछें कि क्या बात है?”

थोड़ी देर बाद ही दुर्योधन उनके सामने उपस्थित हो गया।

धृतराष्ट्र बोले, “मैंने सुना है इंद्रप्रस्थ से लौटकर तुम अस्वस्थ हो गए हो? क्या बात है?”

दुर्योधन ने मुंह बनाकर कहा, “तो क्या वहां से लौटकर मैं खुशियां मनाता? पांडवों ने इन थोड़े से दिनों में ही जो प्रगति की है, उसे देखकर मैं कैसे प्रसन्न रह सकता हूं, अंततः वे हमारे शत्रु हैं।”

“यह तुम्हारा वहम है दुर्योधन!” धृतराष्ट्र बोले, “उचित यही है कि तुम लोग मिल-जुलकर रहो।”

“यह उपदेश आप अपने पास रखिए।” दुर्योधन बोला, “मुझे तब तक चैन नहीं पड़ेगा, जब तक हस्तिनापुर में भी पांडवों जैसा सभागार न बनवा लूं। आप तुरंत कारीगरों को आदेश दीजिए कि हस्तिनापुर में ऐसा भवन बनाएं, जिसकी दीवारों को देखकर द्वार का भ्रम हो, फर्श को देखकर लोग समझें कि सरोवर है और सरोवर देखकर लगे कि फर्श है, ताकि लोग धोखे से गिर जाएं। अंततः हम उनसे किस बात में कम हैं। हमें अपने शत्रुओं से बढ़-चढ़कर रहना चाहिए। फिर हम भी उस सभागार में पांडवों को आमंत्रित करेंगे।”

धृतराष्ट्र मना न कर सके। उन्होंने ऐसा ही सभागार बनाने का आदेश दे दिया। हजारों कारीगर रात-दिन लगकर सभागार को बनाने लगे।

जब सभागार बन गया तो धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा, “इंद्रप्रस्थ जाकर पांडवों को ले लाओ।”

विदुर जाना नहीं चाहते थे, क्योंकि उन्हें पता था कि यहां पांडवों के विरुद्ध दुर्योधन ने षड्यंत्र रचा है। जुए के खेल की भनक उनके कानों में भी पड़ चुकी थी, किंतु धृतराष्ट्र की बात टालना भी उचित नहीं था, इसलिए वे इंद्रप्रस्थ को रवाना हो गए।

□□

इंद्रप्रस्थ में महर्षि व्यास पधारे हुए थे। उन्होंने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ की सफलता पर बधाई दी और बोले, “भविष्य में मैं कुछ अशांति देख रहा हूं। अगले तेरह वर्ष विपत्तिपूर्ण हैं, इसलिए सतर्क रहने की आवश्यकता है।”

युधिष्ठिर बोले, “यह तो बहुत ही चिंता की बात है। राजा होने के नाते मेरा कर्तव्य है कि इन तेरह वर्षों को शांतिमय बनाए रखने का प्रयास करूं, इसलिए आज से मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं किसी के साथ भी कटु वचन नहीं बोलूंगा, क्योंकि कटु वचनों से ही विपत्ति उत्पन्न होती है।”

थोड़े दिनों के बाद ही विदुर इंद्रप्रस्थ पहुंचे।

युधिष्ठिर ने उनका स्वागत किया।

विदुर बोले, “तुम लोगों को महाराज धृतराष्ट्र ने आमंत्रित किया है। हस्तिनापुर में एक भव्य भवन का निर्माण किया गया है। वहां अनेक राजाओं-राजकुमारों को निमंत्रित किया गया है, ताकि सभी भवन की भव्यता देखें और वहां आनंद मनाएं। तुम लोग भी अपने भाइयों, पत्नी व माता के साथ वहां पहुंचो। उस नए भवन में तुम जुआ भी खेलोगे।”

युधिष्ठिर को आश्चर्य हुआ कि अचानक हस्तिनापुर से यह न्यौता कैसे पहुंच गया। उन्हें कुछ संदेह तो हुआ, किंतु स्वयं विदुर उन्हें बुलाने आए थे, इसलिए उन्होंने जाना स्वीकार कर लिया।

विदुर ने कहा, “मुझे जो सूचना तुम तक पहुंचाने का आदेश दिया गया था, वह मैंने पहुंचा दी, किंतु मुझे यह आयोजन निरर्थक महसूस हो रहा था। इसलिए तुम चाहो तो महाराज का

निमंत्रण अस्वीकार भी कर सकते हो।”

युधिष्ठिर कुछ पल तक शांत रहे। उन्हें महर्षि व्यास की चेतावनी अभी तक याद थी। वे जानते थे कि भविष्य में जो कुछ घटने वाला है, उसे रोका नहीं जा सकता। वहां जाकर जुआ खेलना हानिकारक हो सकता है, इसका भी डर था, फिर भी वे बोले, “महाराज धृतराष्ट्र ने आपके हाथों निमंत्रण भेजा है, इसलिए वहां न जाना अभद्रता होगी। हम अवश्य हस्तिनापुर चलेंगे।”

□□

हस्तिनापुर में पांडवों का पूर्व आयोजित स्वागत किया गया।

पांडव अपने सगे-संबंधियों के बीच पहुंचकर बड़े प्रसन्न थे। वे महाराज धृतराष्ट्र सहित सबसे स्नेह से मिले।

पहला दिन तो उनका सबसे मिलने-मिलाने व खाने-पीने में व्यतीत हो गया। रात को उन्हें आरामदायक बिस्तरों पर सुलाया गया।

दूसरे दिन सुबह होते ही पांडवों को नए भवन में जुआ खेलने के लिए बुलवाया गया।

हस्तिनापुर के नए सभागार में सारे अतिथि पधार चुके थे। सभी सभागार की शोभा की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे थे। अतिथियों में राज-रजवाड़ों के अलावा कई गणमान्य व्यक्ति सम्मिलित थे। एक ओर दुर्योधन अपने भाइयों व मामा शकुनि के साथ बैठा था तो दूसरी ओर युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ।

धृतराष्ट्र ने जुए का खेल आरंभ करने की अनुमति दी। संजय पास बैठा उन्हें आंखों देखा हाल सुना रहा था। विदुर व भीष्म की आंखों में चिंता छाई हुई थी।

युधिष्ठिर जुए के शौकीन अवश्य थे, किंतु आज उनका दिल बैठा जा रहा था। उन्होंने कौरवों से कहा, “वैसे जुआ खेलना भले ही अनुचित न हो, लेकिन इसके खेलने में तभी

आनंद आता है, जब कोई बेईमानी नहीं की जाए।”

“क्या कहते हैं राजन!” शकुनि बोला, “आप तो स्वयं इस खेल में कुशल हैं। भला कुशल खिलाड़ियों के साथ कोई क्या बेईमानी कर सकता है! अगर आपको हम लोगों की नीयत पर संदेह है तो जुआ खेलने की आवश्यकता नहीं।”

“नहीं, जब हमने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है तो बिना खेले हम यहां से नहीं जाएंगे।” युधिष्ठिर बोले, “हमें किसके साथ जुआ खेलना है?”

दुर्योधन बोला, “शकुनि मामा के साथ। वे ही हमारी ओर से आप लोगों के साथ खेलेंगे।”

यह खेल के नियमों के विरुद्ध था, लेकिन युधिष्ठिर ने दुर्योधन की बात चुपचाप स्वीकार कर ली।

युधिष्ठिर जुआ खेल की भावना से खेलने आए थे, जबकि शकुनि पहले ही यह निर्णय करके आया था कि किसी भी प्रकार पांडवों को मात देनी है। युधिष्ठिर ने आरंभ में जो दांव लगाए, शकुनि ने उन पर चुटकियों में अपना अधिकार जमा लिया। इस हार से युधिष्ठिर ने नए उत्साह से दांव लगाया। हारी हुई हर बाजी के साथ वे अपना विवेक खोते जा रहे थे। इसका परिणाम यह निकलता था कि शकुनि उन्हें आसानी से मात देता जा रहा था। वह युधिष्ठिर को बौखलाने के लिए हर नई बाजी खेलने के साथ प्रसन्नता से बोल पड़ता था, “यह दांव तो मैं ही जीतूंगा।” और सचमुच जीत भी जाता था।

युधिष्ठिर स्वर्ण मुद्राएं, आभूषण आदि हार गए तो उन्होंने हाथी-घोड़ों व गाय-भैंसों को दांव पर लगा दिया। शकुनि ने उन पर भी अपना अधिकार जमा लिया। युधिष्ठिर ने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया। सब कुछ धीरे-धीरे शकुनि हथियाता चला गया। सारी सभा में सन्नाटा छा गया था। युधिष्ठिर के मुख पर हवाइयां उड़ रही थीं। वे गहरे विचारों में खोए हुए थे।

शकुनि उन्हें शांत देखकर बोला, “क्या हुआ राजन! हाथ कैसे खींच लिए? ओहो! लगता है अब आपके पास दांव पर लगाने को कुछ नहीं रहा। क्या खेल बंद कर दिया जाए?”

हारा हुआ जुआरी यह सहन नहीं कर सका। बोला, “नहीं, खेल जारी रहेगा। मेरे पास अभी बहुत कुछ है। लो, मैं राज्य की भूमि दांव पर लगाता हूं।”

यह बाजी भी शकुनि के हाथ लगी। बोला, “अब?”

“मेरे सैनिक, मेरी प्रजा, मेरे सेवक-सेविकाएं।”

शकुनि ने यह सब भी जीत लिया। फिर पूछा, “अब क्या लगाते हो?”

युधिष्ठिर पल भर के लिए सोच में पड़ गए।

धृतराष्ट्र अपने पुत्रों की जीत से प्रसन्न थे, किंतु उन्हें यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। विदुर ने धीरे से उनसे कहा, “यह खेल अब रोक दीजिए, कहीं ऐसा न हो कि इसका अंत हमारे वंश के नाश के साथ हो। मुझे लगता है इससे हमारा भला नहीं होगा।”

धृतराष्ट्र को स्वयं यही अनुभव हो रहा था, किंतु दुर्योधन को विदुर की बात पसंद नहीं आई। वे बुरा-सा मुंह बनाकर बोले, “विदुर तो ऐसा कहेंगे ही। वे तो पांडवों के आरंभ से ही पक्षपाती रहे हैं। उनसे अगर पांडवों की हार देखी नहीं जाती तो वे शौक से यहां से जा सकते हैं।”

“यही ठीक है। अगर मेरा सुझाव तुम लोगों को पसंद नहीं तो मैं जा रहा हूं।” विदुर अपने आसन से उठकर बोले, “किंतु याद रहे इस जुए का परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा।”

इतना कहकर विदुर आगे कुछ नहीं बोले, किंतु धृतराष्ट्र अपने पुत्रों की इच्छा के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने खेल जारी रहने का आदेश दिया। विदुर मन मारकर फिर बैठ गए।

युधिष्ठिर के पास अब दांव पर लगाने को कुछ नहीं रह गया। एकाएक उनकी दृष्टि पास बैठे नकुल पर चली गई, बोले, “लो, मैं अपने भाई को दांव पर लगाता हूं।”

अगले पल ही नकुल को शकुनि ने जीत लिया। नकुल सिर झुकाकर शकुनि की बगल में जा बैठा।

युधिष्ठिर ने सहदेव को भी दांव पर लगा दिया और शकुनि ने उसे भी अपनी संपत्ति बना लिया। फिर बोला, “वाह राजन! आपकी बुद्धि का भी जवाब नहीं। अपने सौतेले भाइयों को तो दांव पर लगा दिया परंतु...।”

युधिष्ठिर आवेश में आकर बोले, “शकुनि! हम भाइयों में फूट डालने की आवश्यकता नहीं। लो, मैं अपने वीर भाई अर्जुन को दांव पर लगाता हूं।”

“वाह-वाह! आप धन्य हैं। मुझे क्षमा कर दीजिए, मैंने अनभिज्ञता में ही ऐसा कह दिया।” बाजी चलकर शकुनि बोला, “लीजिए, अर्जुन को भी मैंने जीत लिया।”

अर्जुन भी चुपचाप उठकर शकुनि के पास जा बैठा।

फिर युधिष्ठिर ने न केवल इनको, बल्कि भीम व स्वयं को भी दांव पर लगा दिया और बाजी हारकर शकुनि के बन गए। शकुनि के चेहरे पर कुटिल मुस्कान थी। युधिष्ठिर का सिर नीचे झुक गया था। शायद वे सोच रहे थे कि उनके पास कुछ और होता तो उसे भी बाजी पर लगा देते, शायद इस बार हमारी जीत होती।

शकुनि धीरे-धीरे बोला, “एक वस्तु और रह गई। द्रौपदी! चाहो तो उसे भी दांव पर लगा दो, शायद भाग्य इस बार तुम्हारा ही साथ दे।”

युधिष्ठिर ने जीत की आशा में द्रौपदी को भी दांव पर लगा दिया। शकुनि की चाल के आगे द्रौपदी भी न बच सकी। अगले पल ही द्रौपदी पर कौरवों का अधिकार हो गया था।

सभागार में अजीब-सा शोर मच गया। वहां बैठे लोगों को जुए के ये दांव-पेंच पसंद नहीं आए। विशेषकर द्रौपदी को बाजी पर लगा देना तो कोई भी सह न सका, परंतु किसी को विरोध करने का अधिकार नहीं था। विदुर और भीष्म के सिर झुक गए थे। कौरवों के मुख पर विजय

की मुस्कराहट थी। कर्ण और दुर्योधन मन-ही-मन फूले नहीं समा रहे थे। संजय मौन था, धृतराष्ट्र इस शोर में समझ नहीं सके कि क्या हुआ? क्या उनके पुत्रों ने पांडवों पर अधिकार जमा लिया। वे बोले, “क्या बात है संजय? तुम शांत क्यों हो गए—क्या बच्चों ने द्रौपदी भी जीत ली?”

“जी राजन!” संजय के मुख से धीरे से निकला।

“ओह!” धृतराष्ट्र प्रसन्न थे कि चलो दुर्योधन ने कहीं तो विजय प्राप्त की।

दुर्योधन ने शकुनि को अपनी बांहों में भर लिया। वह चीखकर बोला, “वाह मामा! तुम्हारा जवाब नहीं, जुआ खेलने में तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं कर सकता। अब पांडवों का सब कुछ हमारा है, पांडव भी हमारे हैं। हमारे दास। द्रौपदी भी हमारी दासी है।”

विदुर यह सब सह नहीं सके और बोले, “दुर्योधन! इतना बढ़-चढ़कर मत बोलो कि बाद में ऊपर भी न उठ सको। तुमने जो कुछ किया है, वह ठीक नहीं किया। एक दिन तुम्हें पछताना पड़ेगा। तुमने शेरों को छेड़ा है।”

दुर्योधन बोला, “इन बातों में कुछ नहीं रखा। अब आप कृपया द्रौपदी को जाकर यह सूचना दें कि पांडव उसे हार चुके हैं, वह हमारी दासी बन चुकी है। जाइए, उसे सभागार में बुला लाइए।”

“मुझसे धर्म के विरुद्ध आचरण नहीं किया जाएगा।” विदुर बोले, “तुम मानवता से गिर चुके हो।”

“आपका दुःख मैं समझ रहा हूँ।” दुर्योधन ने कहा, “ठीक है, आप मत जाइए। मैं अभी उसे बुलवाता हूँ और झाड़ू लगाने का आदेश देता हूँ।”

यह कहकर दुर्योधन ने एक सेवक को द्रौपदी के पास भेजा कि वह उसे बुला लाए। सेवक द्रौपदी के पास पहुंचा और आंखें झुकाकर जुए का समाचार सुनाकर सभागार चलने का

निवेदन किया। द्रौपदी तो जैसे आसमान से गिरी, फिर संभलकर बोली, “जाओ, पहले यह पूछकर आओ कि युधिष्ठिर पहले स्वयं हारे थे या पहले मुझे दांव पर लगाया था।”

सेवक चुपचाप वापस लौट आया और दुर्योधन के सामने द्रौपदी का प्रश्न दोहरा दिया।

दुर्योधन क्रोध से बोला, “उससे कहो कि पहले यहां आए, फिर उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा, जाओ।”

सेवक सिर झुकाए खड़ा रहा। उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह पुनः उस सती के पास जाए। दुर्योधन उसे चुपचाप खड़ा देखकर एकदम आपे से बाहर हो गया। वह अपने भाई दुःशासन से बोला, “तुम्हीं जाओ द्रौपदी के पास। यह सेवक शायद पांडवों से डर रहा है, परंतु पांडव हमारे दास हैं, वे हमारा कुछ नहीं कर सकते। जाओ, शीघ्रता से द्रौपदी को यहां ले आओ। उसे बता देना कि वह हमारी दासी है और अगर उसने आने से मना कर दिया तो उसका परिणाम बुरा होगा।”

दुःशासन एक पल भी वहां न रुका और तेज-तेज पग रखता हुआ द्रौपदी के पास पहुंचा। द्रौपदी ने आंखें उठाकर दूसरी ओर देखा। पूछा, “क्यों आए हो?”

“तुम्हें युधिष्ठिर जुए में हार चुके हैं, चलो।”

द्रौपदी बोली, “पहले मुझे उत्तर दो कि युधिष्ठिर ने मुझे कब दांव पर लगाया था—स्वयं हारने से पहले या बाद में?”

“तुम्हें क्या मतलब इस बात से?”

“मतलब है!” द्रौपदी बोली, “अगर युधिष्ठिर ने स्वयं को हारने के बाद मुझे दांव पर लगाया है तो मैं नहीं चलूंगी। हारा हुआ व्यक्ति मुझे कैसे दांव पर लगा सकता है?”

“यह निरर्थक बातें बंद करो। अब तुम हमारी दासी हो। चुपचाप मेरे साथ चलो।”

द्रौपदी को हिलते न देखकर दुःशासन आगे बढ़ा। जैसे ही दुःशासन ने उसका हाथ पकड़ना चाहा, वह तेज स्वर में बोली, “खबरदार! मुझे हाथ मत लगाना। मैं रजस्वला हूँ, साथ नहीं चल सकती।”

दुःशासन पर इन बातों का कोई प्रभाव न पड़ा। वह द्रौपदी के निकट पहुंचा, परंतु द्रौपदी छिटककर दूर खड़ी हो गई। वह गांधारी के पास जाकर आश्रय लेना चाहती थी, किंतु दुःशासन उसकी चाल समझ गया। दुःशासन क्रोध से आग-बबूला हो गया। उसने द्रौपदी को बालों से खींच लिया और उसे घसीटते हुए सभागार की ओर ले जाने लगा। द्रौपदी अपनी विवशता पर रो पड़ी। वह सिसकती हुई बोली, “दुःशासन! यह अनर्थ मत करो, मेरे शरीर पर पूरे वस्त्र भी नहीं।”

“मैं कुछ नहीं जानता, तुम हमारी दासी हो। तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा।” यह कहते हुए दुःशासन द्रौपदी को घसीटते हुए सभागार में ले आया।

सभागार में बैठे लोग दुःशासन के इस कृत्य से बड़े मर्माहत हुए। पांडवों की तो लज्जा के मारे पहले ही दृष्टि झुकी हुई थी। हां, दुर्योधन अपने भाइयों व कर्ण के साथ प्रसन्न था। भीष्म, विदुर एवं अन्य वृद्ध लाचार से बैठे थे।

द्रौपदी उन सबके बीच लाज और करुणा की साकार प्रतिमा बनी खड़ी थी। बाल बिखरे हुए थे और आंखों से आंसू बह रहे थे। सबको शांत देखकर वह क्षुब्ध स्वर में बोली, “एक नारी पर खुलेआम अत्याचार हो रहा है और आप लोग शांत बैठे हैं। क्या विवेक और मानवता संसार से विलुप्त हो गई है? मेरे पांच-पांच पति हैं और वे भी चुपचाप मेरा अपमान सह रहे हैं। क्या हो गया है आप सब लोगों को?”

सभागार में कोई भी द्रौपदी को उत्तर नहीं दे सका। हां, कौरवों में अवश्य हंसी की लहर दौड़ गई। कर्ण स्वयंवर में हुए अपने अपमान को अभी भूला नहीं था, वह द्रौपदी को दासी के रूप में देखकर खूब प्रसन्न हुआ। दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि अपनी सफलता पर फूले नहीं समा

रहे थे। हां, दुर्योधन का एक भाई विकर्ण इस अत्याचार से अवश्य अप्रसन्न था। वह बोला, “सुनिए भद्रजनो! द्रौपदी ने जो प्रश्न पूछा था, उसका अब तक उसे उत्तर नहीं मिला। पहले उसे प्रश्न का उत्तर दीजिए, तभी यह निर्णय हो सकेगा कि वह दासी है कि नहीं।”

इस पर भीष्म बोले, “पांचाली! तुम्हारा प्रश्न उचित है, परंतु उससे अब स्थिति में कोई अंतर पड़ने वाला नहीं। यह सही है कि युधिष्ठिर ने पहले स्वयं हारकर तुम्हें दांव पर लगाया था, किंतु पत्नी पर तो हर स्थिति में पति का ही अधिकार रहता है, चाहे वह स्वयं को हार चुका हो या न हार चुका हो। अतएव युधिष्ठिर को तुम्हें दांव पर लगाने का पूरा अधिकार था।”

“आप ठीक कहते हैं, परंतु पांडवों को यहां बुलाकर उन्हें धोखे से पराजित किया गया है। शकुनि ने जुए में बेईमानी की है। धृतराष्ट्र पुत्रों की भलाई के लिए शांत हैं और कौरव हमारा नाश करने पर तुले हैं। यहां इतने सारे बुद्धिमान लोग बैठे हैं, क्या कोई भी हमें न्याय नहीं दिला सकता?” द्रौपदी का मर्मभेदी स्वर सभागार में गूंज उठा। आंखों से अविरल आंसू बह रहे थे।

भीम से यह देखा नहीं गया। वह युधिष्ठिर पर बिफर पड़ा, “यह कैसा जुआ खेला भ्राताश्री? तुमने सब कुछ गंवा दिया। धन-संपत्ति, राज्य के नागरिक, हमारी समस्त सेविकाएं-सेवक, हम सबको और पत्नी को भी। मेरा तो जी चाहता है कि तुम्हारे इन हाथों को ही जला दूं या मुझे आदेश दो कि इन अत्याचारियों को अपने किए का मजा चखा दूं।”

युधिष्ठिर से कुछ बोला नहीं गया। अर्जुन ने धीरे से कहा, “भीम! शांत हो जाओ, क्रोध करने का कोई लाभ नहीं। अगर हम ऐसी बातें करेंगे तो शत्रुओं को ही लाभ होगा।”

कर्ण बोला, “अब शोक करने का लाभ नहीं। युधिष्ठिर ने होशो-हवास में द्रौपदी को दांव पर लगाया है, अब वह कौरवों की दासी है। पांडव हमारे दास हैं। उचित यही है कि पांडव अपने राजसी वस्त्र उतार दें।”,

पांडवों ने अपने वस्त्र उतारकर साधारण वस्त्र पहन लिए। द्रौपदी सभागार में चुपचाप खड़ी अपने भाग्य को रो रही थी। दुर्योधन ने उसे घूरकर देखते हुए कहा, “तुम भी अपने वस्त्र बदल

लो।”

“नहीं।” द्रौपदी चीखकर दो कदम पीछे हट गई।

“दुःशासन! देखते क्या हो।” दुर्योधन बोला, “द्रौपदी की साड़ी उतार दो।”

दुःशासन से द्रौपदी का यह इनकार सहा नहीं गया। वह लपककर द्रौपदी के पास पहुंचा और उसकी साड़ी खींचने लगा।

द्रौपदी लाज और अपमान से दोहरी हो गई। वह सुबकती हुई बोली, “मेरे चारों ओर बड़े-बड़े वीर और वृद्ध बैठे हैं, पति बैठे हैं, किंतु आज एक नारी को बचाने वाला कोई नहीं। उफ! मैं क्या करूं? हे भगवान! तू ही मेरी रक्षा कर।”

दुःशासन पर उसके शोक का कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह साड़ी को खींचने लगा, किंतु द्रौपदी की पुकार भगवान ने सुन ली थी। द्रौपदी की आंखें लज्जा से बंद हो चुकी थीं, किंतु दुःशासन साड़ी खींचते-खींचते थक गया। वह पूरी साड़ी द्रौपदी के शरीर से उतार नहीं सका। साड़ी की लंबाई लगातार बढ़ती ही जा रही थी। सभागार में साड़ियों के ढेर लग गए, दुःशासन साड़ी उतारते-उतारते पसीने से लथपथ हो गया, किंतु द्रौपदी अब तक साड़ी से लिपटी हुई थी। उसकी बंद आंखों के सामने भगवान श्रीकृष्ण का रूप उभर आया था, जो मुस्कराते हुए उसे सांत्वना प्रदान कर रहे थे।

सभागार में उपस्थित लोग इस चमत्कार को देखकर चकित रह गए थे। दुःशासन थक-हारकर बैठ गया था, किंतु कौरवों की अब भी आंखें नहीं खुली थीं। वे पांडवों को अपमानित करने का यह अवसर हाथ से गंवाना नहीं चाहते थे।

दुर्योधन बोला, “अगर पांडव भ्राता आज से यह वचन दें कि वे युधिष्ठिर के निर्देशों का पालन करेंगे तो हम अभी द्रौपदी को छोड़ देंगे।”

पांडव मौन रहे। भीम दांत पीसकर बोला, “तुम लोग आज मनमानी कर लो, किंतु एक दिन मैं इसका आनंद अवश्य चखाऊंगा। अगर युधिष्ठिर मुझे अभी यह निर्देश दें कि तुम लोगों का नाश कर डालूं तो मैं अवश्य पालन करूंगा।”

कौरव उसकी बात सुनकर हंस पड़े। दुर्योधन ने द्रौपदी को गोद में आकर बैठने का इशारा किया। भीम क्रोध से कांपता हुआ बोला, “दुर्योधन! यह याद रखना कि एक दिन तुम्हारी जांघों को अपनी गदा से टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। यह मेरा प्रण है।”

विदुर चुपचाप यह सब देख रहे थे। उनसे सहा नहीं गया। वे बोले, “अब बंद करो यह सब नाटक कौरवो! तुम लोग भले ही पांडवों का बुरा चाहो, किंतु भगवान के कोप से डरो।”

धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के पक्षपाती थे, किंतु उन्हें भी यह अति पसंद नहीं आई। उन्होंने द्रौपदी से कहा, “यह सही है कि पांडव यहां सब कुछ हार चुके हैं, फिर भी तुम जो चाहो, मुझसे मांग लो।”

द्रौपदी ने करुण दृष्टि से धृतराष्ट्र की ओर देखा और फिर बोली, “मैं तो केवल यही चाहती हूँ कि युधिष्ठिर को मुक्त कर दिया जाए।”

“स्वीकार है। और क्या चाहिए?”

“उनके शेष भाइयों को भी मुक्त कर दीजिए।”

“यह भी स्वीकार है।” धृतराष्ट्र बोले, “और क्या चाहती हो?”

“बस, मुझे और कुछ नहीं चाहिए।” द्रौपदी की आंखों से प्रसन्नता के आंसू छलक आए।

धृतराष्ट्र को मन-ही-मन लग रहा था कि आज की घटना से कहीं उनके पुत्रों का अनर्थ न हो जाए। सभागार में जो चमत्कार हुआ था, उसे संजय के मुंह से सुन चुके थे। उन्हें पांडवों की शक्ति व अपने पुत्रों की हीनता का ज्ञान था, इसलिए बोले, “युधिष्ठिर! मैंने द्रौपदी के दोनों अनुरोध तो स्वीकार कर लिए, अब मैं तुम्हें जुए में हारा सब कुछ वापस करता हूँ। यहां जो

कुछ हुआ, उसे भूल जाओ। कौरव भ्राताओं के लिए मन में कोई दुर्भावना मत लाओ। अंततः तुम दोनों एक ही वंश के हो, मिल-जुलकर रहो। अब तुम सीधे इंद्रप्रस्थ जाओ और पहले की प्रकार राज करो।”

पांडव कुछ नहीं बोले। उन्होंने वस्त्र पहने, द्रौपदी को साथ लिया व सबसे विदा लेकर अपने रथों में बैठकर इंद्रप्रस्थ की ओर चल पड़े।

पांडवों के जाते ही दुर्योधन, कर्ण व शकुनि आदि के चेहरे लटक गए। धृतराष्ट्र का निर्णय उन्हें पसंद नहीं आया। उन्होंने छल-कपट से पांडवों का सर्वस्व प्राप्त कर लिया था, किंतु धृतराष्ट्र ने पलक झपकते सब कुछ उन्हें वापस कर दिया। जीती हुई बाजी हाथ से निकल चुकी थी।

दुर्योधन हाथ मलता हुआ धृतराष्ट्र से बोला, “यह आपने क्या किया? आप अच्छी प्रकार जानते हैं कि पांडव हमारे शत्रु हैं। हाथ में आए शत्रुओं को छोड़ देना कहां की बुद्धिमत्ता है। अब वे यहां से अपमानित होकर गए हैं, वे अवश्य इसका बदला लेने का प्रयास करेंगे। मुझे तो लगता है, वे अवसर पाते ही अवश्य हमारा अहित करेंगे। सांप का फन कुचलने से पहले ही सांप को छोड़कर आपने अच्छा नहीं किया।”

धृतराष्ट्र ने तो वैमनस्य को समाप्त करने के लिए पांडवों को ससम्मान वापस भेज दिया था, किंतु दुर्योधन की बात से वे फिर चिंतित हो गए। वे धीरे से बोले, “तो अब क्या करना चाहिए?”

दुर्योधन सोच में पड़ गया। उसने शकुनि व कर्ण से कुछ देर तक विचार-विमर्श किया। अंत में कर्ण ने कहा, “हमें कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिए, अन्यथा वे लोग हमारा नाश कर डालेंगे।”

दुर्योधन बोला, “कर्ण सच कहता है। वे इंद्रप्रस्थ पहुंचते ही अपनी सेना एकत्र करेंगे और हस्तिनापुर पर आक्रमण कर देंगे। पांडव अपने अपमान का बदला अवश्य लेंगे। भीम तो यहीं

पर चीख रहा था कि वह हम सबको मारकर ही दम लेगा।”

धृतराष्ट्र डर गए। उन्हें न अपने पुत्रों की योग्यता पर भरोसा था, न अपनी सेना की कुशलता पर। वे बोले, “पांडवों के आक्रमण करने से पहले ही हमें कोई उपाय सोचना चाहिए।

तभी शकुनि ने दुर्योधन के कान में फुसफुसाकर कुछ कहा।

“उपाय है राजन!”

दुर्योधन ने पूछा, “क्या?”

“यही कि उन्हें पहुंचने से पहले ही पुनः हस्तिनापुर जुआ खेलने के लिए बुलाया जाए। इस बार हम उन्हें बच निकलने का कोई अवसर नहीं देंगे।

“किंतु इस अपमान के बाद क्या वे पुनः आएंगे?”

“इंद्रप्रस्थ पहुंचकर शायद न आएंगे, फिलहाल वे हमारे राज्य की सीमा में ही होंगे, इसलिए आपके आदेश का उल्लंघन करने का साहस नहीं कर सकेंगे। आप शीघ्रता से संदेशवाहक को उस ओर भेज दें।”

“किंतु...।”

“इस किंतु की चिंता मत कीजिए। सारी स्थिति हम संभाल लेंगे। शकुनि मामा के रहते वे हमसे जुए में जीत नहीं सकते हैं।”

धृतराष्ट्र ने उसी समय एक संदेशवाहक को पांडवों के पीछे दौड़ा दिया। दुर्योधन के मुख पर कुटिल मुस्कान छा गई। माता गांधारी को यह सब पसंद नहीं आया। वह धृतराष्ट्र से बोली, “यह अन्याय है राजन! संदेश वाहक को वापस बुला लीजिए। आपके पुत्र जो चाहते हैं, उससे हमारा भला नहीं होगा। क्या आप भूल गए कि दुर्योधन के उत्पन्न होने पर अपशकुन हुए थे। दुर्योधन ही हमारे वंश के नाश का कारण बनेगा। विदुर ने उसके उत्पन्न होते ही कह दिया था कि इस बच्चे को फेंक दो।”

धृतराष्ट्र विवश से बोले, “मैं अपने पुत्रों को अप्रसन्न नहीं कर सकता और फिर अगर हमारे वंश का नाश होना ही है तो विधि के इस विधान को कोई कैसे टाल सकता है। एक बार और होने दो जुए का खेल।”

उधर पांडव बीच रास्ते में ही थे कि संदेशवाहक उनके पास जा पहुंचा। वह युधिष्ठिर से बोला, “राजन! मुझे महाराज धृतराष्ट्र ने भेजा है। उन्होंने कहा है कि आप लोग इसी समय हस्तिनापुर लौट चले और जुए का खेल पुनः खेलें।”

पांडव यह आदेश सुनकर आश्चर्यचकित रह गए। युधिष्ठिर की समझ में नहीं आया कि वे क्या करें। उन्होंने एक बार द्रौपदी एवं भाइयों की ओर देखा। वे युधिष्ठिर का निर्णय जानने के लिए उत्सुक थे। जुआ सर्वनाश की जड़ है, लेकिन युधिष्ठिर को आशा थी कि शायद इस बार उनका दांव जम जाए। युधिष्ठिर धीरे से बोले, “न जाने भगवान की क्या इच्छा है। हमें हस्तिनापुर वापस चलना ही चाहिए और पुनः जुआ खेलना चाहिए। अंततः एक राजा का आदेश हम कैसे टाल सकते हैं।”

इसलिए वे उसी पल हस्तिनापुर वापस लौट चले।

हस्तिनापुर में जुए की सारी तैयारी की जा चुकी थी। बस, पांडवों की प्रतीक्षा थी। पांडवों के बैठ जाने पर उनके दूसरी ओर शकुनि बैठा।

शकुनि बोला, “युधिष्ठिर! महाराज धृतराष्ट्र ने तुम लोगों को हारा हुआ समस्त राज्य लौटा दिया, हमें इस बारे में कुछ नहीं कहना महाराज को ऐसा करने का पूरा अधिकार है। अब हम पुनः जुआ खेल रहे हैं। इस बार जुए में कुछ भी दांव पर लगाने की आवश्यकता नहीं। बस, एक वचन है, जिसका हारने वाले को पालन करना होगा।”

“कैसा वचन?”

“जो बाजी हारेगा, वह बारह वर्ष के लिए वनों में सामान्य जन की भांति रहेगा और तेरहवां वर्ष अज्ञातवास में व्यतीत करना होगा। अज्ञातवास में यह शर्त है कि अगर हारा हुआ पहचाना गया तो उसे तेरह वर्ष के लिए फिर निष्कासित जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। अगर मैं हार गया तो कौरव यह वचन पालन करेंगे और अगर तुम हार गए तो तुम लोग इस वचन का पालन करोगे। बोलो, स्वीकार है!”

“स्वीकार है।” युधिष्ठिर ने तत्काल उत्तर दिया।

“तो लो, बाजी संभालो।”

यह कहकर शकुनि ने बाजी चलाई और अगले पल ही चीख पड़ा, “मैं जीत गया।”

युधिष्ठिर ने निराशा से देखा—पासे पलट चुके थे, जीत शकुनि की हुई थी। इसलिए वे वचनानुसार राज-पाट छोड़कर वन-गमन को विवश हो गए।

कौरव अपनी विजय पर प्रसन्न हो गए। दुःशासन पांडवों का अपमान करने का यह अवसर गंवाना नहीं चाहता था। वह बोला, “ओ द्रौपदी! तुम भी कैसे पतियों के बीच फंस गई, जो तुम्हारी रक्षा भी नहीं कर सके, बल्कि जुए के दांव पर भी लगा दिया। अच्छा तो यह है कि इन्हें छोड़कर हममें से किसी को पति चुन लो, कम-से-कम तुम्हें जुए में दांव पर तो नहीं लगाएंगे।”

भीम क्रोध से बिफर पड़ा, “दुःशासन! एक दिन तुम्हें इस दुष्टता का आनंद अवश्य चखाऊंगा। तुम्हारी छाती तीरों से बेध दूंगा।”

“हो-हो-हो!” दुःशासन हंस पड़ा। दुर्योधन ने भी अपनी व्यंग्योक्तियों से पांडवों का हृदय विदीर्ण कर दिया।

पांचों भाई उनकी चाल पर क्षुब्ध हो गए। उन्होंने मन-ही-मन तय कर लिया कि वे इस अपमान का बदला अवश्य लेंगे।

अब उनसे हस्तिनापुर में एक पल के लिए भी रुका नहीं गया, उन्होंने सामान्य जनों की तरह वस्त्र धारण किए और गुरुजनों से विदा ली।

विदुर ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, “वत्स! जाओ, भगवान तुम लोगों की सहायता करेंगे। माता कुंती को मेरे घर छोड़ जाओ, उनसे वनवास का कष्ट सहा नहीं जाएगा। जब तक तुम लोग वापस नहीं आओगे, तब तक मैं उनकी देखभाल करूंगा।”

पांडवों ने विदुर की आज्ञा शिरोधार्य कर ली। माता कुंती को विदुर के यहां छोड़कर वे भरे हृदय से हस्तिनापुर से विदा हो गए।

□□

धृतराष्ट्र मन-ही-मन अनुभव कर रहे थे कि पांडवों के साथ अच्छा नहीं हुआ, किंतु वे विवश थे। विदुर पांडवों को विदा कर जब आए तो धृतराष्ट्र ने उत्सुकता से पूछा, “पांडव चले गए? जाते समय कैसी अवस्था थी उनकी?”

विदुर ने उत्तर दिया, “महाराज! युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर से जाते समय सिर झुका लिया और आंखों के आगे वस्त्र का आवरण डाल लिया, क्योंकि उन्हें भय था कि खुली आंखों से उन्होंने कहीं भी देख लिया तो आग लग जाएगी। भीमसेन बार-बार अपनी मुट्ठियां कस रहे थे, जैसे वे मुष्टि प्रहार से शत्रुओं की छाती फाड़ने को व्याकुल हो रहे हों। अर्जुन चुपचाप धूल के बवंडर उड़ाता चल रहा था, मानो अपने धनुष से ऐसे ही वह तीरों का बवंडर उड़ाना चाहता हो। द्रौपदी—वह सबसे पीछे चल रही थी और उसकी आंखों से लगातार आंसू बह रहे थे, जैसे वह बताना चाहती हो कि एक दिन कौरवों की विधवा पत्नियां भी इसी प्रकार जोर-जोर से रोएंगी। नकुल और सहदेव ने अपने मुख पर कीचड़ पोत लिया था, ताकि उन्हें पहचाना न जाए।”

“हे भगवान!” धृतराष्ट्र घबरा गए, “यह सब तो नाश के संकेत हैं। अरे कोई दौड़ो, पांडवों को वापस बुला लाओ। मैं उन्हें फिर सब कुछ लौटाकर इंद्रप्रस्थ भेज दूंगा। मैं नहीं चाहता कि कोई अनर्थ हो। कौरव-पांडव मिल-जुलकर रहें, यही मेरी इच्छा है।”

पास ही संजय बैठा था। बोला, “महाराज! अब शोक करने से क्या लाभ? सभागार में लोगों ने इतना समझाया, तब तो आपने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया और अब व्याकुल हो रहे हैं। अब तो उस दिन की प्रतीक्षा कीजिए, जब इस अन्याय का फल भोगने का अवसर आएगा।”

(आठ)

पांडव जब हस्तिनापुर से निकले तो नगर में दुर्योधन से प्रजा बहुत खिन्न थी। बहुत बड़ी संख्या में लोग पांडवों के पीछे-पीछे चल पड़े।

चलते-चलते गंगा नदी का किनारा आ पहुंचा। रात को पांडवों ने वहां एक वृक्ष के नीचे रात बिताई। ये नगरवासी भी वहीं सोए।

दूसरे दिन सवेरे युधिष्ठिर से रहा नहीं गया तो उन्होंने प्रजाजनों से कहा, “आप लोग हमारे साथ क्यों कष्ट उठा रहे हैं। कृपया वापस चले जाइए। सामने भयंकर वन है, वहां आप लोगों का जाना ठीक नहीं है। अपनी दुर्गति का कारण हम स्वयं ही हैं, हमें ही इसका फल भोगने दो।”

पांडवों को छोड़कर कोई जाना नहीं चाहता था, फिर भी कुछ लोग युधिष्ठिर के कहने पर वापस चले गए, लेकिन कुछ ब्राह्मण ऐसे थे, जो पांडवों को छोड़कर नहीं जा सके। जब पांडव आगे बढ़े तो वे भी उनके साथ चल पड़े।

युधिष्ठिर बोले, “हे ब्राह्मणो! आपका स्नेह पाकर हम धन्य हुए, किंतु हम नहीं चाहते कि आप अकारण हमारे साथ कष्ट भोगें। वन में रहने-सोने की तो असुविधा है ही, खाने-पीने का भी बहुत कष्ट है। मेरे भाई इतने टूट गए हैं कि वे न आपके लिए कोई शिकार कर सकेंगे और न ही फल-फूल जुटा सकेंगे। उचित यही है कि अब आप लोग हस्तिनापुर चले जाएं।”

ब्राह्मण बोले, “धर्मराज! हमें वापस जाने को मत कहो। हम अपने खाने-पीने की व्यवस्था स्वयं कर लेंगे, आप लोगों को कोई परेशानी नहीं होने देंगे। बस, हमें तो आपका सान्निध्य चाहिए।”

युधिष्ठिर से आगे कुछ कहा नहीं गया। प्रजा का स्नेह व सहानुभूति पाकर उनका हृदय भर आया। युधिष्ठिर की शोक मुद्रा देखकर साथ आए लोग भी मर्माहत हो गए। वहीं पर खड़ा सैनिक, जो बुद्धिजीवी था, उसने युधिष्ठिर से कहा, “राजन! दुःख-सुख तो मानव के साथ

रात-दिन लगे ही रहते हैं। कमजोर लोग तो दुखों से टूट जाते हैं, किंतु आप जैसा धैर्यवान व्यक्ति इन दुखों से कभी टूट नहीं सकता।”

युधिष्ठिर बोले, “मैं अपने दुखों से दुखी नहीं हूँ, मैं अकेला होता तो सारे कष्ट हंसते-हंसते झेल लेता। बस, दुःख है तो अपने भाइयों व द्रौपदी का, जो मेरे कारण दुःख भोग रहे हैं। मुझे तो उनका भी दुःख है, जो मेरे साथ इस वन तक चले आए हैं। काश! मैं इनका अतिथि-सत्कार कर पाता, इन्हें खिला-पिता पाता।”

पांडवों के साथ उनका कुल-पुरोहित धौम्य भी आया था। युधिष्ठिर की यह बात सुनकर उसने सुझाव दिया, “राजन! आप व्यर्थ ही चिंता कर रहे हैं। भगवान सूर्य के रहते भला कौन भूखा रह सकता है। यह कौन नहीं जानता कि सूर्यदेव की कृपा से ही अन्न उपजता है और जीव अपना पेट भरता है। इसलिए सूर्यदेव की स्तुति कीजिए, वही आपकी सहायता करेंगे। मैं आपको सूर्यदेव की उपासना के मंत्र बताता हूँ, आप उपासना आरंभ कर दीजिए।”

फिर क्या था, युधिष्ठिर नहा-धोकर शुद्ध तन-मन से सूर्यदेव की स्तुति में लीन हो गए। उन्होंने कुल-पुरोहित धौम्य के बताए गए ढंग से सूर्यदेव का एक सौ आठ बार नामोच्चार किया और नदी में घुटनों पानी में खड़े रहकर उपवास रखा। भगवान सूर्य उनकी स्तुति से प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रकट होकर कहा, “धर्मवीर! तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होगी। लो, यह अक्षयपात्र, इसमें से तुम्हें मनचाही भोज्य सामग्री प्राप्त होती रहेगी। जब तक द्रौपदी दूसरों को बांटकर स्वयं खा नहीं लेगी, तब तक अक्षयपात्र की भोज्य सामग्री समाप्त नहीं होगी।

युधिष्ठिर का सारा मनस्ताप जाता रहा। अब प्रतिदिन द्रौपदी अक्षयपात्र लेकर सामने आए जन समुदाय को भोजन कराती, पतियों को खिलाती और फिर आप खाती।

□□

एक दिन पांडवों ने गंगा नदी पार की और चलते-चलते द्वैत वन नामक वन में जा पहुंचे। वहां के निवासियों ने पांडवों का स्वागत किया। पांडव उनका प्यार और आदर पाकर बहुत

प्रसन्न हुए। युधिष्ठिर अपने भाइयों व पत्नी के साथ कुछ दिनों के लिए वहीं रह गए।

कुछ दिनों बाद दोपहर का समय था। पांडव वन में आराम कर रहे थे, तभी दूर से रथ के आने का स्वर सुनाई दिया। पांडवों ने चौंककर देखा—रथ पर उनके स्नेही चाचा विदुर चले आ रहे थे।

युधिष्ठिर की समझ में नहीं आया कि एकाएक विदुर वन में उनकी ओर क्यों आ रहे हैं? वे अपने भाइयों की ओर देखकर बोले, “कहीं ऐसा तो नहीं कि विदुर एक बार फिर जुए के खेल में भाग लेने के लिए आमंत्रित करने आ रहे हों। अंततः कौरव चाहते क्या हैं? अब शकुनि हम पर कौन-सा दांव चलना चाहता है? क्या वे हथियार, जिन्हें वह जुए में हमसे अब तक पा नहीं सका है।”

तब तक रथ समीप आ चुका था। विदुर रथ से उतरकर निकट आए। वे बोले, “युधिष्ठिर! धृतराष्ट्र ने मुझे भी हस्तिनापुर से निकाल दिया।”

“निकाल दिया?” युधिष्ठिर चौंके, “यह क्या कहते हैं आप! यह सब कैसे हुआ?”

“सुनो! धृतराष्ट्र तुम लोगों के वन-गमन से बहुत परेशान रहने लगे थे। तुम लोगों के जाने के बाद मैंने उन्हें बताया था, जैसे कुछ अशुभ घटने वाला है। उन्होंने कई रातें जगकर बिताई थीं। इसलिए उन्होंने एक दिन मुझे अपने पास बुलाया और कहा कि विदुर! जो कुछ हुआ, उसमें मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं, फिर भी मैं इन घटनाओं से अत्यंत चिंतित हूं। अब कुछ ऐसा उपाय बताओ, जिससे भविष्य में कोई अनहोनी घटना न घटे। मैंने धृतराष्ट्र से स्पष्ट कहा कि पांडवों के साथ जो कुछ हुआ है, वह सर्वथा अन्याय है। बेहतर यही है कि पांडवों को वापस बुलाकर सम्मानपूर्वक उनका राज्य सौंप दिया जाए। भविष्य में अनहोनी न होने का एक ही उपाय है कि दुर्योधन को घर से निकाल दें। मेरी यह बात सुनकर तो धृतराष्ट्र अत्यंत नाराज हो गए। सच तो यह है कि संतान-प्रेम के कारण वे अच्छे-भले का ज्ञान भुला बैठे हैं। वे क्षुब्ध होकर बोले, ‘मुझे पहले ही पता था कि तुम पांडवों का पक्ष लोगे, पर मैं यह नहीं जानता था

कि मेरे पुत्रों से तुम्हें इतनी घृणा है। दुर्योधन को घर से निकालने की सलाह देते हुए तुम्हें तनिक भी अफसोस नहीं हुआ। अच्छा तो यही है कि तुम्हीं हमारे यहां से चले जाओ। जहां तुम्हारी इच्छा हो, उधर ही निकल जाओ। मुझे तुम्हारी सलाह की अब कोई आवश्यकता नहीं।' बस, यह सुनते ही मैं हस्तिनापुर से निकल पड़ा। सच तो यह है कि धृतराष्ट्र भी उस बीमार व्यक्ति की प्रकार हैं, जो व्याधि में कड़वी दवाएं लेने से जी चुराता है। उन्हें भला मेरी सही सलाह कैसे पसंद आएगी?"

“महात्मा विदुर!” युधिष्ठिर बोले, “हमें तो आपकी सलाह की सदैव आवश्यकता है। आप प्रसन्नतापूर्वक हमारे साथ रहिए।”

विदुर वहीं रह गए। विदुर का साथ पाकर पांडवों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा, लेकिन विदुर का साथ अधिक दिनों तक पांडवों की किस्मत में नहीं रहा।

हुआ यह कि विदुर के हस्तिनापुर से निकल जाने के बाद धृतराष्ट्र की बेचैनी अधिक बढ़ गई। उन्हें रात-दिन एक ही शोक सताता था कि विदुर को घर से निकालकर अच्छा नहीं किया। आत्मग्लानि के अलावा मन में यह शंका भी थी कि कहीं ऐसा न हो कि विदुर पांडवों के साथ रहें और पांडव उनकी सलाह से लाभ उठाकर हमारे विरुद्ध कोई षड्यंत्र रच डालें। एक दिन तो ऐसा हुआ कि सभागार में उद्विग्नता के मारे धृतराष्ट्र बेहोश होकर गिर पड़े। फिर जब होश में आए तो एक ही बात बार-बार दोहराते थे, मैंने विदुर को कटु वचन कहकर अच्छा नहीं किया। मैं जीवित नहीं रह सकता। क्या विदुर मुझे माफ कर देगा? मैं विदुर के बिना नहीं रह सकता। विदुर कहां है? क्या पता वह जीवित भी है या नहीं। फिर उन्होंने अपने सारथी संजय को बुलाया और निर्देश दिया, “संजय! इसी समय तुम विदुर की खोज में चले जाओ। मिलते ही उनको बताओ कि उनके बिना मेरी क्या हालत हो गई है। उन्हें किसी भी प्रकार वापस लाओ। संजय! अब मेरा जीवन तुम्हारे हाथों में है।”

संजय तो यह सुनते ही महल से निकले और रथ पर सवार होकर विदुर की खोज में निकल गए। द्वैतवन में पांडवों के साथ विदुर को पाकर वे बोले, “महात्मा! आप शीघ्र हस्तिनापुर चलिए, महाराज की स्थिति अत्यंत शोचनीय है। वे आपको महल से निकालकर पछता रहे हैं। अगर आप नहीं चले तो वे इस दुःख को सह नहीं सकेंगे और जान दे देंगे।”

यह सुनकर विदुर से रहा नहीं गया। वे पांडवों से विदा लेकर उसी पल हस्तिनापुर लौट गए।

धृतराष्ट्र विदुर को अपने पास दुबारा पाकर बहुत प्रसन्न हुए, लेकिन दुर्योधन व उसके साथियों को विदुर का वापस आना पसंद नहीं था। विदुर हमेशा पांडवों का पक्ष लेते थे, यह बात कौरवों को खलती थी। उन्हें यह भी डर था कि विदुर यहां रहकर पांडवों के हित में जासूसी न करें।

कर्ण ने दुर्योधन से कहा, “पांडवों को इस प्रकार छोड़ देना ठीक नहीं, अन्यथा तेरह वर्षों में तो उनकी बदला लेने की योजना ऐसी भव्य बन जाएगी कि हम मुकाबला भी नहीं कर सकेंगे। फिर क्या ठिकाना, कहीं महाराज धृतराष्ट्र का हृदय ही बदल जाए और वे पांडवों को बुलाकर उन्हें राज्य सौंप दें।”

“तो?” दुर्योधन ने पूछा।

“हम पांडवों की जगह तो जानते ही हैं।” कर्ण बोला, “हमें इसी समय चलकर पांडवों को कुचल देना चाहिए।”

कौरव द्वैतवन जाने की तैयारियों में व्यस्त हो गए।

महर्षि व्यास ऐसे अवसर पर हस्तिनापुर पहुंचे। उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा, “राजन! भविष्य में जो अनर्थ होने वाला है, उसका मुझे ज्ञान है। इसलिए मैं आपको सुझाव देता हूं कि अपने पुत्रों को अनुचित मार्ग पर न बढ़ने दें। बेहतर यही है कि वे पांडवों से मिल-जुलकर रहें, वरना तेरह वर्षों के बाद अनर्थ हो जाएगा। वंश का विनाश निश्चित है।”

धृतराष्ट्र बोले, “मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है, आप ही मेरे पुत्रों को परामर्श दें।”

महर्षि मैत्रेय ने दुर्योधन की ओर देखकर कहा, “उचित ही है कि पांडवों के साथ मित्रतापूर्वक रहो। पांडवों को इस राज्य से बाहर कर देना ठीक नहीं। मैंने द्वैतवन में पांडवों को रहते देखा है। क्या राजकुमारों का पत्नी के साथ इस प्रकार वन-वन भटकना ठीक है?”

दुर्योधन ने महर्षि मैत्रेय के सुझाव पर अपना मुंह बिगाड़ लिया और क्षुब्ध-सा हो अपनी जांघों पर मुक्का मारा। महर्षि मैत्रेय को दुर्योधन की यह बेरुखी रुची नहीं, बोले, “जिन जांघों पर आज तुम मुक्के बरसा रहे हो, एक दिन भीम इन जांघों के टुकड़े-टुकड़े कर देगा।”

दुर्योधन तो महर्षि मैत्रेय की बात पर हंसकर रह गया, किंतु धृतराष्ट्र मन-ही-मन घबरा गए। बोले, “महर्षि मेरे पुत्रों को ऐसा शाप मत दीजिए।”

“अगर तुम्हारे पुत्रों ने पांडवों से मित्रवत व्यवहार नहीं किया तो उनका विनाश निश्चित है।”

इतना कहकर महर्षि मैत्रेय चले गए।

□□

पांडव हस्तिनापुर की घटनाओं से अनभिज्ञ वन में अपना समय व्यतीत कर रहे थे। अंततः वे राजवंश के थे और इंद्रप्रस्थ के शासक थे, इसलिए उनके अनेक मित्र व शुभचिंतक राजा उनसे मिलने वन में यदा-कदा आते रहते थे। कोई भी मित्र राजा पांडवों की वर्तमान स्थिति से प्रसन्न नहीं था। वे कहते थे, “कौरवों की धूर्तता कौन नहीं जानता, उनकी बात मानकर वन में रहना निरर्थक है। इंद्रप्रस्थ जाकर अपना राज-पाट संभालिए।”

“हमें शर्त को भंग करने का अधिकार नहीं।” युधिष्ठिर उत्तर देते।

“आप धर्मराज हैं। आपसे तो यही उम्मीद है। शर्त भले ही अनुचित हो, आप निभाएंगे अवश्य।” मित्र कहते, “अगर हमसे किसी सहायता की आवश्यकता हो तो निःसंकोच

कहिएगा।”

“अभी नहीं।” युधिष्ठिर का उत्तर होता, “तेरह वर्षों के बाद अवश्य आपका सहयोग चाहिए।”

श्रीकृष्ण को पांडवों के वनवास का समाचार मिल चुका था। वे भी द्वैतवन आकर पांडवों से मिले। बोले, “जो कुछ हुआ, सुनकर बहुत दुःख हुआ। मैं अगर अवसर पर उपस्थित होता तो यह अन्याय कभी नहीं होने देता, किंतु मैं द्वारिका से बाहर चला गया था। खैर, शीघ्र ही समय आने वाला है जब इस अन्याय का बदला तुम लोग सफलतापूर्वक चुकाओगे।”

पांचों भाई श्रीकृष्ण की सांत्वना से आश्वस्त हुए। पास ही द्रौपदी बैठी थी। सहानुभूति के दो बोल सुनकर उसकी आंखों से आंसू बह निकले। वह आर्तनाद करती हुई बोली, “मुझे देखो, कैसी अभागिनी हूं मैं। मेरे पांच-पांच वीर पति हैं, जिनकी वीरता के विश्व में चर्चे हैं, फिर भी वे कौरवों की अनीति के विरुद्ध कुछ न कर सके और कौरवों ने भरी सभा में मेरा अपमान किया। दुःशासन ने मुझे वस्त्रहीन करना चाहा। मैं रोई-चीखी-चिल्लाई, पर सभा में किसी ने मेरी सहायता नहीं की। बस एक तुम्हीं थे, जो मेरी सहायता को आए। उस समय न अर्जुन का गांडीव उठ सका और न भीम की गदा!”

श्रीकृष्ण बोले, “रो मत पांचाली। कौरवों ने जो कुछ किया है, उसका दंड वे अवश्य भोगेंगे। दुर्योधन व कर्ण आदि दुष्टों का नाश होगा और युधिष्ठिर को अपना खोया सम्मान फिर प्राप्त होगा।”

श्रीकृष्ण की सांत्वना से पांडवों को नई शक्ति प्राप्त हुई। श्रीकृष्ण के चले जाने के बाद वे नए उत्साह से अपना समय व्यतीत करने लगे।

एक दिन शाम के समय पांचों भाई द्रौपदी के साथ बैठे थे। वे अपने अतीत, वर्तमान व भविष्य के बारे में विचार-विमर्श कर रहे थे।

द्रौपदी अपना अपमान याद कर-करके बिफर उठती थी। एकाएक बोली, “कौरवों की बेरहमी का अंत नहीं। सभागार में हमारी दुर्दशा देख-देखकर कैसे हर्षित हो रहे थे। हमारे वनवास जाने से सारा नगर शोकाकुल था, किंतु दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण आदि कैसे मुस्करा रहे थे। मुझे तो आश्चर्य हो रहा है कि आप पांचों वीर शांति से कैसे यह सारा अन्याय सह रहे हैं, यह तो क्षत्रिय धर्म नहीं है। शत्रुओं को क्षमा करना कायरता है।”

“नहीं पांचाली! क्षमा कायरता नहीं, वीरों की शोभा है।” युधिष्ठिर ने कहा, “हमें क्रोध में आकर कोई काम नहीं करना चाहिए। इससे तो बना-बनाया खेल बिगड़ जाएगा।”

“कैसे बिगड़ जाएगा?” द्रौपदी बोली, “हमें अपनी और राज्य की रक्षा करने का पूरा अधिकार है।”

“हां, यह सत्य है, पर हमें अवसर की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। बिना सोचे-समझे कुछ भी करना उचित नहीं।”

“समय की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहने से कुछ हासिल नहीं होगा।” द्रौपदी बोली, “अपना गौरव प्राप्त करने के लिए हमें अभी से प्रयास शुरू कर देना चाहिए।”

भीम स्वयं बदला लेने को आतुर था। उसने द्रौपदी का समर्थन करते हुए कहा, “द्रौपदी सत्य कह रही है भैया! अंततः हम कब तक चुपचाप अन्याय सहते रहेंगे, तेरह वर्षों तक प्रतीक्षा करना व्यर्थ है और इन तेरह वर्षों में कौन जिएगा और कौन मरेगा, कौन जानता है।”

युधिष्ठिर बोले, “हम जब तक पूरी प्रकार तैयार नहीं हो जाते, तब तक कौरवों की विशाल सेना के साथ मुकाबला करना कठिन है। यह मत भूलो कि कर्ण का कवच उसका कभी अहित नहीं होने देगा, दुर्योधन की वीरता को भी कम मत आंको। फिर उनके साथ गुरु द्रोणाचार्य व भीष्म भी तो हैं।”

सचमुच स्थिति विकट थी। पांचों भाइयों के सामने कोई मार्ग नहीं था, सिवाय अवसर की प्रतीक्षा करने के। वे गंभीरतापूर्वक अपनी वर्तमान स्थिति में खोए हुए थे कि महर्षि व्यास वहां आ पहुंचे। उन्हें देखकर पांडवों की चिंता दूर हुई। उन्होंने ससम्मान महर्षि व्यास को आसन दिया।

महर्षि व्यास बोले, “वत्स! इतने चिंतित क्यों हो? क्या कौरवों के पक्ष से आशंकित हो। यह ठीक है कि उनके साथ बड़े-बड़े योद्धा हैं, किंतु तुम लोग डरो मत। एक दिन अर्जुन अपने शत्रुओं का नाश करने में समर्थ होगा। सुनो युधिष्ठिर! मेरे पास श्रुति-स्मृति नामक मंत्र है, जो मैं तुम्हें सिखा दूंगा। तुम यह मंत्र अर्जुन को सिखा देना। इस मंत्र के माध्यम से अर्जुन को देवताओं से दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति होगी, जिनका कोई मुकाबला नहीं कर सकेगा। अब चिंता छोड़ो और प्रसन्न हो जाओ।”

महर्षि व्यास ने वह मंत्र युधिष्ठिर के कानों में फूंक दिया। फिर बोले, “अच्छा वत्स! अब मैं जा रहा हूं, तुम लोग भी द्वैतवन से निकल जाओ। पास ही काम्यक वन है, वहां रहो। वहीं तुम लोगों को आनंद की प्राप्ति होगी।”

इतना कहकर महर्षि व्यास चले गए।

पांडवों ने द्वैतवन छोड़ दिया और काम्यक वन में आ गए। काम्यक वन सचमुच रमणीक स्थान था।

एक दिन शुभ मुहूर्त में युधिष्ठिर ने अर्जुन को श्रुति-स्मृति मंत्र दिया। अर्जुन मंत्र लेकर सीधा कैलाश पर्वत की ओर रवाना हो गया। कैलाश पर्वत पर अर्जुन ने देवताओं की स्तुति की। अर्जुन पांच महीनों तक एकांत भाव से मंत्रजाप करता रहा।

देवता प्रसन्न हुए और एक-एक कर अर्जुन को दर्शन दिए व दिव्यास्त्र देकर संतुष्ट किया। सबसे पहले शंकर आए और पाशुपत नामक अस्त्र दिया। फिर यम ने वाण दिया। कुबेर ने भी दर्शन देकर अर्जुन को युद्धास्त्रों का वरदान दिया।

अर्जुन की स्तुति सफल हुई। दिव्यास्त्र प्राप्त कर वह काम्यक वन चल पड़ा। मार्ग में इंद्र से मुलाकात हुई, जो उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अर्जुन था भी इंद्र का ही पुत्र। इंद्र अर्जुन को अपने साथ इंद्रपुरी ले गए। इंद्र ने भी अर्जुन को अनेक दिव्यास्त्रों के परिचालन की शिक्षा दी।

वहां अर्जुन को रहते हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो गए। अर्जुन को भाइयों से बिछुड़े काफी समय हो गया था। उसे चिंता थी कि जाने उसके विलंब से भाई कितने परेशान हों। उसने इंद्र से कहा, “अब मुझे वापस लौट जाना चाहिए।”

“तुम भाइयों के लिए चिंतित मत हो।” इंद्र ने कहा, “मैं आज ही महर्षि लोमश को तुम्हारे भाइयों के पास भेज देता हूँ, वे उन्हें तुम्हारी कुशलता का समाचार देकर आश्वस्त कर देंगे।”

□□

काम्यक वन में अर्जुन की जुदाई से सचमुच उसके भाई व पत्नी द्रौपदी अत्यंत चिंतित और उदास हो गए थे।

एक दिन भीम ने कहा, “अर्जुन इतने वर्षों से कैलाश पर्वत पर एकांत वास कर रहा है, वह हम लोगों के लिए इतना कष्ट उठा रहा है, मैं तो जा रहा हूँ अर्जुन को लेने।”

युधिष्ठिर ने स्नेह से कहा, “भाई! उतावले मत हो। अर्जुन को अपनी तपस्या पूरी कर लेने दो, वह हमारे भले के लिए ही तो गया है। तेरह वर्ष व्यतीत होने में समय ही कितना लगता है, फिर तुम कौरवों से गिन-गिनकर बदले लेना।”

तभी उन्हें महर्षि लोमश एवं महर्षि वृहदश्व से यह शुभ समाचार मिला कि अर्जुन अमरावती में इंद्र के सान्निध्य में सकुशल है। घोर तपस्या से अर्जुन थक गया था, इंद्र उसे विश्राम हेतु अपने साथ ले गए हैं। अर्जुन ने इंद्र से न केवल अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा ग्रहण की है, बल्कि कर्ण का कवच भेदने का रहस्य भी सीखने के प्रयास में लगे हुए हैं।

भाई अर्जुन की कुशलता व अस्त्र-शस्त्रों में पारंगत होने की सूचना से चारों भाइयों के हर्ष का पारावार न रहा।

इसी अवसर पर काम्यक वन में महर्षि नारद आकर पांडवों से मिले। उन्होंने पांडवों को सुझाव दिया, “यहां से तुम लोग तीर्थाटन के लिए निकल जाओ, समय अच्छा बीतेगा और मन भी लगा रहेगा।”

नारद मुनि की बात द्रौपदी एवं चारों भाइयों को भा गई। वे महर्षि लोमश के साथ तीर्थाटन पर निकल गए। अनेक पवित्र स्थानों का दर्शन किया तथा अनेक पावन नदियों में स्नान किया। सबसे पहले वे पूर्व की ओर गए, गोदावरी के किनारे नैमिषारण्य में प्रवास किया, फिर गंगा-यमुना के तीर पर गए। वे सुदूर दक्षिण की ओर भी गए। सच तो यह था कि जितने पवित्र तीर्थ, नदियां व पर्वत श्रृंखलाएं थीं, उन सभी स्थानों पर उन्होंने देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त किया। वे प्रभाष तीर्थ जाकर श्रीकृष्ण से मिले। नारद ने जैसा कहा था, उनका आधा समय बीता और उनके बेचैन मन को करार भी मिला। अर्जुन की जुदाई का शोक जाता रहा। बारह वर्ष देखते-ही-देखते बीत गए।

बारहवें वर्ष वे लोग हिमालय की ओर चल पड़े। वहीं अर्जुन के मिलने की संभावना थी। पांच वर्षों की जुदाई के बाद वहां अर्जुन का अपने भाइयों से पुनर्मिलन हुआ।

अर्जुन ने भाइयों से कहा, “अब चिंता करने की आवश्यकता नहीं। देवताओं की असीम शक्तियां हमारे साथ हैं। कौरव हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।” इसके साथ ही उसने देवताओं से जो किस्म-किस्म के दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया था, उनका ब्यौरा भाइयों को सुना दिया।

चारों भाई व द्रौपदी अर्जुन की सफलता से अति प्रसन्न हुए। लगा कि वे अपने शत्रुओं के अन्याय का अब प्रतिशोध ले सकेंगे। उन्हें मात्र सोच-समझकर योजना बनाने की आवश्यकता थी। उन्हें एक वर्ष अब अज्ञातवास में व्यतीत करना था, उसके बाद अपना अधिकार वापस लेने के लिए कौरवों से लड़ना था।

हिमालय से वे वापस काम्यक वन की ओर चल पड़े।

काम्यक वन में श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ पांडवों से मिलने आए। अर्जुन की सफलता का समाचार सुनकर वे प्रसन्न हुए। उन्होंने पांडवों को सूचना दी कि द्वारिका में अभिमन्यु व द्रौपदी के पांचों पुत्रों का लालन-पालन भली-भांति हो रहा है। यह भी कहा, “समय आने पर मैं तुम लोगों को अन्याय के विरुद्ध लड़ते हुए अपना सहयोग अवश्य दूंगा।”

(नौ)

पांडवों की गतिविधियों की सूचनाएं हस्तिनापुर में बराबर आ रही थीं। गुप्तचर आकर बताते थे कि पांडव वन-वन में बड़ी दीन-हीन दशा में अपना समय व्यतीत कर रहे हैं।

इन समाचारों से दुर्योधन को बड़ा संतोष होता था। एक बार तो शकुनि ने यहां तक कह दिया, “जी चाहता है कि इस अवसर पर उनके पास जाकर उनकी दीन-हीन दशा का खूब उपहास उड़ाना चाहिए। वे तो वनवास की शर्त पूरी करने को वचनबद्ध हैं, हमारा कुछ बिगाड़ भी नहीं सकते।”

“हां मामा! आपकी योजना तो आनंददायक है।” दुर्योधन बोला, “हमें इसी समय चलकर उन्हें अपनी शानो-शौकत दिखाकर चिढ़ाना चाहिए, पर महाराज धृतराष्ट्र से अनुमति पाना बहुत कठिन है।”

धृतराष्ट्र भी पांडवों की गतिविधियों से अनभिज्ञ नहीं थे। यों वे पांडु पुत्रों की शोचनीय अवस्था से दुखी अवश्य थे, पर पांडवों ने जिस कौशल से देवताओं से अनुपम अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किए थे, उससे वे मन-ही-मन भयभीत भी थे। कुछ भी हो वे अपने पुत्रों का अहित नहीं चाहते थे। सच तो यह था कि क्या अच्छा है या क्या बुरा इसका निर्णय कर पाना उनके वश में नहीं था। दुर्योधन पिता को दुविधाग्रस्त देखकर कभी-कभी सोच में पड़ जाता था कि कहीं पिताजी अपने भतीजों को वापस बुलाकर राज-पाट दुबारा न सौंप दें।

पांडवों ने वनवास के बारह वर्ष पूर्ण कर लिए थे और अब मात्र एक वर्ष का अज्ञातवास शेष था। अज्ञातवास में पांडवों को ढूंढ निकालना कठिन था, अतः दुर्योधन उसके पहले ही उन्हें मात देना चाहता था। दुर्योधन ने इस विषय पर अपने साथियों से विचार-विमर्श किया। दुर्योधन का विचार था कि इस समय क्या ठिकाना कि हमारे वृद्ध और कमजोर राजा का हृदय उनका दुःख देखकर पसीज जाए।

“तुम्हारी बात से सहमत हूं दुर्योधन!” शकुनि का उत्तर था, “लेकिन उनसे खुलेआम टकराना कठिन है। एक तो वे बदले की आग में जल रहे हैं, दूसरे अर्जुन ने कई मारक हथियार प्राप्त कर लिए हैं। इसकी बजाय हम क्यों न उन्हें तड़पा-तड़पाकर समाप्त कर दें।”

“वह कैसे?”

“वह ऐसे कि तुम हो हस्तिनापुर के वैभवशाली राजकुमार और वे दर-दर के भिखारी। बस, पहुंच जाओ राजसी ठाठ-बाट से उनके पास और उनकी वर्तमान दशा पर खुलकर हंसो।”

यह बात दुर्योधन व कर्ण आदि को पसंद आ गई। धृतराष्ट्र से बाहर जाने की अनुमति मिलना सहज नहीं था, इसलिए एक बहाना बनाने का अवसर उन्हें मिल ही गया।

उन्हीं दिनों काम्यक वन के आसपास गायों की संख्या गिनने का अवसर आ पहुंचा। इसी की देखरेख करने के बहाने दुर्योधन, शकुनि व कर्ण आदि काम्यक वन जाने लगे तो धृतराष्ट्र ने उनसे कहा, “सुना है, वहीं तुम्हारे चचेरे भाइयों ने भी डेरा डाल रखा है, उनसे मत उलझना। अब तो उनके पास दिव्यास्त्र भी हैं, इसलिए अपना काम निपटाकर चुपचाप चले आना।”

“हमें उनसे क्या लेना-देना।” दुर्योधन बोला, “हम तो बस गणना करके सीधे लौट आएंगे।”

कौरव हस्तिनापुर से चुपचाप निकले, लेकिन उनके मन में पांडवों को जलाने का पक्का इरादा था। इसलिए वे पूरा लाव-लशकर लेकर राजसी ठाठ-बाट से काम्यक वन पहुंचे और पांडवों के डेरे से कुछ दूर नदी के इस पार अपना शिविर लगा दिया। अब रात-दिन वे वहां अपने राजसी वैभव का प्रदर्शन करते, खूब नृत्य-संगीत होता और रोशनी की जाती। दुर्योधन चाहता था कि किसी प्रकार पांडवों को उनके यहां आने का समाचार मिल जाए, पर जब पांडवों की ओर से कोई हलचल नहीं हुई तो दुर्योधन ने एक संदेश वाहक को पांडवों के पास भेजा, ताकि वे आकर मिल लें।

संदेशवाहक नदी तट पर पहुंचा। वहां गंधर्व चित्रसेन अपनी अप्सराओं के साथ आनंद मना रहे थे। कौरवों के सैनिक को वहां देखकर क्रुद्ध हो गया और सैनिक को अपमानित करके वापस भेज दिया।

बेचारा संदेशवाहक चुपचाप दुर्योधन के पास लौट आया। चित्रसेन की गुस्ताखी से दुर्योधन बड़ा क्रोधित हुआ और अपना लाव-लश्कर लेकर गंधर्व सेना पर आक्रमण कर दिया। दोनों पक्षों में जमकर युद्ध हुआ। गंधर्वों से टक्कर भारी पड़ी। कौरवों के अनेक सैनिक मारे गए। गंधर्वों ने दुर्योधन को बंदी बना लिया। वस्तुतः गंधर्वों को इंद्र ने जान-बूझकर भेजा था, ताकि दुर्योधन ने जो इरादा बनाया था, उसे विफल किया जा सके और सबक सिखाया जा सके।

दुर्योधन को बंदी बनाए जाने की सूचना पांडवों को मिली तो युधिष्ठिर बहुत चिंतित हुए। उन्होंने तत्काल भीम व अर्जुन को गंधर्वों की कैद से दुर्योधन को छुड़ाने का आदेश दिया। भीम तो दुर्योधन की दुर्दशा से प्रसन्न था, किंतु बड़े भाई का कहना था, “कुछ भी हो, वह हमारा खून है और उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है।” आदेश मानकर वह अर्जुन के साथ चुपचाप चला गया। उन दोनों ने गंधर्वों से दुर्योधन को स्वतंत्र करा दिया। चित्रसेन ने दुर्योधन को स्वतंत्र करते हुए कहा, “पांडवो! तुम लोग मेरे मित्र हो इसलिए मैं सहन नहीं कर सकता था कि दुर्योधन अपना ऐश्वर्य दिखाकर तुम लोगों का अपमान करने के मनहूस इरादे में सफल हो जाए, पर तुम लोगों की बात मानकर मैं इसे छोड़ता हूं। ले जाओ इसे।”

दोनों भाई दुर्योधन के साथ युधिष्ठिर के पास पहुंचे।

युधिष्ठिर ने उससे कहा, “दूसरे का बुरा चाहने वाला हमेशा मात खाता है। खैर, जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ और भविष्य में ऐसा कोई काम न करो, जिससे संकट का सामना करना पड़े।”

दुर्योधन इस घटना से अत्यंत शर्मिदा हुआ। उसने युधिष्ठिर को इस सहयोग के लिए धन्यवाद दिया और अपने साथियों के साथ चुपचाप हस्तिनापुर लौट गया।

पांडव भी द्वैतवन लौट गए।

□□

दुर्योधन इस अपमानजनक हार से बुरी प्रकार टूट गया था। वह तो अन्न-जल त्यागकर व राज-पाट दुःशासन को सौंपकर आत्महत्या करने पर उतारू हो गया।

कर्ण ने कहा, “बंधु! हिम्मत मत हारो। अगर पांडवों को अपने दिव्यास्त्रों पर घमंड है तो हम भी किसी से कम नहीं। मैं अपनी चतुरंगिणी सेना से क्या नहीं कर सकता। मैं भी दिग्विजय करके सबको मुट्ठी में कर लूंगा।”

दुर्योधन प्रसन्न होकर बोला, “तो देर किस बात की है, अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर निकल पड़ो दिग्विजय को।”

और सचमुच कर्ण एक दिन अपनी चतुरंगिणी सेना को लेकर हस्तिनापुर से जो निकला तो उसने चारों दिशाओं में अपनी विजयपताका फहरा दी और राजा द्रुपद आदि अनेक राजाओं को बंदी बना लिया।

कर्ण दिग्विजय से वापस लौटा तो दुर्योधन की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। अब तो उसे यकीन हो गया कि एक दिन वह पांडवों को आसानी से मात दे सकता है।

कर्ण की दिग्विजय की प्रसन्नता में कौरवों ने हस्तिनापुर में महायज्ञ का आयोजन किया। कौरवों ने महायज्ञ में भाग लेने के लिए पांडवों के पास भी निमंत्रण भेजा।

युधिष्ठिर ने उत्तर भेजा, “हम नहीं आ सकते, हमारी वनवास की अवधि भी समाप्त नहीं हुई है।” भीमसेन ने यहां तक कहलवा भेजा, “तेरह वर्ष समाप्त होने दो फिर हम युद्ध से इस महायज्ञ की पूर्णाहुति करेंगे।”

कौरवों ने पांडवों के इन उत्तरों को हंसी में उड़ा दिया। महायज्ञ सफलतापूर्वक समाप्त हो गया। कर्ण ने प्रतिज्ञा की, “जब तक मैं पांडवों को पराजित न कर दूं, तब तक तामसी वस्तुओं

को हाथ भी नहीं लगाऊंगा और मुझसे इस अवसर पर कोई कुछ भी मांगे अवश्य दूंगा।”

इस वचन का ही लाभ उठाकर एक दिन इंद्र ने आकर कर्ण से कवच और कुंडल प्राप्त कर लिए थे।

□□

पांडवों का बारह वर्षीय वनवास समाप्त होने को आया। अब समस्या थी अज्ञातवास की।

अज्ञातवास आरंभ होने से पहले ही एक घटना हो गई।

वन में जहां पांडव रहते थे, पास ही एक ब्राह्मण भी रहता था, जो नियम से पूजा-अर्चना करता हुआ समय व्यतीत करता था। एक दिन एक हिरण उसके डेरे के पास आया और अग्नि को प्रज्ज्वलित करने वाले यंत्र ‘अरणी’ से खिलवाड़ करने लगा। इससे अरणी उसके सींगों में फंस गई और वह अरणी लेकर वहां से नौ-दो-ग्यारह हो गया। ब्राह्मण यह देख चिंता में पड़ गया कि बिना अग्नि के पूजा-अर्चना कैसे हो पाएगी। वह दौड़ा-दौड़ा पांडवों के पास गया और युधिष्ठिर से बोला, “महाराज! हिरण मेरी अरणी लेकर भागा है, अब आप ही उससे अरणी वापस दिला सकते हैं।”

युधिष्ठिर का क्षत्रिय धर्म जाग पड़ा। ब्राह्मण की रक्षा करना उसका पहला कर्तव्य था। इसलिए उसने अर्जुन सहित चारों भाइयों को आदेश दिया, “चलो! हिरण का पीछा करें और ब्राह्मण की अरणी वापस लाएं।”

चारों भाई युधिष्ठिर के साथ हिरण के पीछे भाग चले, किंतु हिरण की तेजी का मुकाबला करना सरल नहीं था। वह एक पल को दिखाई देता तो दूसरे पल ही कुलांचें मारकर गायब हो जाता।

हिरण के पीछे दौड़ते-दौड़ते पांचों भाई बुरी प्रकार थक गए। शरीर से पसीना छूटने लगा था और प्यास से गला सूख रहा था। नकुल से नहीं रहा गया। वह बोला, “हमारी वीरता के भले

ही चर्चे हों, किंतु एक हिरण का हम मुकाबला नहीं कर पा रहे हैं, कैसा दुर्भाग्य है!”

“यह सब संयोग है नकुल! और संयोग के आगे किसी का वश नहीं चलता।” युधिष्ठिर बोले, “फिलहाल तो प्यास लगी है, कहीं से पानी का प्रबंध करो, फिर स्वस्थ होकर हिरण का पीछा करेंगे। नकुल! तनिक इस वृक्ष पर चढ़कर देखो, कहीं आस-पास पानी है?”

नकुल वृक्ष पर चढ़ गया और दूर-दूर तक देखने लगा। एक जगह उसे हरी-भरी घास दिखाई दी और उड़ते हुए बगुले भी। नकुल समझ गया कि वहां पानी अवश्य होगा। नकुल वृक्ष से उतरकर उधर पानी लेने चला गया।

जब जलाशय आ गया तो नकुल पानी भरने को नीचे झुका। तभी कहीं से गंभीर स्वर गूंजा, “नकुल! इस जलाशय पर मेरा अधिकार है अगर तुम मेरे प्रश्नों का सही-सही उत्तर दोगे, तभी मैं पानी लेने की तुम्हें स्वीकृति प्रदान करूंगा।”

नकुल ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, पर उसे बोलने वाला दिखाई नहीं दिया। नकुल को बहुत प्यास लगी थी इसलिए वह बोला, “पहले मुझे पानी पीने दो, फिर मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूंगा।”

इतना कहकर नकुल ने जलाशय से अंजुलि भरी और पानी पी गया। पानी पीने के अगले क्षण नकुल की चेतना लुप्त हो गई और वह जलाशय के किनारे बेहोश हो गया।

उधर चारों भाई नकुल की प्रतीक्षा कर रहे थे। बहुत देर के बाद भी नकुल वापस नहीं लौटा तो युधिष्ठिर ने सहदेव को उसकी खोज में भेजा। वह भी जब जलाशय के निकट पहुंचा तो अपनी प्यास बुझाने की इच्छा को दबा न सका। अदृश्य गंभीर स्वर ने उसे भी चेतावनी दी, इसके बावजूद उसने पानी पी लिया और बेहोश हो गया।

भीम व अर्जुन भी भाइयों व पानी की खोज में गए, किंतु उनकी भी वही दशा हुई, जो नकुल और सहदेव की हुई थी।

अब युधिष्ठिर घबराए और स्वयं उनकी खोज में आगे बढ़े।

जलाशय के आस-पास उन्होंने अपने भाइयों को खोजा तो वहीं उनके बेहोश शरीर दिखाई दिए। भाइयों की यह दुर्दशा देखकर युधिष्ठिर चकित रह गए। उन्हें समझ में नहीं आया कि भाइयों को किसने और क्यों इस हालत में पहुंचाया। युधिष्ठिर का गला प्यास से सूखा जा रहा था। उन्होंने पहले पानी पीकर इस समस्या पर सोचने का निश्चय किया।

युधिष्ठिर जैसे ही जलाशय के किनारे पहुंचकर पानी लेने को झुके कि उन्हें भी गंभीर स्वर सुनाई दिया, “युधिष्ठिर! पानी पीने से पहले मेरी बात ध्यान से सुनो। इस जलाशय पर मेरा अधिकार है, अगर तुम पानी पीना चाहते हो तो पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। तुमने मेरे सभी प्रश्नों का सही उत्तर दिया तो पानी पीने की आज्ञा मिलेगी, वरना नहीं। अगर तुमने मेरी अनुमति के बगैर पानी पीने का प्रयास किया तो तुम्हारी भी वही हालत होगी, जो तुम्हारे भाइयों की हुई है।”

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, “इस समय मैं अपने भाइयों की दशा एवं अपनी प्यास से अत्यंत व्याकुल हूं। इसलिए आप जैसा चाहेंगे, वैसा ही करूंगा। प्रश्न पूछिए।”

गंभीर स्वर में पूछा गया, “पृथ्वी से भारी वस्तु?”

“माता।”

“स्वर्ग से ऊंचा कौन?”

“पिता।”

“हवा से भी तेज?”

“मन।”

“खुली आंखों से कौन सोता है?”

“मछली।”

“संसार की सबसे आश्चर्यजनक बात?”

“यही कि किसी के मरने पर लोग ऐसे दुखी होते हैं, जैसे वे स्वयं कभी नहीं मरेंगे, जबकि एक दिन उन्हें भी मरना होता है।”

“तुच्छतम् वस्तु?”

“घास।”

“धनी कौन?”

“लालच से मुक्त प्राणी।”

“सुखी कौन?”

“चिंता से मुक्त प्राणी।”

“सबका प्यारा कौन?”

“गर्व से मुक्त प्राणी।”

“घर में सुख-दुःख का साथी कौन?”

“पत्नी।”

“यात्रा में सहायक कौन?”

“विद्या।”

“बुद्धिमान कौन?”

“जो बुद्धिमानों के साथ रहे।”

“मरणोन्मुख व्यक्ति का मित्र?”

“दान-पुण्य।”

“सूर्य को कौन उदित करता है और वह अस्त क्यों होता है?”

“सूर्य को उदित करता है—सृजनकर्ता ब्रह्म और वह अस्त होता है—अपने धर्म से।”

प्रश्नकर्ता कोई और नहीं यक्ष था।

यक्ष ने इस प्रकार पूरे एक सौ प्रश्न युधिष्ठिर से पूछे, जिनका युधिष्ठिर ने उचित उत्तर दिया। यक्ष ने सारे प्रश्न शीघ्रता से एक के बाद एक पूछे थे, जिनका युधिष्ठिर ने उसी गति से उत्तर दिया था। यक्ष युधिष्ठिर के सभी उत्तरों से संतुष्ट था।

यक्ष ने कहा, “हे धर्मवीर! तुम्हारे उत्तरों से मैं प्रसन्न हुआ। तुम्हारे सामने तुम्हारे चारों भाई मृत पड़े हैं। अब यह बताओ कि तुम किसे जीवित देखना चाहते हो? जिसकी ओर इशारा कर दोगे, मैं उसी को पुनर्जीवित कर दूंगा।”

“हे यक्ष! तुम मेरे सबसे छोटे भाई नकुल को जीवित कर दो।”

“यह क्या? नकुल तो तुम्हारा सौतेला भाई है। तुम अपने सगे भाई भीम या अर्जुन को क्यों नहीं जीवित देखना चाहते?”

“क्योंकि कुंती से एक पुत्र मैं तो जीवित हूँ ही, मैं एक भाई माद्री को पुत्र की निशानी के तौर पर जीवित चाहता हूँ।”

युधिष्ठिर का यह त्याग एवं भ्रातृ-स्नेह देखकर यक्ष बड़ा प्रभावित हुआ। बोला, “युधिष्ठिर! सचमुच तुम धन्य हो। लो, मैं तुम्हारे चारों भाइयों को जीवित कर देता हूँ।”

यक्ष ने युधिष्ठिर के चारों भाइयों को जीवित कर दिया। पांचों भाई फिर से एक-दूसरे को पाकर प्रसन्न हुए।

यक्ष ने कहा, “युधिष्ठिर! अब तुम मुझसे कोई वर मांगो।”

युधिष्ठिर को तत्काल याद आया कि वह ब्राह्मण की अरणी की खोज में निकले थे और अब हिरण का दूर-दूर तक कोई निशान नहीं था। युधिष्ठिर ने कहा, “हे यक्ष! मुझे कुछ नहीं

चाहिए। बस, मुझे गरीब ब्राह्मण की अरणी दिला दीजिए, ताकि ब्राह्मण को दिया गया अपना वचन मैं पूरा कर सकूँ।”

“तथास्तु।”

इस ध्वनि के साथ यक्ष सामने प्रकट हो गया। यक्ष स्वयं धर्मदेव थे। युधिष्ठिर के पिता, जिनका कुंती ने मंत्र द्वारा आह्वान किया था। धर्मदेव युधिष्ठिर के धैर्य, साहस और शक्ति की परीक्षा लेना चाहते थे, इसलिए उन्होंने हिरण का रूप धारण किया था और ब्राह्मण की अरणी लेकर भाग निकले थे। वे देखना चाहते थे कि वनवास का कष्ट भोगने से कहीं युधिष्ठिर धर्माचरण से भटक तो नहीं गए हैं।

युधिष्ठिर परीक्षा में एकदम खरे उतरे तो उन्होंने युधिष्ठिर को सब कुछ बता दिया और ब्राह्मण की अरणी वापस देकर बोले, “आज मैं सचमुच बड़ा संतुष्ट हुआ। मैं तुम लोगों को आशीर्वाद देता हूँ कि अज्ञातवास के दौरान तुम लोगों का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकेगा। शत्रु तुम्हें खोजना चाहेंगे, तुम्हारा अहित करना चाहेंगे, पर उन्हें मुंह की खानी पड़ेगी।”

पांचों भाई धर्मदेव के सामने नतसिर हो गए। धर्मदेव उन्हें आशीर्वाद देकर अंतर्धान हो गए।

पांडव अरणी लेकर आश्रम की ओर लौट गए।

(दस)

एक दिन वनवासियों ने देखा कि पांडव अपने आश्रम से लुप्त हो गए हैं। उन्हें खोजने का बहुत प्रयास किया गया, पर पांडवों का कहीं पता न चला।

पांडवों का अज्ञातवास आरंभ हो गया था, अतएव वे रात को सबकी निगाहों से बचकर लुप्त हो गए थे।

एक गुप्त स्थान पर पहुंचकर पांडवों ने अपनी अगली योजना पर विचार-विमर्श किया।

युधिष्ठिर बोले, “अज्ञातवास हम सबके लिए कठिन काल है। इस अवसर पर किसी ने हमें पहचान लिया या देख लिया तो हमें दुबारा वनवास भोगना पड़ेगा। अतएव पूरी सावधानी बरतना आवश्यक है।”

“क्यों न हम सब अलग-अलग दिशाओं की ओर निकल जाएं और छिपकर रहें।” भीम ने कहा, “कहीं ऐसा न हो कि एक नारी के साथ हम पांचों को एक साथ देखकर लोग हमें सहज ही पहचान लें।”

“यह आशंका तो है, पर हमें अलग-अलग नहीं रहना चाहिए। इससे तो हमारी शक्ति बंट जाएगी। बेहतर यही है कि हम एकजुट रहें और किसी की दृष्टि में न पड़ें।” युधिष्ठिर का विचार था।

“वह कैसे?” भाइयों ने पूछा।

कुछ देर तक सोचने के बाद युधिष्ठिर ने कहा, “हमें वेश बदलकर रहना चाहिए। हम यहां से मत्स्य प्रदेश चलते हैं। वहां के राजा विराट वृद्ध हैं, उनके पास जाकर हम काम पाने का प्रयास करेंगे। मुझे विश्वास है कि हम लोगों पर दया करके वे हमें अपने यहां अवश्य नौकरी देंगे।”

द्रौपदी वर्तमान स्थिति से पहले ही बेचैन थी, युधिष्ठिर की बात सुनकर उसकी आंखें भर आईं। बोली, “कैसा भाग्य है हमारा, जो स्वयं एक दिन सैकड़ों दासों को आश्रय देते थे, वे आज दर-दर भटक रहे हैं और किसी अन्य राजा के दरबार में आश्रय पाने को विवश हैं।”

युधिष्ठिर ने सांत्वना देकर कहा, “घबराओ मत द्रौपदी! यह सब हमेशा के लिए नहीं रहेगा। हम फिर पुरानी स्थिति प्राप्त कर लेंगे। अब मेरी योजना ध्यानपूर्वक सुनो। हम सब वेश बदलकर अलग-अलग मत्स्य प्रदेश में प्रवेश करेंगे। पहले मैं राजा विराट से मिलूंगा। मैं उनसे कहूंगा कि जुआ की क्रीड़ा में मैं पटु हूं, ज्योतिष शास्त्र में निष्णात हूं, अतएव वे मुझे नौकरी पर रख लेंगे तो मैं खाली समय में जुए की क्रीड़ा से उनका मनोरंजन करूंगा और नीति व ज्योतिष में उनको सहायता करूंगा। विराट यह सुनकर मुझे अवश्य नौकरी दे देंगे। वहां मेरा नाम होगा—कंक और तुम भीम! तुम कौन-सा वेश धारण करोगे? मुझे डर है कि तुम्हारा भारी-भरकम शरीर देखकर लोग तुम्हें पहचान न लें।”

भीम बोला, “घबराओ मत भैया! मेरा शरीर भारी-भरकम है तो मैं स्वयं को रसोइया बना लूंगा। रसोइए तो होते ही हृष्ट-पुष्ट हैं। मैं विराट से कहूंगा कि उसे मैं बहुत स्वादिष्ट व्यंजन बनाकर खिलाऊंगा बस, मेरी नौकरी पक्की। मैं अपना नाम ‘बल्लभ’ रख लूंगा। मैं वहां अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके राजा को प्रसन्न रखूंगा। ठीक है न?”

“हां एकदम ठीक है।” युधिष्ठिर फिर अर्जुन की ओर देखकर बोले, “और तुम्हारा क्या विचार है?”

“मुझे तो नारी का रूप धारण करना पड़ेगा, ताकि किसी को मेरे लड़ाकू होने का संदेह ही नहीं रहे। मेरी बांहों में धनुष के निशान हैं, जिन्हें मैं चूड़ियों में छिपा लूंगा। मैं राजा विराट से अंतःपुर की नौकरी प्राप्त कर लूंगा और वहां की महिलाओं के बीच रहकर उन्हें कथा-कहानियां सुनाकर उनका मनोरंजन करूंगा। मेरा नाम रहेगा—‘वृहन्नला’।” अर्जुन ने उत्तर दिया।

युधिष्ठिर को अर्जुन की यह योजना पसंद तो नहीं आई, पर विवशता में अपनी स्वीकृति दे दी।

“और मैं महाराज के अस्तबल का रखवाला बन जाऊंगा।” नकुल बोला, “मैं अपना नाम ‘ग्रंथिक’ रख लूंगा और वहां घोड़ों की देखभाल करूंगा। मैं राजा से कहूंगा कि इंद्रप्रस्थ के नरेश युधिष्ठिर के पास भी मैं अस्तबल में काम कर चुका हूं। यों भी घोड़ों को साधने में मेरा कोई जवाब नहीं।”

“मैं राजा विराट की गौशाला में नौकरी कर लूंगा और गायों व बैलों की सेवा करूंगा। मेरा स्पर्श होते ही गाएं पहले से अधिक दूध देंगी।” सहदेव ने कहा।

अपनी इस योजना पर पांचों भाई बारह वर्ष में पहली बार जी भरकर हंसे। अब रह गई थी केवल द्रौपदी। सबने द्रौपदी की ओर देखा। वह विचारों में खोई हुई थी।

युधिष्ठिर ने धीरे से कहा, “तुमने अपने बारे में क्या सोचा है द्रौपदी? तुमने तो कभी कोई काम नहीं किया, फिर भला राजा विराट के यहां कौन-सा काम मांगोगी?”

द्रौपदी दृढ़ स्वर में बोली, “आप मेरी चिंता न करें, मैं भी अपना कर्तव्य निभाऊंगी। मुझे याद आता है कि इंद्रप्रस्थ में मेरे पास एक दासी काम करती थी सैरंध्री। मैं सैरंध्री बनकर राजा विराट से मिलूंगी और नौकरी की याचना करूंगी। वे मुझे अवश्य अपने यहां काम पर रख लेंगे और मैं भी अंतःपुर में राजकुमारियों व अन्य महिलाओं की सेवा-टहल करूंगी। इस प्रकार वहां मैं सुरक्षित भी रहूंगी।”

पांचों भाइयों के सामने द्रौपदी का यह सुझाव मानने के अलावा और कोई चारा नहीं था। उन्होंने अपने कुल पुरोहित से आशीर्वाद प्राप्त किया और मत्स्य प्रदेश की ओर चल पड़े।

□□

मत्स्य प्रदेश के निकट पहुंचते ही पांडवों ने अपने वस्त्रादि व अस्त्र-शस्त्र नगर के बाहर एक वृक्ष की सबसे ऊंची डाल पर छिपाकर रख दिए। फिर अपना वेश बदलकर वे खाली हाथ विराट नरेश के दरबार में पहुंचे और नौकरी की याचना की। उन सबकी विशेषता सुनकर राजा विराट ने उन्हें तत्काल नौकरी पर रख लिया। कोई भी उन्हें पहचान न सका।

पांचों भाई व द्रौपदी बड़ी लगन से विराट के महल में काम कर रहे थे। उनकी योग्यता से सब बड़े प्रसन्न थे—बिना किसी की निगाहों में पड़े उन्होंने कई महीने दरबार में निर्विघ्न व्यतीत कर दिए। पांडव प्रसन्न थे कि शीघ्र ही अज्ञातवास का उनका यह वर्ष भी आराम से व्यतीत हो जाएगा, फिर वे अपने राज्य इंद्रप्रस्थ लौटने के योग्य बन जाएंगे।

अज्ञातवास में अब कुछ ही दिन शेष रह गए थे। द्रौपदी व पांचों भाई एक-एक दिन गिनते हुए इंद्रप्रस्थ लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे, तभी पांडव फिर कठिनाई में घिर गए।

महाराज विराट के महल में रहता था कीचक नामक एक राजा रहता था। वह महारानी सुदेष्णा का भाई था। वह मत्स्य प्रदेश का सेनापति था और बहुत शक्तिशाली व आकर्षक था। एक दिन महल में उसने सैरंथ्री बनी द्रौपदी को देख लिया। प्रथम दृष्टि में ही द्रौपदी उसे भा गई। द्रौपदी न केवल सुंदर थी, बल्कि रानी की जिस लगन से सेवा करती थी, उससे कीचक अत्यंत प्रभावित हो गया। अब वह उसको आकर्षित करने के प्रयास में जुट गया।

कीचक की हरकतें द्रौपदी से छिपी नहीं थीं, न ही पांडव इससे अनभिज्ञ थे, पर पांडव लाचार थे। अगर उन्होंने कीचक की हरकतों पर नाराजगी प्रकट की तो उनका भेद खुल जाने का डर था। द्रौपदी से रहा नहीं गया तो उसने महारानी सुदेष्णा से शिकायत कर दी, “देखिए! अपने भाई को मना कर दीजिए कि वे मुझे छोड़ा न करें। यों भी मैं विवाहिता हूं और मुझे यह हरकतें पसंद नहीं, मेरा विवाह गंधर्व से हो चुका है। कहीं ऐसा न हो कि गंधर्व कीचक की हरकतों से नाराज हो जाएं और कीचक का अहित कर बैठें।”

सुदेष्णा द्रौपदी का साथ पसंद करती थी। वह द्रौपदी को रुष्ट करना नहीं चाहती थी, इसलिए उसने कीचक को मना तो कर दिया, किंतु भाई तो अंततः भाई होता है, इसलिए कीचक पर उसने कोई कड़ा प्रतिबंध नहीं रखा। सच्चाई तो यह थी कि द्रौपदी की सुंदरता के कारण वह मन-ही-मन डरती थी कि कहीं राजा विराट भी उस पर मुग्ध न हो जाएं, इसलिए कीचक को बीच में आते देखकर वह निश्चिंत हो गई थी, क्योंकि विराट वृद्ध थे और कीचक से दबते थे।

कीचक को जब पता चला कि द्रौपदी ने उसका प्रणय निवेदन ठुकरा दिया है तो वह आग-बबूला हो गया। “हूंह!” वह मन-ही-मन विचार कर बोला, “एक साधारण-सी दासी को किस बात का घमंड है कि उसने एक सेनापति के प्रेम को ठुकरा दिया। मैं उसे देख लूंगा।”

एक दिन कीचक ने अपनी बहन से कहा, “सुदेष्णा! तनिक सैरंध्री को मेरे पास भेज देना, कुछ विशेष कार्य है।”

पहले तो द्रौपदी झिझकी, फिर रानी के आदेश को मानकर चुपचाप कीचक के पास चली गई। कीचक ने देखते ही द्रौपदी को बांहों में भर लेना चाहा। द्रौपदी कीचक का यह व्यवहार देखकर विस्मित रह गई। उसने कीचक को एक ओर धकेल दिया और बोली, “तुम्हें एक बेसहारा नारी पर अत्याचार करते लाज नहीं आई? मैं तुम्हारी इन हरकतों का वह मजा चखाऊंगी कि जीवन भर याद रखोगे।”

उत्तर में कीचक अट्टहास कर उठा।

द्रौपदी ने कीचक का जी भरकर अपमान किया। लाज व शर्म के मारे द्रौपदी की आंखों से आंसू बह निकले। वह अपने दुर्भाग्य पर जोर-जोर से रोने लगी। फिर वह सीधे राजा विराट के कक्ष में जा पहुंची। राजा विराट उस समय युधिष्ठिर के साथ जुए का खेल खेलने में निमग्न थे। द्रौपदी ने पास जाकर सुबकते हुए कीचक की एक-एक हरकत बयान कर दी।

राजा विराट ने सुनकर भी ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह कीचक के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठा सकता था। और युधिष्ठिर? उसका तो रोयां-रोयां क्रोध से सुलग उठा, पर वह दांत

भींचकर रह गया। इन परिस्थितियों में वह खुलकर द्रौपदी की न तो कोई सहायता कर सकता था और न समर्थन। उसने द्रौपदी की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा और पूर्ववत् खेलता रहा। बोला, “चाल संभालिए राजन!”

द्रौपदी दोनों को कुछ न बोलते देखकर क्षुब्ध हो गई। वह उसी समय रोती-कलपती भीम के पास पहुंची और बाली, “कीचक मेरा अपमान करने पर तुला है और कोई भी मेरी सहायता करने को तैयार नहीं। विराट की बात तो जाने दो, युधिष्ठिर ने भी मेरी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। अब तुम्हीं कुछ करो।”

भीम का कसरती शरीर द्रौपदी की बात सुनकर क्रोध से एकदम दुहरा हो गया। वह बोला, “तुम चिंता न करो पांचाली! मैं कीचक को इस करनी का आनंद चखाऊंगा। बस, तुम्हें थोड़ी सहायता करनी पड़ेगी।”

“कैसी सहायता?”

“तुम कीचक को आधी रात के समय एकांत में नृत्यशाला में बुलाओ, शेष कार्य में निपटा दूंगा।”

द्रौपदी ने भीम की बात मान ली। बाद में जब कीचक उससे दुबारा मिला तो द्रौपदी ने उससे सद्‌व्यवहार किया। द्रौपदी का बदला रूप देखकर कीचक की बांछें खिल गईं। बोला, “तो तुमने मेरा प्रणय निवेदन स्वीकार कर लिया?”

“हां!” द्रौपदी ने कहा, “दिन में इस प्रकार खुलेआम मिलना-जुलना ठीक नहीं। कोई देख लेगा तो क्या कहेगा। ऐसा करो, आज आधी रात को नृत्यशाला में मिलना, वहीं बातें करेंगे।”

कीचक यही तो चाहता था। उसने कहा, “अवश्य आऊंगा सैरंध्री!”

आधी रात के समय कीचक नृत्यशाला पहुंचा। नृत्यशाला में अंधेरा था और एकांत था। उसने एक बार सैरंध्री की खोज में इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई, किंतु सैरंध्री का कहीं नामो-निशान

नहीं था। द्रौपदी की बजाय वहां छिपा बैठा था भीम। भीम ने अवसर पाते ही कीचक को अपनी बांहों में भर लिया। अकस्मात् आक्रमण से कीचक को संभलने का अवसर भी नहीं मिला और भीम ने धरती पर पटक-पटककर कीचक को मार डाला। कीचक की लाश मांस के लोथड़े में बदल गई थी।

दूसरे दिन जब कीचक की लाश मिली तो उसे कोई पहचान भी नहीं सका। सारे मत्स्य नगर में तहलका मच गया।

राजा विराट को कीचक की दर्दनाक मौत का पता चला तो वे एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। बोले, “यह तो किसी मानव का काम नहीं। कीचक को मारने वाला अवश्य कोई राक्षस होगा।”

“राक्षस ने नहीं।” द्रौपदी ने आगे बढ़कर ऐलान किया, “इसे मेरे गंधर्व पति ने मारा है। इसने मुझ पर कुदृष्टि डाली थी। मुझ पर जो कोई नीयत बिगाड़ेगा, उसकी यही दशा होगी।”

अब तो द्रौपदी को सब ऐसे देखने लगे, जैसे वह अलौकिक शक्तियों की स्वामिनी हो। किसी की हिम्मत न हुई कि वह द्रौपदी का विरोध कर सके या भर्त्सना कर सके।

कीचक के अंतिम संस्कार से निपटकर राजा विराट व रानी सुदेष्णा महल लौटे तो सैरंध्री का डर उनके मन में समाया हुआ था।

सुदेष्णा ने द्रौपदी को बुलाकर कहा, “सैरंध्री! हम तुम्हारी सेवा से भर गए। अब तुम हमारे यहां से चली जाओ, तुम्हारे कारण मेरे भाई को जान से हाथ धोना पड़ा, कल हो सकता है कि किसी और को मरना पड़े। तुम्हारे गंधर्व पति का कोई ठिकाना नहीं, वह कब किसको संसार से उठा दे। बेहतर यही है कि तुम महल से चली जाओ।”

द्रौपदी भला कहां जाती! अज्ञातवास में कुछ ही दिन शेष रह गए थे। वह बोली, “महारानी! क्षुब्ध न हों, कीचक का मन पापी था, भला मेरा गंधर्व पति उसकी करतूतों को कैसे अनदेखा

कर देता? अगर कीचक मेरा सम्मान करता तो मेरे पति ने उसे हाथ भी न लगाया होता। मुझ बेसहारा नारी पर कृपा कीजिए, महल से मत निकालिए। अधिक नहीं तो मात्र तेरह दिन रहने की और मोहलत दीजिए, फिर मैं स्वयं ही चली जाऊंगी।”

“मात्र तेरह दिन!” रानी सुदेष्णा ने आश्चर्य से पूछा, “मात्र तेरह दिन ही क्यों?”

“यह मैं अभी नहीं बता सकती। बस, इतना जान लीजिए कि एक विशेष प्रयोजन से ही मैं यहां ठहरी हुई हूं।”

कुछ सोचकर सुदेष्णा बोली, “ठीक है मैं तुम्हें तेरह दिन महल में रहने की अनुमति देती हूं, किंतु अपने गंधर्व पति को महल से दूर ही रखना।”

द्रौपदी मुस्कराकर बोली, “वे महल के समीप कभी नहीं आएंगे।”

□□

हस्तिनापुर में दुर्योधन अशांत था।

जैसे-जैसे पांडवों के अज्ञातवास का समय समाप्ति की ओर बढ़ रहा था, वैसे-वैसे दुर्योधन की चिंता बढ़ती जा रही थी। अगर पांडव सकुशल वापस आ गए तो कौरवों के लिए वे हमेशा के लिए संकट बने रहेंगे। दुर्योधन किसी प्रकार उनका पता लगाकर उनका अहित करने को कटिबद्ध था, किंतु पांडवों का कहीं पता नहीं था। वे अज्ञातवास के दौरान न जाने विश्व के किस कोने में छिप गए थे।

दुर्योधन ने पांडवों की खोज में चारों ओर गुप्तचर भेजे, किंतु गुप्तचर भी निराश होकर वापस लौट आए।

तभी दुर्योधन को मत्स्य देश से यह समाचार मिला कि महाराज विराट का सेनापति कीचक मारा गया। उसे किसी गंधर्व ने इतनी बुरी प्रकार मारा था कि उसकी लाश को पहचानना भी कठिन हो गया था। दुर्योधन यह सुनकर चिंता में पड़ गया कि कीचक को मारने वाला कौन हो

सकता है? कीचक को केवल दो ही प्राणी मार सकते थे—बलराम और भीम। बलराम को क्या पड़ी थी कि वह कीचक को मारने जाता, रह गया भीम तो भीम द्वारा यह संभव था कि वह कीचक की हत्या करे, क्योंकि समाचार में बताया गया था कि कीचक को मारने का कारण थी—सैरंध्री नामक दासी, जो महल में रानी की सेवा में नियुक्त थी, यह गंधर्व उसी का पति था। दुर्योधन को शक हुआ कि हो-न-हो यह सैरंध्री कोई और नहीं, द्रौपदी है। अगर वे दोनों महल में हैं तो निश्चित रूप से शेष चारों भाई भी उसी महल में होंगे। अगर किसी प्रकार उन्हें पहचान लिया जाए तो उसका काम सरलता से पूरा हो सकता था यानी शर्त के अनुसार पांडवों को फिर से तेरह वर्षों का वनवास भोगने को बाध्य होना पड़ेगा।

दुर्योधन ने शीघ्र समर्थकों का बुलाया और मत्स्य देश की नवीनतम सूचनाओं की जानकारी देकर कहा, “अवसर अच्छा है, हमें इसी समय चलकर मत्स्य देश पर आक्रमण कर देना चाहिए और पांडवों की पोल खोल देनी चाहिए।”

कर्ण ने समर्थन किया, “हां, यही ठीक है। हमें दो दिशाओं से मत्स्य देश पर आक्रमण करना चाहिए, कीचक के मर जाने के बाद राजा विराट हमारा मुकाबला नहीं कर सकेंगे। ऐसी अवस्था में पांडवों का क्षत्रिय रक्त अवश्य उबाल मारेगा और वे विराट की सहायता करने अवश्य आगे बढ़ेंगे। बस, तभी हम उन्हें पहचान लेंगे और उन्हें फिर से वनवास के लिए विवश कर देंगे।”

यह बात भीष्म, कृपाचार्य आदि को पसंद न आई। उन्होंने कौरवों को बहुत समझाया कि इस वैर-भाव में कुछ नहीं रखा, तुम लोगों के पास सब कुछ है, पांडवों को भी वनवास पूरा करके अपने राज्य में वापस लौटने दो, लेकिन वृद्धों की राय को अनसुना कर दिया। दुर्योधन पांडवों को पुनः इंद्रप्रस्थ में प्रतिष्ठित नहीं होने देना चाहता था।

कौरवों की सहायता के लिए त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा भी आया, जो राजा विराट से शत्रुता रखता था। कीचक ने अपने समय में राजा सुशर्मा को बहुत दुःख पहुंचाया था, इसलिए

वह इस अवसर से लाभ उठाना चाहता था।

तय किया गया कि मत्स्य देश पर उत्तर व दक्षिण दो दिशाओं से आक्रमण किया जाए। पहले त्रिगर्त के राजा सुशर्मा दक्षिण से मत्स्य देश पर आक्रमण करेंगे और उत्तर से राजा विराट के पशु-धन को लूट लेंगे।”

□□

राजा विराट को सूचना मिली तो वे अत्यंत घबरा गए। कीचक जैसा सेनापति खोकर तो वे एकदम निरुपाय हो गए थे। अब वे कौरवों और त्रिगर्त की सेना का कैसे मुकाबला करेंगे? विराट का एक पुत्र राजकुमार उत्तर था, जो युद्ध-कला से सर्वथा अनभिज्ञ था। राजकुमार उत्तर के अलावा राजा की एक पुत्री राजकुमारी उत्तरा थी।

राजा विराट चिंता से घिरे अपने कक्ष में बैठे थे। पास ही कंक बैठा था। कंक से राजा की चिंता देखी नहीं गई, वह बोला, “महाराज! कीचक नहीं है तो क्या हुआ, अगर आप धैर्य खो देंगे तो काम कैसे चलेगा। आप चाहें तो अभी भी बड़ी आसानी से शत्रुओं का मुकाबला किया जा सकता है।”

“वह कैसे?”

“देखिए! आपके महल में एक रसोइया काम करता है, बल्लभ। उसे आप मात्र साधारण रसोइया ही मत समझिए, वह जितने बढ़िया व्यंजन बना सकता है, उतनी ही खूबी से दुश्मनों को पछाड़ भी सकता है। फिर आपके अस्तबल में एक ग्रंथिक नामक पशु पालक भी है, वह भी एक योद्धा ही है। गोशाला में नियुक्त तंतिपाल नामक नया ग्वाला भी एक लड़का है। अगर आप आदेश दें तो ये लोग शत्रुओं का बहादुरी से मुकाबला कर सकते हैं और महाराज! अगर आपने मुझे भी अनुमति दी तो मैं भी दो-चार हाथ दिखा सकता हूं।”

राजा विराट ने आश्चर्य से कंक को देखा, “यह क्या कहते हो कंक! कहां त्रिगर्त और कौरवों की सुशिक्षित सेना और कहां तुम मामूली से लोग! भला तुम लोग उनका कैसे मुकाबला करोगे?”

कंक ने कहा, “दरअसल, हम कभी पांडवों के यहां भी काम कर चुके हैं। भला पांडवों की वीरता से कौन अनभिज्ञ है। हम पांडवों से शौकिया थोड़ी-बहुत युद्ध-कला सीख चुके हैं। महाराज! आप अवसर दें तो हम अपनी युद्ध-कला का परिचय दे सकते हैं।”

राजा विराट को भला क्या आपत्ति हो सकती थी। उसने कंक को युद्ध में भाग लेने की अनुमति दे दी।

□□

त्रिगर्त के राजा सुशर्मा ने अपनी सेना के साथ एक ओर से मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया। दूसरी ओर से दुर्योधन अपने साथियों—भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण एवं दुःशासन आदि के साथ कूच करने को तैयार खड़ा था।

सुशर्मा ने उत्साह से मत्स्य देश में प्रवेश किया। कीचक का डर तो रहा नहीं, इसलिए आनन-फानन में उसने राजा विराट की सेना के पैर उखाड़ दिए और राजा विराट को बंदी बनाकर अपने रथ पर ले चला।

तभी पांडव सुशर्मा की सेना से टक्कर लेने पहुंचे। भीम तो इतना आवेश में था कि वह एक वृक्ष को ही जड़ सहित उखाड़कर शत्रु सेना पर धावा बोलना चाहता था, किंतु युधिष्ठिर ने उसे ऐसा करने से मना कर दिया, क्योंकि डर था कि इस कारनामे से कहीं भीम को पहचान न लिया जाए।

इसलिए भीम धनुष और बाण लेकर ही सुशर्मा के पीछे दौड़ा। धनुष-बाण चलाने का भीम को कोई विशेष अभ्यास नहीं था, लेकिन उसने इस कुशलता से सुशर्मा पर धावा बोल दिया कि

सुशर्मा को भीम के आगे हार मानने को विवश होना पड़ा। भीम ने राजा विराट को स्वतंत्र करा दिया और सुशर्मा को बंदी बना लिया। सुशर्मा अपने कृत्य से अत्यंत शर्मिदा हुआ और उसने भीम से अकारण आक्रमण करने की क्षमा मांग ली।

सुशर्मा को पश्चाताप करते देख युधिष्ठिर का हृदय पसीज गया। उसने भीम को आदेश दिया, “इन्हें ससम्मान छोड़ दो।”

सुशर्मा स्वतंत्र हो गया तो युधिष्ठिर ने उससे कहा, “आप अपने देश जा सकते हैं। बस, ध्यान रहे कि भविष्य में मत्स्य देश की ओर आंख कभी न उठाएं।”

सुशर्मा ने हामी भर ली और अपनी सेना के साथ वापस चला गया।

दूसरी ओर सुशर्मा की हार से बेखबर कौरव मत्स्य देश का पशु-धन लूटने को आगे बढ़े। उन्होंने देश भर का पशु-धन एकत्र किया और गाय-बैल हांक ले चले। देश की रक्षा करने को कोई उपस्थित नहीं था, क्योंकि राजा विराट तो सुशर्मा से लड़ने निकल गए थे और उनके साथ भीम व युधिष्ठिर भी जा चुके थे।

महल में उपस्थित था केवल राजकुमार उत्तर। जब उसके पास यह समाचार पहुंचा कि दूसरे मोर्चे पर देश के पशु-धन को लूटा जा रहा है तो उसके हाथ-पांव फूल गए। वह अभी नौजवान था, उसका अधिक समय महल में सुंदर नारियों के बीच व्यतीत होता था। वह हमेशा उन नारियों के सामने अपनी बहादुरी की डींगें हांका करता था।

दूसरे मोर्चे पर जो आक्रमण हुआ था, उससे वह डर तो बहुत गया था, किंतु नारियों के सामने अपनी कायरता की पोल नहीं खोलना चाहता था, इसलिए तेज स्वर में बोला, “शत्रु की हिम्मत कैसे हुई हमारे पशु-धन को लूटने की। ठीक है, मैं उनका मुकाबला करूंगा। लाओ, मेरे हथियार लाओ, कवच लाओ!” फिर कुछ सोचकर बोला, “पर जाऊं कैसे? मेरा रथ कौन चलाएगा। काश! मेरे पास कोई दक्ष सारथी होता, फिर मैं शत्रु-सेना में धड़धड़ाता घुस पड़ता।

मेरी वीरता देखकर लोगों को यकीन हो जाता कि मैं अर्जुन से भी कम नहीं। उफ! मैं क्या करूँ? बिना सारथी के तो मेरा युद्ध भूमि में जाना असंभव है।”

वहीं पर अर्जुन वृहन्नला के वेश में खड़ा था। वह राजकुमार उत्तर की बड़ी-बड़ी बातें सुनकर मन-ही-मन मुस्करा रहा था। वह जानता था कि कौरवों से लड़ने का साहस इस लड़के में नहीं हो सकता, लेकिन वह स्वयं हर हालत में मत्स्य देश की रक्षा करना चाहता था। उसने चुपके से द्रौपदी के कान में कहा, “यह लड़का तो बातें बनाने में ही समय व्यतीत कर देगा और कौरव पशु-धन लेकर भाग निकलेंगे। तुम जाकर राजकुमार उत्तर को विश्वास दिलाओ कि वृहन्नला को रथ चलाने का खूब अभ्यास है। यह भी कह देना कि अर्जुन के रथ को कई बार चलाया है और एक बार खांडव वन में जब आग लग गई थी, तब रथ को तेज गति से भगाकर अर्जुन की जान बचाई थी। अगर यह तुम्हारी बात मान गया तो शायद कौरवों को मात दी जा सके।”

द्रौपदी ने उसी समय जाकर राजकुमार उत्तर से यह सब कह दिया। अब राजकुमार इनकार कैसे करता? इसलिए उसने वृहन्नला को बुलाकर कहा, “हूँSS। तो तुम उत्तम सारथी भी हो। बहुत खूब! तो देर किस बात की है? शीघ्रता से मुझे युद्धभूमि में ले चलो। मैं कौरवों को अच्छा सबक सिखाऊंगा और अपना पशु-धन भी वापस लाऊंगा।”

वृहन्नला ने पहले तो बड़ी आनाकानी की और कहा, “मैं भला क्या रथ चला सकूंगी। मैं तो लड़कियों को गाना और नृत्य सिखाती हूँ। युद्ध भूमि में रथ चलाना मेरे वश का नहीं।”

“झूठ मत बोलो वृहन्नला!” राजकुमार उत्तर बोला, “मुझे सैरंध्री ने तुम्हारे बारे में सब कुछ बता दिया है। अब बहाने बनाने से काम नहीं चलेगा, तुम्हें मेरे साथ चलना ही पड़ेगा। तत्काल युद्ध की पोशाक पहनो और मैं भी तैयार होता हूँ।”

इतना कहकर राजकुमार उत्तर ने हथियार ले लिए और कवच धारण कर लिया। उसका विश्वास था कि न तो वृहन्नला रथ की सारथी बनकर चल सकेगी और न ही वह युद्धभूमि में

जाने का कष्ट उठाएगी। फिर भी वृहन्नला से बोला, “जल्दी करो भई! तैयार हो जाओ, कहीं ऐसा न हो कि कौरव अपनी करतूतों में सफल हो जाएं।”

वृहन्नला यों सजने लगी, जैसे युद्धभूमि में जाने से बुरी प्रकार डर रही हो। उसने कवच आदि भी उल्टे-सीधे धारण कर लिए, ताकि कोई उसकी असलियत न भांप सके। वृहन्नला की हड़बड़ी और घबराहट से वहां खड़ी महिलाएं खूब हंस रह थीं और वृहन्नला का उपहास उड़ा रही थीं।

थोड़ी देर में ही राजकुमार उत्तर तथा वृहन्नला तैयार होकर बाहर निकले और रथ में सवार होकर युद्धभूमि की ओर चल पड़े। वृहन्नला को डर था कि राजकुमार उत्तर जैसा अनाड़ी लड़का युद्ध कैसे लड़ सकेगा, इसलिए वह उसे बार-बार समझाती थी कि युद्ध में कैसे व्यवहार करना चाहिए। राजकुमार उत्तर ने ऊंची हांफते हुए कहा, “घबराओ मत वृहन्नला! बस, तुम केवल होशियारी से रथ का संचालन करो। तुम तो अर्जुन की सारथी रह चुकी हो, इसलिए डरने की आवश्यकता नहीं। बस, एक बार मैं युद्ध भूमि में पहुंच जाऊं, फिर देखना मैं कैसे कौरवों को परास्त करता हूं और उन्हें बंदी बनाकर राजधानी लाता हूं। जब महाराज विराट को मेरी वीरता का पता चलेगा तो कितना प्रसन्न होंगे अपने पुत्र की सफलता पर।”

इन्हीं बातों के बीच रथ युद्धभूमि के निकट आ पहुंचा। राजकुमार उत्तर की दृष्टि दूर खड़ी कौरवों की सेना पर गई तो उसकी सारी वीरता हवा हो गई। सेना के आगे दुर्योधन तो खड़ा ही था, उसके साथ कर्ण, भीष्म, दुःशासन व कृपाचार्य जैसे वीर खड़े थे। घबराहट के मारे राजकुमार उत्तर को पसीना आ गया। वह कांपते स्वर में बोला, “अरे वृहन्नला! इतनी तेजी से तो रथ मत चलाओ। बस, रथ यहीं रोक दो। मुझे थोड़ा सोचने दो कि इनके साथ कैसे मोर्चेबंदी करनी चाहिए।”

वृहन्नला को समझते देर न लगी कि राजकुमार उत्तर डर गया है। यहां तक आकर राजकुमार उत्तर ने पग पीछे खींच लिए तो मत्स्य देश की रक्षा करना कठिन हो जाएगा,

इसलिए उसने राजकुमार उत्तर की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और रथ को गति के साथ आगे बढ़ाता चला गया। राजकुमार उत्तर वृहन्नला के इस दुस्साहस को देखकर तो और भी बौखला गया। बोला, “मैं कहता हूँ कि रथ रोक दो। क्या तुम्हें मेरा आदेश सुनाई नहीं देता?”

“घबराओ मत राजकुमार!” वृहन्नला ने उत्तर दिया, “मुझे रथ को गति के साथ सेना के बीच ले जाने दो, फिर देखना कि कौरवों की सेना में कैसे भगदड़ मच जाती है। सच्चाई तो यह है कि एक बार मैं रथ की लगाम पकड़ लेती हूँ तो रथ को लक्ष्य पर ही पहुंचाकर दम लेती हूँ। आपने मुझे कौरवों की सेना तक जाने का आदेश दिया, अब मेरा रथ वहीं जाकर रुकेगा।”

राजकुमार उत्तर का सारा शरीर पसीने से भीग गया। वह बोला, “नहीं-नहीं, तुम यहीं रथ रोक दो। सुनो, अचानक मेरी तबीयत खराब हो गई है। मैं शायद कौरवों के साथ न लड़ सकूँ। बेहतर यही है कि तुम रथ को राजधानी वापस ले चलो। तुम्हें तो पता है कि साथ में हम सेना भी नहीं लाए हैं। सारी सेना राजा विराट सुशर्मा से मुकाबला करने को लेकर चले गए हैं।”

“अब तो वापस चलना नामुमकिन है। हम लड़ने आए हैं, लड़कर ही रहेंगे।” वृहन्नला ने दृढ़ स्वर में कहा, “पर आप इस कदर घबरा क्यों रहे हैं। अभी तो लड़ाई भी शुरू नहीं हुई है और आप व्यर्थ चिंतित हो रहे हैं। तनिक यह तो सोचिए कि आप बिना लड़े यहां से वापस चले गए तो महल की नारियां आपका कितना उपहास उड़ाएंगी। अब तो हमें पशु-धन को शत्रुओं के हाथ से छुड़ाकर ही राजधानी चलना होगा।”

“हंसने दो महिलाओं को। पशु-धन की चिंता छोड़ो। बस, यहां से भाग चलो। कौरवों को जीत लेने दो मेरा देश, मुझे नहीं लड़ना इनके साथ। रथ मोड़ दो।”

किंतु वृहन्नला ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और वह रथ तेजी से आगे बढ़ाती रही। राजकुमार उत्तर ने जब देखा कि वृहन्नला रथ को कौरवों की सेना के बीच ले जाकर ही मानेगी तो उसने आंखें बंद करके रथ से छलांग लगा दी और राजधानी की ओर दौड़ पड़ा।

विवश होकर अर्जुन को रथ रोकना पड़ा। वह रथ से कूदा और राजकुमार उत्तर के पीछे दौड़ा। उसने दो ही छलांगों में राजकुमार उत्तर को जा पकड़ा। राजकुमार उत्तर गिड़गिड़ाता रहा, किंतु अर्जुन ने उसे खींचकर रथ पर चढ़ा लिया और रथ फिर दौड़ा दिया। राजकुमार उत्तर समझ गया कि वृहन्नला से मुक्ति पाना असंभव है। वृहन्नला ने उसे अभयदान देकर कहा, “सुनो राजकुमार! तुम निश्चित होकर रथ में बैठो। तुम्हें लड़ने की आवश्यकता नहीं है, मैं अकेले ही कौरवों की सेना से मुकाबला कर लूंगी।”

राजकुमार उत्तर की जान-में-जान आई, पर जब-जब उसकी आंखों के सामने कौरव सेना के वीर कौंध जाते, वह बुरी प्रकार कांप उठता, “इस लड़के को भरोसा नहीं।” अर्जुन ने सोचा, “मैं अकेले ही कौरवों का मुकाबला करूंगा।” इसके लिए आवश्यकता थी दिव्यास्त्रों की और दिव्यास्त्रों की गठरी रखी हुई थी एक वृक्ष की डाल पर। वृहन्नला ने अपना रथ उस वृक्ष की ओर दौड़ा दिया।

वृक्ष आने पर वृहन्नला ने राजकुमार उत्तर से कहा, “राजकुमार! इस वृक्ष की ऊंची डाल पर जो गठरी रखी हुई है, उसे उतारकर लाओ।”

राजकुमार ने वृक्ष की ओर देखकर कहा, “यह क्या कह रही हो वृहन्नला! भला एक राजकुमार भी कभी वृक्ष पर चढ़ता है। और फिर मैंने सुना है, इस गठरी में किसी की लाश पड़ी हुई है। मैं तो गठरी को हाथ भी नहीं लगाऊंगा।”

“नहीं-नहीं! यह लाश नहीं है राजकुमार!” वृहन्नला ने कहा, “सच तो यह है कि इस गठरी में पांडवों के दिव्यास्त्र पड़े हैं। बस, एक बार ये हाथ में आ गए तो फिर कौरवों को मात देना सरल हो जाएगा। शीघ्रता से पेड़ पर चढ़ो और गठरी उतार लाओ।”

राजकुमार उत्तर विवश होकर वृक्ष पर चढ़ा और गठरी नीचे उतार दी। वृहन्नला ने तत्काल गठरी खोली और दिव्यास्त्र निकाल लिए। उसने गांडीव को अपने कंधे पर लटका लिया और कहा, “यह गांडीव ऐसा हथियार है कि इसके सामने शत्रुओं के बड़े-बड़े अस्त्र फीके पड़

जाएंगे। शेष हथियार भी देवताओं ने प्रसन्न होकर पांडवों को दिए हैं। इनकी सहायता से हम शत्रुओं को शीघ्र ही परास्त कर देंगे।”

राजकुमार उत्तर हैरानी से कभी वृहन्नला को देख रहा था तो कभी उन दमकते-चमकते हुए अस्त्रों को। फिर बोला, “वृहन्नला! इन अस्त्रों को देखकर तो मुझे भी विश्वास हो रहा है कि हमारी हार नहीं हो सकती। सच तो यह है कि मेरी कायरता भी दूर हो गई है, पर तुम रथ और हथियार दोनों एक साथ कैसे चलाओगी? ठीक है, मैं रथ चलाऊंगा और तुम हथियार चलाना, क्योंकि अर्जुन के सान्निध्य में रहकर तुम इनका संचालन सीख चुकी हो।”

अर्जुन ने स्वीकार कर लिया। उसने अपने लहराते बालों की चोटी बांध ली और हथियारों से लैस होकर रथ में जम गया।

राजकुमार ने रथ के घोड़ों पर चाबुक मारते हुए कहा, “अब यह रथ कौरवों की सेना के मध्य में जाकर रोकूंगा।”

वृहन्नला ने प्रसन्न होकर अपना शंक फूँका, जिसकी गंभीर ध्वनि से सारा वातावरण गूँज उठा। शंख की तेज ध्वनि से राजकुमार घबरा गया और डर के मारे कांपने लगा।

वृहन्नला ने कहा, “अरे, तुम क्यों कांपने लगे। यह तो शत्रुओं को डराने के लिए बजाया था।”

“उफ! कितना भयंकर स्वर है इस शंख का। इसके स्वर से तो दशों दिशाएं गूँज उठीं और पृथ्वी में कंपन आ गया।”

“बहादुर बनो राजकुमार!” वृहन्नला ने कहा, “रथ को ठीक से चलाओ और हृदय को सुदृढ़ कर लो। मैं शत्रुओं को डराने के लिए फिर शंख बजा रही हूँ।”

अर्जुन के शंख की ध्वनि एक बार फिर दिग्-दिगंत तक फैल गई। राजकुमार उत्तर एक बार फिर कांप उठा, पर उसने घोड़ों की लगाम से अपनी पकड़ ढीली नहीं होने दी।

शंख की तेज ध्वनि कौरवों की सेना में भी गूंजती हुई पहुंच चुकी थी। द्रोणाचार्य ने तत्काल शंख की ध्वनि पहचान ली। वे बोले, “अरे, यह तो निःसंदेह अर्जुन के शंख की ध्वनि है। इसका अर्थ है, वह कहीं आस-पास है। वह हमसे मुकाबला करने आ रहा है। दुर्योधन! उससे लड़ने को तैयार हो जाओ।”

दुर्योधन प्रसन्न होकर बोला, “अगर वह लड़ने आ रहा है तो हमने बाजी जीत ली। वे लोग वनवास के बाद एक वर्ष के अज्ञातवास के लिए वचनबद्ध थे। अभी उनके अज्ञातवास का समय पूरा नहीं हुआ है। अगर वह हमसे लड़ने आया तो पहचान लिया जाएगा और पांडवों को पुनः वनवास के लिए निकलना पड़ेगा। हम कोई जान-बूझकर तो पांडवों को खोजने आए नहीं थे। हमें तो पता भी नहीं था कि पांडव मत्स्य देश में रहते हैं। हम तो त्रिगर्त नरेश की सहायता करने आए हैं और उसकी लूटी हुई गायों को वापस लेने आए हैं। अब हमें लड़ने की क्या आवश्यकता, पांडवों ने तो प्रकट होकर बाजी गंवा दी। आपका विचार क्या है पितामह?”

“इतने उतावले मत बनो दुर्योधन!” भीष्म बोले, “ज्योतिष की गणना कहती है कि उन्हें अज्ञातवास पूरा किए एक सप्ताह बीत चुका है।”

कर्ण ने दुर्योधन के विचारों का समर्थन किया। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने कहा, “हम यहां पांडवों से लड़ने नहीं आए हैं, कुछ भी हो पांडवों ने अपने वचन का पालन किया है। उनसे लड़ने की क्या आवश्यकता?”

भीष्म ने उत्तर दिया, “जब लड़ने आए हो तो बेहतर यही है कि हम सब मिलकर अर्जुन का मुकाबला करें।”

दुर्योधन मौन रहा। वह नहीं चाहता था कि अर्जुन के दिव्यास्त्रों का सामना करे। उसका अब भी यही विचार था कि पांडव अज्ञातवास को पूर्ण किए बिना ही प्रकट हुए हैं, इसलिए उन्हें पुनः अज्ञातवास के लिए प्रस्थान करना चाहिए।”

तब तक अर्जुन का रथ कौरवों की सेना से कुछ दूर रह गया था। अर्जुन ने दुर्योधन आदि को विचारों में तल्लीन पाया तो अपना रथ एक जगह रोक दिया। उसने दुर्योधन की ओर अपना ध्यान केंद्रित कर लिया। वह देखना चाहता था कि दुर्योधन कौन-सा कदम उठाता है।

कुछ देर तक शांति छाई रही, फिर अर्जुन ने ही अपनी ओर से पहल की। उसने धनुष से तीर छोड़े, कुछ तो द्रोणाचार्य के कानों के पास से निकल गए और कुछ उनके चरणों में जा गिरे। द्रोणाचार्य प्रसन्न होकर बोले, “कितना महान धनुर्धारी है अर्जुन! उसने कुछ तीरों से मेरे कानों में संवाद पहुंचाया है और कुछ तीरों से मेरे चरणों में अपना प्रणाम भेजा है।”

“क्या संवाद भेजा है अर्जुन ने?” दुर्योधन ने पूछा।

“वह कहता है कि जब तक गुरु द्रोणाचार्य बाण नहीं चलाएंगे, तब तक अर्जुन युद्ध आरंभ नहीं करेगा।” द्रोणाचार्य बोले।

इतना कहकर द्रोणाचार्य ने तीर चलाकर अर्जुन को युद्ध आरंभ करने की अनुमति प्रदान कर दी। अर्जुन ने तीर चलाकर द्रोणाचार्य के तीर के वारों को बचा लिया। दोनों ओर से अस्त्रों का आदान-प्रदान आरंभ हो गया।

द्रोणाचार्य के अलावा कृपाचार्य और भीष्म भी अर्जुन की युद्ध-कला देखकर प्रभावित हो रहे थे, पर वे कौरव-पक्ष में थे। इसलिए अर्जुन के विरुद्ध हथियार चलाने को विवश थे, लेकिन उनके वारों में न तो घृणा थी और न उन्माद। बस, कलात्मक युद्ध का प्रदर्शन मात्र था। हां, कर्ण एवं दुर्योधन के हर वार से शत्रुता झलक रही थी।

लेकिन अर्जुन के दिव्यास्त्रों के सामने कोई भी टिक नहीं सका। कर्ण के अस्त्र निरर्थक साबित हुए और दुर्योधन ने वहां से भागने में ही अपनी भलाई समझी। यही अवसर था कि अर्जुन ने अपने मंत्र-सिद्ध अस्त्रों के बल से शत्रु-पक्ष को जबरदस्त मात दे दी।

अर्जुन ने राजकुमार उत्तर से कहा, “राजकुमार! हम जीत गए, युद्ध समाप्त हो गया। तुम यहां शत्रुओं के शरीर से कुछ वस्त्र उतारकर ले चलो, ताकि महल में जीत की निशानी दिखाकर नारियों की वाह-वाही लूट सको।”

राजकुमार उत्तर ने ऐसा ही किया। फिर अपना पशु-धन लेकर वे राजधानी की ओर चल पड़े।

वापसी में अर्जुन ने अपने हथियार पुनः उसी वृक्ष पर छिपा दिए, जहां पहले रखे थे।

महल के निकट आने पर अर्जुन से राजकुमार उत्तर ने कहा, “हे पार्थ! क्षमा कर दीजिए, मुझे पता नहीं था कि वीर पांडवों ने द्रौपदी के साथ बदले हुए वेश में हमारे महल में ही आश्रय लिया है।”

“सुनो राजकुमार! ध्यान रहे हमारी असलियत किसी पर प्रकट मत करना। सबको यही बताना कि युद्ध तुम्हीं ने अकेले जीता है।”

□□

मत्स्य देश में समाचार पहुंच चुका था कि कौरवों की सेना परास्त हो चुकी है, राजकुमार उत्तर पशु-धन लेकर और विजयी होकर लौट रहे हैं। पुत्र की कीर्ति-गाथा सुनकर राजा विराट की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही।

राजा विराट ने सारे राज्य में हर्ष मनाने का आदेश दे दिया और झूमते हुए बोले, “मेरे पुत्र ने तो कमाल कर दिया। कौरवों की सेना के साथ बड़े-बड़े योद्धा आए थे, पर उन सबको अकेले मेरे पुत्र ने परास्त कर दिया।”

पास ही युधिष्ठिर खड़ा था। वह बोला, “हां, जिसके रथ का सारथी वृहन्नला हो, वह भला सफल कैसे नहीं होगा!”

युधिष्ठिर की यह उक्ति राजा को पसंद नहीं आई, किंतु उस समय वे पुत्र की सफलता से इस कदर मदहोश थे कि युधिष्ठिर की उक्ति की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

सारे नगर में उत्सव का सा वातावरण छा गया था। जब राजकुमार उत्तर अपने रथ पर सवार नगर की सड़कों से निकला तो जनता में उसकी जय-जयकार मच गई, सड़कों के दोनों ओर लोग उसका स्वागत करने को उमड़ पड़े।

महल में राजा विराट अपने विजयी पुत्र का स्वागत करने के लिए प्रतीक्षा में थे। समय बिताने के लिए वे अनमने भाव से युधिष्ठिर से जुए का खेल खेल रहे थे। खेल-खेल में बार-बार अपने पुत्र की प्रशंसा के पुल बांध रहे थे। राजा विराट की हर प्रशंसा के उत्तर में युधिष्ठिर वृहन्नला की प्रशंसा करने से कभी नहीं चूकते। राजा विराट से यह सहा नहीं गया कि युधिष्ठिर वृहन्नला की प्रशंसा तो कर रहा है, पर राजकुमार उत्तर की प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं बोल रहा है। उनके क्रोध की सीमा नहीं रही। उन्होंने जुए की एक कौड़ी उठाकर युधिष्ठिर पर दे मारी और बोले, “बंद करो वृहन्नला की रट! क्या राजकुमार उत्तर की वीरता का तुम्हारी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं?”

कौड़ी युधिष्ठिर के सिर में जा लगी और वहां से रक्त बहने लगा। द्रौपदी ने ज्यों देखा तो वह दौड़कर पास पहुंची और वस्त्र से रक्त पोंछने लगी, ताकि धरती पर रक्त की एक भी बूंद न गिरे, क्योंकि युधिष्ठिर को वर प्राप्त था कि जो भी युधिष्ठिर का रक्त धरती पर बहाएगा, वह मारा जाएगा।

तभी राजकुमार उत्तर ने कक्ष में प्रवेश किया। विराट ने आगे बढ़कर पुत्र को आलिंगन में ले लिया, लेकिन राजकुमार उत्तर ने युधिष्ठिर के सिर से रक्त बहते देखा तो उसका सारा उत्साह जाता रहा। उसने व्याकुल स्वर में पूछा, ‘अरे! इनके सिर में चोट कैसे लगी?’

“वत्स!” राजा विराट ने उत्तर दिया, “कंक को मैंने ही दंड दिया है। इसे सबक सिखाना आवश्यक था।”

राजकुमार उत्तर को यह अच्छा नहीं लगा। वह पांडवों की असलियत जान चुका था, पर अर्जुन की निषेधाज्ञा के कारण वह भेद नहीं खोल सकता था। बस, इतना ही कहा, “राजन! एक ब्राह्मण का रक्त बहाकर आपने अच्छा नहीं किया। कहीं ऐसा न हो कि ब्राह्मण की हाय से हमारा अकल्याण हो।”

राजा विराट ने पुत्र को प्रसन्न करने के लिए युधिष्ठिर से क्षमा मांगी और उसके घाव पर पट्टी बांध दी।

युधिष्ठिर ने धीरे से कहा, “आप राजा हैं, हम चाकर। हमसे क्षमा मांगकर हमें शर्मिदा मत कीजिए, आपको दंड देने का पूरा अधिकार है।”

राजा विराट ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने पुत्र से पूछा, “हां, राजकुमार! बताओ, तुमने युद्ध कैसे जीता?”

“पिताजी! मुझे तो युद्ध में कुछ भी करना नहीं पड़ा। बस, युद्धभूमि में एक देवदूत आ पहुंचा और उसकी सहायता से मैंने कौरवों को परास्त कर दिया।”

“अच्छा!” राजा विराट आश्चर्य से बोले, “कहां है वह देवदूत? मुझे भी तो उसके दर्शन कराओ।”

“युद्ध की समाप्ति पर वह तत्काल लुप्त हो गया, लेकिन एकाध दिन में अवश्य फिर प्रकट हो जाएगा।”

□□

अज्ञातवास का एक वर्ष समाप्त हो चुका था।

पांडव अभी तक राजा विराट के महल में थे। विजयोत्सव के बाद उन्होंने तय कर लिया कि अब उन्हें प्रकट हो जाना चाहिए।

एक दिन उन्होंने अपने चोले बदल लिए और राजकीय ठाट-बाट से राज दरबार में पहुंचे। वहां राजसिंहासन पर युधिष्ठिर को बिठाया गया, पास ही सैरंध्री का रूप त्यागकर द्रौपदी भी बैठी थी। शेष भाई उनके अगल-बगल में बैठ गए।

थोड़ी देर के पश्चात् राजा विराट ने राजदरबार में प्रवेश किया। कंक को राजसिंहासन पर बैठा देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ—आश्चर्य से अधिक क्रोध। वे कोई अपशब्द बोलते, तभी अर्जुन अपने आसन से उठा और बोला, “महाराज! रुष्ट न हों। सिंहासन पर आसीन व्यक्ति सिंहासन के सर्वथा योग्य हैं। वे इंद्रप्रस्थ के नरेश धर्मराज युधिष्ठिर हैं।”

“धर्मराज युधिष्ठिर?” राजा विराट आश्चर्य से बोले, “अगर ये धर्मराज युधिष्ठिर हैं तो इनके शेष भाई कहां हैं, राजरानी द्रौपदी कहां है?”

अर्जुन ने बताया, “महाराज! हम सब यहीं हैं। हम विभिन्न वेशों में आपके यहां अज्ञातवास कर रहे थे। कंक, बल्लभ, वृहन्नला, ग्रंथिक और तंतपाल के रूप में हम पांचों भाई ही यहां पर नियुक्त थे और द्रौपदी सैरंध्री बनकर अंतःपुर में काम करती थी। मैं ही वह सहायक हूं, जो राजकुमार उत्तर के साथ सारथी बनकर युद्धभूमि गया था और कौरवों को परास्त किया था।”

वास्तविकता जानकर राजा विराट अत्यंत प्रसन्न हुए। वे बोले, “मेरा अहोभाग्य कि आप जैसे वीर पुरुष मेरे महल में रहे। आप लोगों के साथ जो अन्याय हुआ है, उससे मैं अनभिज्ञ नहीं हूं। अपना वैभव प्राप्त करने के लिए आपको मेरा जैसा भी सहयोग चाहिए, मैं देने के लिए तत्पर हूं, बल्कि मैं चाहता हूं कि आपका और मेरा संबंध अटूट रिश्ते में बदल जाए। अर्जुन ने हमारे राज्य की रक्षा के लिए जो कुछ किया है, उससे मैं उनका अनुग्रहित हूं। मैं चाहता हूं कि अर्जुन और राजकुमारी उत्तरा को विवाह-सूत्र में बांधकर अपने स्नेह संबंधों को अटूट कर दिया जाए। क्यों धर्मराज युधिष्ठिर! आपका क्या विचार है?”

“इसका उत्तर तो स्वयं अर्जुन ही दे सकता है।” युधिष्ठिर बोला।

अर्जुन कुछ सोचकर बोला, “मैं तो राजकुमारी उत्तरा से विवाह करने को असमर्थ हूँ—मैंने इस दृष्टि से कभी उसे देखा नहीं। अंतःपुर में रहते हुए मैंने उसे हमेशा अपनी पुत्री की प्रकार ही समझा है। हां, मेरी पत्नी सुभद्रा से उत्पन्न अभिमन्यु राजकुमारी उत्तरा के सर्वथा योग्य है। अगर आप चाहें तो उनका विवाह हो सकता है।”

भला राजा विराट को क्या आपत्ति हो सकती थी।

तत्काल विवाह की तैयारियां शुरू हो गईं। द्वारका से श्रीकृष्ण वर अभिमन्यु एवं बलराम, सात्यकि आदि यादव वीरों के साथ मत्स्य देश आ पहुंचे। विवाह-समारोह में सम्मिलित होने द्रुपद भी अपने पुत्र धृष्टद्युम्न के साथ पधारे। बदले की आग में जल रही शिखंडी भी आई। इसके अलावा युधिष्ठिर के अनेक मित्र नरेश भी पहुंचे, जिनमें कासिराज व शिविराज भी अपनी एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर आए थे।

उत्तरा व अभिमन्यु का विवाह बड़ी धूमधाम से संपन्न हो गया।

□□

विवाह के पश्चात् अगली योजनाओं पर विचार-विमर्श हुआ।

पांडवों के सभी मित्र नरेशों ने वादा किया कि ऐसे कठिन समय में वे पांडवों को हर प्रकार का सहयोग देने को तैयार हैं।

श्रीकृष्ण ने सबको संबोधित करते हुए कहा, “पांडवों के साथ जो अन्याय हुआ है, उसके बारे में आप सब भली-भांति परिचित हैं। जुए में धोखे से युधिष्ठिर को हराकर उनका सारा वैभव लूट लिया गया और पांडव अपना वचन पूरा करते हुए पिछले तेरह वर्षों से दर-दर की ठोकर खा रहे हैं। अब उन्होंने अपना वचन सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है तो उन्हें अपना राज-पाट और वैभव वापस मिलना चाहिए। इसके बाद ही हम कोई अगला कदम उठा सकते हैं। मेरा विचार है कि पहले हमें कौरवों के पास अपना दूत भेजना चाहिए। इस समय सारे राज्य

पर दुर्योधन का अधिकार है। हमारा दूत उससे दो ठूक शब्दों में आधा राज्य पांडवों को सौंपने का अनुरोध करेगा। दुर्योधन का उत्तर आने तक हम प्रतीक्षा करेंगे।”

“मुझे नहीं लगता कि दुर्योधन पांडवों का अनुरोध स्वीकार करेगा।” बलराम का विचार था, “कौरवों ने हमेशा पांडवों का अहित चाहा है और स्थिति सर्वथा उनके पक्ष में है, वे पांडवों को राज्य में घुसने भी नहीं देंगे।”

सात्यकि बोला, “अगर दुर्योधन ने हमारा अनुरोध ठुकरा दिया तो हम संघर्ष का रास्ता अपनाएंगे। युधिष्ठिर ने भलमनसाहत में अपना सब कुछ गंवा दिया, अब तो संघर्ष का रास्ता ही बचा रहता है।”

द्रुपद का भी विचार था, “दुर्योधन चुपचाप पांडवों को कुछ भी नहीं देगा। हमारे दूत को दुर्योधन से निडर होकर बात करनी चाहिए और कोई निर्णय होना चाहिए।”

अंततः यही तय किया गया कि पहले किसी सुयोग्य दूत को कौरवों के पास भेजना चाहिए।

विचार-विमर्श के पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारका जाने के लिए तैयार हो गए। जाते-जाते युधिष्ठिर से बोले, “हमारा पहला प्रयास यही रहेगा कि कौरवों से मित्रता स्थापित हो सके। अगर कौरवों ने हमारे अनुरोध को ठुकरा दिया तो तुम सीधे मेरे पास आ जाना, फिर अपने साथियों के साथ अगली योजना पर विचार करेंगे।”

□□

पांडवों ने हस्तिनापुर की ओर निडर दूत के रूप में एक पुरोहित को रवाना कर दिया। युधिष्ठिर को विश्वास था कि दुर्योधन दूत के अनुरोध को अवश्य ठुकरा देगा और संघर्ष की धमकी देगा, अतः उन्होंने अनेक मित्र नरेशों को सहायता करने का संदेश भेज दिया।

दुर्योधन भी मौन नहीं था। पांडवों की प्रत्येक गतिविधि पर उसकी दृष्टि थी। उसने भी अपने पक्ष के राजाओं से संभावित युद्ध के लिए तैयार रहने को कह दिया था। तभी दुर्योधन को पता

चला कि अर्जुन द्वारिका जा रहा है—श्रीकृष्ण से सहयोग पाने। दुर्योधन ने एक पल भी नहीं गंवाया, वह भी द्वारका के लिए चल पड़ा। अंततः श्रीकृष्ण के पास शक्तिशाली सेना थी। अगर पांडवों ने उस पर कब्जा कर लिया तो उसकी सैन्य-शक्ति में वृद्धि हो जाएगी और यह दुर्योधन चाहता नहीं था।

दुर्योधन और अर्जुन लगभग एक ही समय द्वारका पहुंचे।

उस समय श्रीकृष्ण अपने शयनकक्ष में सो रहे थे। दुर्योधन ने पहले शयनकक्ष में प्रवेश किया। श्रीकृष्ण को निद्रामग्न देखकर उसने चुपचाप बैठ जाना उचित समझा। दुर्योधन ने अपने लिए उचित आसन की खोज में इधर-उधर दृष्टि डाली। श्रीकृष्ण के सिरहाने के पास एक आसन पड़ा था, वह उसी पर बैठ गया। अर्जुन आया तो उसने श्रीकृष्ण के चरणों में ही बैठना उचित समझा, इसलिए वह पायताने बैठ गया।

थोड़ी देर में श्रीकृष्ण की नींद खुली। आंखें खुलते ही उनकी दृष्टि सामने बैठे अर्जुन पर गई। अर्जुन ने उनका अभिवादन किया।

“कैसे आए अर्जुन?” श्रीकृष्ण ने पूछा।

अर्जुन के बोलने से पूर्व ही दुर्योधन बोला, “श्रीकृष्ण! पहले मैं आया हूं, इसलिए पहले मुझसे बात करना ही उचित है। कौरव व पांडव दोनों के साथ आपको बराबरी का व्यवहार करना चाहिए, अर्जुन से पक्षपात ठीक नहीं।”

“अच्छा! तो पहले आप आए हैं।” श्रीकृष्ण बोले, “पर मैं क्या करूं, मुझे पहले दिखाई तो अर्जुन ही दिया। खैर! आप बताइए कैसे आगमन हुआ?”

दुर्योधन बोला, “मुझे लगता है कि भविष्य में युद्ध संभावित है, अतः उस युद्ध में मैं आपका सहयोग प्राप्त करने आया हूं।”

श्रीकृष्ण कुछ सोचकर बोले, “देखो दुर्योधन! मैं नहीं जानता कि पहले कौन आया। चूंकि सबसे पहले मेरी दृष्टि अर्जुन पर गई, इसलिए नियमानुसार मुझे पहले अर्जुन की इच्छा का आदर करना पड़ेगा। तुम दोनों मेरी सहायता पाने के लिए आए हो। मैं दोनों के साथ बराबरी का ही व्यवहार करूंगा। मेरे पास बहुत बड़ी सेना है, जिसमें बड़े-बड़े वीर हैं, जो पल भर में दुश्मनों का सफाया कर सकते हैं। एक पक्ष को यह सेना मिलेगी और दूसरे पक्ष को अकेला मैं। हां अर्जुन! पहले तुम बताओ कि तुम्हें क्या चाहिए? मैं या मेरी प्रबल सेना?”

अर्जुन हाथ जोड़कर बोला, “मैं तो आपको ही चाहता हूं? आप मिल गए तो सब कुछ मिल गया।”

“एवमस्तु।” श्रीकृष्ण मुस्कराकर बोले, “और तुम क्या चाहते हो दुर्योधन?”

दुर्योधन तो डर रहा था कि पहले अर्जुन की इच्छा पूरी की जा रही है, कहीं वह श्रीकृष्ण की विशाल सेना पर ही न अधिकार जमा ले। वह प्रसन्न होकर बोला, “मैं आपकी सेना पाकर संतुष्ट हूं।”

इस प्रकार अपनी-अपनी वस्तु पाकर दोनों लौट गए।

□□

पांडवों की दूसरी माता माद्री के पिता शल्य बहुत ही शक्तिशाली नरेश थे। उनके कानों में भी संभावित युद्ध की भनक पहुंच चुकी थी। जाहिर था कि वे पांडवों का हित चाहते थे, इसलिए एक दिन वे अपने कुछ विश्वस्त साथियों और सेना के साथ युधिष्ठिर से विचार-विमर्श करने निकल पड़े।

दुर्योधन को पता चला तो वह घबराया। वह किसी प्रकार शल्य का सहयोग स्वयं पाना चाहता था, इसलिए जिस-जिस मार्ग से शल्य की सवारी निकली, उसे दुर्योधन ने खूब सजा दिया, शल्य का आदर-सत्कार किया, स्वादिष्ट भोज्य सामग्री से सबको संतुष्ट किया। शल्य

का विचार था कि यह सारा आयोजन युधिष्ठिर ने किया है, इसलिए एक दिन उसने आयोजनकर्ताओं से कहा, “जिसने मेरे स्वागत का इतना उत्तम प्रबंध किया, मैं उससे मिलना चाहता हूं। उसे मेरे पास बुला लाओ, मैं भी उसे कुछ देना चाहता हूं।”

सेवक हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन को बुला लाए। शल्य को जब पता चला कि यह सारा आयोजन दुर्योधन ने किया है तो आश्चर्यचकित हुआ। दुर्योधन ने कहा, “आपने स्वयं वचन दिया है कि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं, इसलिए वचन पूरा कीजिए।”

तीर तरकश से निकल चुका था। शल्य ने कहा, “बोलो! तुम मुझसे क्या चाहते हो?”

“मैं चाहता हूं कि जब युद्ध हो, तब आपकी सेना मेरे अधीन रहे।” दुर्योधन ने कहा, “बस, इसके अलावा मैं और कुछ नहीं चाहता।”

“ठीक है, मैं वचन देता हूं कि युद्ध में मेरी सेना तुम्हारे सुपुर्द होगी।”

इसके बाद शल्य युधिष्ठिर के पास पहुंचे और सारी बात बता दी। सुनकर युधिष्ठिर एक पल सोचते रहे, फिर बोले, “महाराज! आप वचन दे चुके हैं, इसलिए आपको निश्चित रूप से उसका पालन करना चाहिए। हां, एक निवेदन मैं भी करना चाहता हूं, जब युद्ध हो तो आप ही कर्ण के सारथी बनें। फिर युद्ध के मैदान में कर्ण से कुछ ऐसा कहें, जिससे वह क्षुब्ध हो जाए, ताकि अर्जुन उस अवसर का लाभ उठाकर उसका वध कर सके। यह सब कहना सर्वथा उचित नहीं, लेकिन मैं चाहता हूं कि अर्जुन ही कर्ण पर विजय प्राप्त करे। आशा है कि इतना सहयोग आप हमारे साथ अवश्य करेंगे।”

शल्य ने अपनी स्वीकारोक्ति दे दी।

पांडव मत्स्य देश के निकट उपलव्य नामक नगर में बस गए। अब छिपकर रहने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि अज्ञातवास समाप्त हो चुका था।

उन्हें प्रतीक्षा थी अपने दूत के वापस लौटने की, जो कौरवों से वार्ता करने हस्तिनापुर गया था।

(ग्यारह)

पांडवों का दूत हस्तिनापुर पहुंचा तो उसका दरबार में यथायोग्य स्वागत किया गया।

अपना आसन ग्रहण करने के पश्चात् दूत बोला, “मैं पांडवों की ओर से कहने आया हूं कि हम युद्ध नहीं चाहते। बस, हम तो यह चाहते हैं कि राज्य में हमारा जो अधिकार है, वह हमें ससम्मान दिया जाए। अगर आप लोग युद्ध करने में उतावले ही हैं तो हम भी अपने कदम पीछे नहीं हटाएंगे। तत्संभावित युद्ध के लिए हमने भी पूरी तैयारी कर ली है। सात अक्षौहिणी सेना तो लड़ने के लिए एकदम तत्पर है, इसके अलावा अनेक मित्र नरेशों की सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाएं आदेश मिलने की प्रतीक्षा में हैं। आपका क्या उत्तर है?”

एक क्षण के लिए राजदरबार में सन्नाटा छा गया। दूत की दो टूक बातें सुनकर बड़े-बड़े दिग्गज एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। भीष्म ने दूत की ओर देखकर धीरे-धीरे कहा, “हमने तुम्हारी बात सुन ली, हर्ष की बात है कि पांडव शांति से सारा मामला निपटाना चाहते हैं। हम भी चाहते हैं कि पांडवों को उनका उचित भाग मिलना चाहिए।”

कर्ण से भीष्म की यह बात बर्दाश्त नहीं हो सकी। वह क्रोधित होकर बीच में ही बोला, “कैसा उचित भाग पांडवों को मिलना चाहिए? यह कौन नहीं जानता कि पांडवों ने जुए में अपना सर्वस्व गंवा दिया है। यह तो भाग्य की बात है, अगर दुर्योधन बाजी हारता तो उसे भी वनवास व अज्ञावास भोगना पड़ता। इसमें अन्याय की क्या बात है। अगर पांडवों को अपना राजपाट चाहिए था तो उन्हें वचनानुसार पूरे काल तक वनवास व अज्ञातवास की अवधि पूर्ण करनी चाहिए थी। अगर वे युद्ध करने को इतने ही आतुर हैं तो हमने भी अपने हाथों में कोई चूड़ियां नहीं पहन रखी हैं। युद्ध का जवाब युद्ध से दिया जाएगा। दूत! तुम हमारी बात पांडवों तक पहुंचा दो।”

“ठहरो दूत!” भीष्म बीच में ही बोले, “कर्ण! भला इसी में है कि शांति से काम लो। यह मत भूलो कि अर्जुन अकेले कई लोगों का मुकाबला कर सकता है। युद्ध से किसी का भला

नहीं होगा। मत्स्य देश में एक बार पराजित होकर भी तुमने कुछ नहीं सीखा?”

कर्ण मन मसोसकर रह गया।

सिंहासन पर मौन बैठे धृतराष्ट्र सब कुछ सुन रहे थे। बात बढ़ते देखकर वे थोड़ा कसमसाए। अंतिम निर्णय उन्हें ही करना था, लेकिन फिलहाल कुछ उत्तर देना उनके वश में नहीं था। वे दूत से बोले, “सुनो दूत! तुमने जो संदेश पहुंचाया, उस पर हमें विचार करने दो। शीघ्र ही मेरा सारथी उत्तर लेकर पांडवों से मिलेगा, अब तुम जा सकते हो।”

दूत चला गया।

धृतराष्ट्र ने संजय को अपने पास बुलवाया। कुछ देर विचार-विमर्श होता रहा। धृतराष्ट्र समझ नहीं पा रहे थे कि पांडवों के पास क्या संदेश भेजें? फिर वे संजय से बोले, “संजय! तुम पांडवों से जाकर मिलो। मेरा विचार है कि दोनों पक्षों में शांति ही रहे। बस, कुछ ऐसा व्यवहार करना कि यह उत्तेजना समाप्त हो जाए।”

संजय उपलब्ध नगर जा पहुंचा।

पांडवों ने संजय का हृदय से स्वागत किया। आत्मीयों-स्वजनों के हाल-चाल का आदान-प्रदान होने के पश्चात् युधिष्ठिर ने पूछा, “संजय! कैसे आगमन हुआ?”

“हे धर्मराज!” संजय बोला, “मुझे महाराज धृतराष्ट्र ने आपके पास भेजा है। वे चाहते हैं कि युद्ध के जो बादल मंडराने लगे हैं, उन्हें साफ कर दिया जाए। वे कौरव-पांडव में शांति चाहते हैं। युद्ध में विनाश के अलावा किसी को कुछ प्राप्त नहीं होगा।”

“हम तो स्वयं चाहते हैं कि युद्ध न हो।” युधिष्ठिर बोले, “पर दुर्योधन केवल युद्ध की भाषा में ही बात करना चाहता है। हमें अधिकार दे दीजिए, हम युद्ध नहीं करेंगे। महाराज धृतराष्ट्र भी सारी सच्चाई जानते हैं लेकिन उन्होंने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली है, वे पुत्र स्नेह के आगे

विवश हैं। उनसे जाकर कह दो, हमारा इंद्रप्रस्थ हमें दे दो, वरना निर्णय युद्ध के मैदान में होगा।”

“आपकी मांग उचित है।” संजय बोले, “लेकिन मेरा सुझाव है कि युद्ध का विचार त्याग दें। युद्ध से किसी का भला नहीं होगा। अगर युद्ध करके ही आपको राज्य प्राप्त करना था तो तेरह वर्षों तक दर-दर भटकने की क्या आवश्यकता थी। उचित यही है कि दुर्योधन ने आपका भाग देने से इनकार कर दिया तो इतने बड़े संसार में कहीं भी जाकर बाहुबल से अपना राज्य स्थापित कीजिए।”

“ऐसा नहीं हो सकता।” युधिष्ठिर बोले, “मैं क्षत्रिय हूं और क्षत्रिय का यह पहला कर्तव्य है कि अपने गए हुए राज्य को पुनः प्राप्त करे।”

“तनिक यह भी तो सोचिए कि भाई-भाई में लड़ना कहां तक उचित है! क्या आप अपने बुजुर्गों भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि पर हथियार उठाएंगे? यह तो अधर्म है महाराज!” संजय बोला।

वहीं श्रीकृष्ण बैठे थे। उनसे रहा नहीं गया। बोले, “संजय! आज तो तुम्हारे मुंह से धर्म की बातें सुनकर आश्चर्य होता है, बुजुर्गों की दुहाई देते हैरत होती है, यह किसी से छिपा नहीं है कि पांडवों ने अब तक धैर्य का ही परिचय दिया है। तुम जिन बुजुर्गों की दुहाई देते हो, उन्होंने अब तक कौन-सा आदर्श स्थापित किया है। जब द्रौपदी को भरे दरबार में निर्वस्त्र करके अपमानित किया जा रहा था, तब इन बुजुर्गों के हाथ-पांव क्यों फूल गए थे, क्यों नहीं किसी ने आगे बढ़कर दुर्योधन या दुःशासन को इस कुकृत्य से दूर किया? फिर भी पांडव अपनी ओर से कोई पहल नहीं करेंगे। संजय! तुम जाकर राजा धृतराष्ट्र से कह दो कि पांडवों को इंद्रप्रस्थ दे दें, उनका उत्तर आने के बाद ही कोई निर्णय होगा।”

युधिष्ठिर बोले, “हां, हम इतना अवश्य कर सकते हैं कि अगर वे हमें पूरा राज्य न दें तो कम-से-कम हम पांच भाइयों के लिए पांच गांव अवश्य दे दें। बस, हमें और कुछ नहीं चाहिए।

तब शांति अवश्य स्थापित हो सकती है।”

□□

संजय हस्तिनापुर लौट आए।

धृतराष्ट्र ने पूछा, “संजय! क्या उत्तर लाए हो?”

“उन्हें हर हालत में अपना राज्य चाहिए। वे आपकी शांति की निरर्थक योजना में आने वाले नहीं।”

संजय ने आदि से अंत तक सारी बातें धृतराष्ट्र को सुना दीं। धृतराष्ट्र चिंता में पड़ गए। उनका विचार था कि पांडव अपने राज्य की मांग छोड़ देंगे और शांति का रास्ता अपनाएंगे, पर अब क्या किया जाए। दुर्योधन कभी भी पांडवों को उनका अधिकार नहीं सौंपेगा और वे पुत्र का विरोध नहीं कर सकेंगे।

उन्होंने उसी समय विदुर को बुलवाया। महात्मा विदुर उन्हें हमेशा संकट के समय उचित सलाह देते थे। यह अलग बात है कि धृतराष्ट्र उस पर पूरी प्रकार अमल नहीं कर पाते थे।

विदुर आए तो धृतराष्ट्र ने व्याकुल स्वर में कहा, “मैं चाहता हूँ कि पांडवों को न्याय मिले और कौरवों की भी कोई क्षति न हो, किंतु संभावित अनिष्ट की आशंका से मेरी रातों की नींद और दिन का चैन नष्ट हो गया है। मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ, क्या न करूँ?”

“इसमें अधिक सोचने की क्या आवश्यकता है।” विदुर बोले, “जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उसके जिम्मेदार आप हैं। आपने दुर्योधन पर राज्य का कार्यभार सौंपकर आंखें मूंद ली हैं और दुर्योधन शकुनि, कर्ण व दुःशासन जैसे लोगों के साथ मिलकर मनमानी कर रहा है। अब भी समय है कि आप अपनी भूल सुधार लें। पांडवों को उनका राज्य देकर निश्चिंत हो जाइए। फिर कोई यह भी नहीं कहेगा कि आपने न्याय की ओर से आंखें फेर ली थीं।”

धृतराष्ट्र शांत। ऐसा करना उनके वश में न था। दुर्योधन को रुष्ट करने की कल्पना मात्र से वे कांप उठे।

विदुर बोले, “आप मौन क्यों हैं? अगर आपने मेरा सुझाव नहीं माना तो इस युद्ध को टालना असंभव हो जाएगा और यह तय है कि युद्ध में अन्यायी को ही मृत्यु का वरण करना पड़ता है। कहीं ऐसा न हो कि युद्ध के अंत में अपने पुत्रों की मृत्यु की सूचना पाकर आप खून के आंसू रोएं। अंततः पांडवों को उनका अधिकार देने में आपको आपत्ति क्या है?”

धृतराष्ट्र के नेत्रों के आगे अंधकार छा गया। उन्होंने कहा, “मैं अपनी बात झुठला नहीं सकता। मेरे हृदय में स्वयं पांडु-पुत्रों के लिए अपार स्नेह है, पर दुर्योधन की इच्छाओं के प्रतिकूल आचरण करना मेरे वश में नहीं। जो भाग्य में होगा, वह तो भोगना ही पड़ेगा। आपकी बातों से मेरे विक्षिप्त मन को शांति ही मिल रही है। आगे बोलिए, मैं आपके विचारों को सुन रहा हूँ।”

विदुर को हैरानी हुई। सच्चाई जानते हुए भी धृतराष्ट्र उचित निर्णय नहीं कर पा रहे थे।

वे रात भर धृतराष्ट्र को समझाते रहे और धृतराष्ट्र चुपचाप उनकी बातों को सुनते रहे।

□□

अगले दिन प्रातःकाल ही धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोणाचार्य, संजय, कृपाचार्य आदि को बुला लिया। दुर्योधन भी अपने भाइयों व कर्ण, शकुनि आदि के साथ पहुंचा।

धृतराष्ट्र ने बोलना आरंभ किया, “संजय पांडवों से मिलकर आया है। संजय की बातों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पांडवों ने बड़े स्तर पर युद्ध की तैयारियां कर रखी हैं। वे अपना राज्याधिकार प्राप्त करने को कटिबद्ध हैं। रात को विदुर ने भी बताया कि हमें उनका हिस्सा उन्हें सौंप देना चाहिए। इसलिए मेरा विचार है कि पांडवों को इंद्रप्रस्थ लौटाकर इस विवाद को हमेशा के लिए समाप्त कर देना चाहिए।”

यही तो भीष्म, विदुर, द्रोणाचार्य आदि भी चाहते थे। बुजुर्गों ने तत्काल धृतराष्ट्र के विचार का समर्थन किया।

दुर्योधन को पिता के उद्गार बिलकुल नहीं भाए। वह क्रोधित होकर बोला, “अगर उन्होंने युद्ध की तैयारियां कर रखी हैं तो हमें इससे डरना नहीं चाहिए। हम भी किसी से कम नहीं। हमारे साथ भी बड़े-बड़े वीर हैं। गुरुदेव द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा जैसे वीरों के रहते हुए हमें पांडवों की धमकियों से डर कैसा? हाथ में आया राज्य छोड़ देना सरासर कायरता है। हम इंद्रप्रस्थ नहीं लौटाएंगे। वे तो हमारे वैभव से इस कदर भयभीत हैं कि केवल पांच गांव ही मांग रहे हैं। अगर हम अपने इरादों में दृढ़ रहे तो उनकी पांच गांवों की मांग भी नहीं रहेगी। शेष रहा युद्ध का प्रश्न, वे युद्ध में हमारा मुकाबला नहीं कर सकते।”

पुत्र की बात सुनकर धृतराष्ट्र बुरा मान गए। क्षुब्ध होकर बोले, “अब इस दुर्योधन को कौन समझाए। यह मूर्ख पांडवों की वीरता को कम करके आंक रहा है। क्या इसे यह भी नहीं मालूम कि उनके पास दिव्यास्त्र हैं, अर्जुन के पास गांडीव है। पांडव केवल अपना अधिकार ही तो मांग रहे हैं। मैं तो चाहता हूं कि इंद्रप्रस्थ देकर इस युद्ध का खतरा टाल दिया जाए और चचेरे भाई शांति और सम्मान के साथ रहें।”

दुर्योधन तैश में आकर बोला, “आप व्यर्थ ही पांडवों की शक्ति से डर रहे हैं। अर्जुन के पास गांडीव और दिव्यास्त्र हैं तो हमारे साथ कर्ण है। कर्ण ने भी विधिवत युद्ध-गुरु आचार्य परशुराम से दिव्यास्त्र प्राप्त किए हैं।”

“हां, मेरे पास भी ब्रह्मास्त्र हैं।” कर्ण ने गर्व के साथ कहा, “ब्रह्मास्त्र के बल पर मैं अकेला ही पांडवों की सेना का नामो-निशान मिटा सकता हूं।”

भीष्म ने तेज स्वर में कहा, “इतना अहंकार मत करो कर्ण! यही अहंकार मानव का सबसे बड़ा शत्रु है, एक बार पहले भी तुम मत्स्य देश में अर्जुन के हाथों मात खा चुके हो और अगर

अब युद्ध हुआ तो श्रीकृष्ण तुम्हारे ब्रह्मास्त्र को भी नष्ट कर देंगे।”

“हूँSSS। तो आप समझते हैं कि मैं केवल बातें बना रहा हूँ।” कर्ण बोला, “लीजिए! आज मैं प्रण करता हूँ कि मरते दम तक लड़ूंगा और हे भीष्म पितामह! जब तक आप जीवित हैं, मैं अपने हथियारों को स्पर्श भी नहीं करूंगा। आप युद्धभूमि में अपना वार आजमाकर शांत हो चुके होंगे, तब मेरा काम आरंभ होगा।”

इतना कहकर कर्ण तेज-तेज कदमों से वहां से चला गया।

(बारह)

युद्ध की आशंका उत्तरोत्तर बढ़ गई थी।

हस्तिनापुर में जो कुछ हो रहा था, उसकी पूरी जानकारी पांडवों के पास पहुंच रही थी। जब यह तय हो गया कि कौरव बिना युद्ध के इंद्रप्रस्थ नहीं लौटाएंगे तो उन्होंने गंभीरता से इस नई स्थिति पर सोच-विचार किया। युधिष्ठिर के सम्मुख एक ही प्रश्न था, क्या शांति से समस्या का निदान नहीं हो सकता है? क्या समझाने का आधार एकमात्र युद्ध है?

युधिष्ठिर ने अचानक श्रीकृष्ण से पूछा, “मुझे तो इस युद्ध में कोई लाभ दिखाई नहीं दे रहा है। क्या इस युद्ध को टाला नहीं जा सकता? यह तो तय है कि हम निश्चित रूप से जीतेंगे, फिर भी मैं इस युद्ध के पक्ष में नहीं हूं। भला युद्ध में जीतकर हमें क्या हासिल होगा— राज्य? भूमि? वैभव? कौरव हमारे चचेरे भाई ही तो हैं, उनके पक्ष में हमारे समस्त बुजुर्ग और आत्मीय जन हैं, उन सबको युद्ध में मारकर राज्य पाकर भला उसमें प्रसन्नता प्राप्त हो सकेगी? मैं तो चाहता हूं कि हम एक बार फिर शांति के साथ रहें। यह सही है कि कौरव युद्ध के लिए कटिबद्ध हैं और बिना युद्ध के पांच गांव भी देना नहीं चाहते। मैं क्षत्रिय हूं और युद्ध करना मेरा धर्म है, फिर भी युद्ध में किसी का भला नहीं देख रहा हूं।”

श्रीकृष्ण के अधरों पर मुस्कराहट तैर गई। वे बोले, “धर्मराज! मैं तुम्हारी भावनाओं का आदर करता हूं। तुम चाहते हो कि कौरवों से शांति वार्ता का एक और प्रयास करना चाहिए तो मैं स्वयं हस्तिनापुर जाकर कौरवों से मिलूंगा। मेरा प्रयास होगा कि तुम लोगों के हित को क्षति पहुंचाए बिना दोनों पक्षों में शांति स्थापित करा सकूं।”

“आप जा तो रहे हैं, पर मुझे डर है कि हस्तिनापुर में आपको क्षति न पहुंचाई जाए।” युधिष्ठिर ने शंका प्रकट की, “वहां दुर्योधन होगा, उसके कुटिल साथी होंगे। उनके बीच अकेले जाना खतरनाक हो सकता है।”

“मेरी चिंता मत करो युधिष्ठिर!” श्रीकृष्ण बोले, “मैं अपनी रक्षा स्वयं कर लूंगा। बस, मैं तो चाहता हूं कि शांति का मेरा यह अंतिम प्रयास सफल हो जाए और कौरव-पांडवों के बीच शांति बनी रहे।”

अगली सुबह श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जाने के लिए तैयार हो गए। सात्यकि ने उनके लिए रथ तैयार कर दिया और श्रीकृष्ण की गदा, चक्र, शंख व अन्य अस्त्र-शस्त्र रख लिए। फिर श्रीकृष्ण ने अपने साथ दस वीर, एक हजार पैदल सैनिक व एक हजार अशवारोही सैनिक लेकर हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान कर दिया।

दुर्योधन की कुटिलता का कोई भरोसा नहीं था।

□□

श्रीकृष्ण के आगमन की सूचना धृतराष्ट्र को मिल चुकी थी। उन्हें खुशी हुई कि श्रीकृष्ण इस संकट की बेला में आ रहे हैं। उन्होंने अपने सेवकों को आदेश दिया, “जाओ! श्रीकृष्ण के स्वागत की तैयारियां करो। ध्यान रहे, उन्हें मार्ग में कहीं भी कष्ट न हो। हर जगह उनके विश्राम और खाने-पीने का उत्तम प्रबंध करो।”

ऐसा ही किया गया। श्रीकृष्ण जिस मार्ग से आ रहे थे, वहां सारी सुविधाएं जुटाई गईं, साथ ही हस्तिनापुर को अच्छी प्रकार सजा दिया गया।

विदुर ने धृतराष्ट्र को सुझाव दिया, “महाराज! श्रीकृष्ण चाहें तो सब कुछ ठीक हो सकता है। वे वृकस्थल तक पहुंच चुके हैं, यहां आए तो आप उनसे कौरवों और पांडवों की भलाई का उपाय पूछें।”

“हां।” धृतराष्ट्र बोले, “मैं भी यही चाहता हूं। कल तक वे हस्तिनापुर पहुंच जाएंगे। देखो, महल में उन्हें कोई कष्ट नहीं पहुंचे। उन्हें दुःशासन के कक्ष में ठहराना उचित होगा, क्योंकि वह कक्ष अत्यंत भव्य है, श्रीकृष्ण के सर्वथा उपयुक्त है।”

दुर्योधन को पता था कि श्रीकृष्ण आ रहे हैं, जब से उसने यह सुना था, उसका दिमाग अपनी नई योजनाओं में लिप्त हो गया। वह पिता से बोला, “महाराज! श्रीकृष्ण हस्तिनापुर आ रहे हैं, हमें यह अवसर गंवाना नहीं चाहिए। हमें श्रीकृष्ण को पकड़कर बंदी बना लेना चाहिए। जैसे ही यह समाचार पांडवों को मिलेगा, वे अपना युद्ध का इरादा छोड़ देंगे।”

धृतराष्ट्र क्रोध से तन गए। बोले, “यह क्या कहते हो दुर्योधन? श्रीकृष्ण दूत के रूप में हस्तिनापुर आ रहे हैं। वे हमारे सम्मानित अतिथि हैं। उन्हें बंदी बनाने की बात कहते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती? भला कोई दूत से भी ऐसा दुर्व्यवहार करता है?”

दुर्योधन बोला, “यही तो राजनीति है?”

“मौन रहो दुर्योधन!” भीष्म ने गरजकर कहा, “यह षड्यंत्र एक दिन तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा। धृतराष्ट्र! अगर दुर्योधन ने श्रीकृष्ण का कोई अहित करना चाहा तो समझ लो वह अपनी मृत्यु को आमंत्रित कर रहा है।”

इतना कहकर भीष्म वहां से चले गए।

□□

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुंचे तो उनका भव्य स्वागत किया गया। भीष्म, द्रोणाचार्य व कृपाचार्य आदि ने आगे बढ़कर उनका अभिनंदन किया।

सारा नगर उनके दर्शनों के लिए उमड़ आया था।

श्रीकृष्ण सबसे पहले महल में जाकर धृतराष्ट्र से मिले। धृतराष्ट्र ने उन्हें स्नेह से आलिंगन में बांध लिया।

वहां से श्रीकृष्ण सीधे विदुर के घर पहुंचे, जहां पांडवों की माता कुंती रहती थी। कुंती श्रीकृष्ण को अपने पास पाकर अति प्रसन्न हुई। श्रीकृष्ण ने कुंती को पुत्रों व बहू की कुशलता का समाचार दिया। कुंती तेरह वर्षों से अपने पुत्रों व बहू से दूर रही थी। उनकी कुशलता

जानकर वह प्रसन्न तो हुई, साथ ही यह भी कहा, “देखो, उन्होंने इतना कष्ट भोगा। अपनी प्रतिज्ञा भी पूरी कर ली, फिर भी उन्हें अपने अधिकारों से दूर किया जा रहा है।”

“चिंता मत करो।” श्रीकृष्ण बोले, “समय आ रहा है, जब तुम अपनी आंखों से देखोगी कि तुम्हारे पुत्र पृथ्वी के मालिक होंगे और उनके शत्रुओं का नामो-निशान तक मिट जाएगा।”

श्रीकृष्ण दुर्योधन से मिले तो दुर्योधन ने कहा, “हस्तिनापुर में आपका स्वागत है। कृपया आज का भोजन मेरे साथ कीजिए।”

“नहीं, मैं तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकता।” श्रीकृष्ण बोले।

“क्यों?” दुर्योधन हतप्रभ रह गया। कहां तो वह श्रीकृष्ण को वश में करने आया था और श्रीकृष्ण ने उसे हाथ भी नहीं रखने दिया।

श्रीकृष्ण ने कहा, “दो कारणों से लोग भोजन का निमंत्रण स्वीकार करते हैं। एक तो इसलिए कि आपस में प्रेम होता है, दूसरा इसलिए कि निमंत्रित व्यक्ति भूखा व दरिद्र है। तुम जानते हो कि मैं भूखा व दरिद्र नहीं हूँ और न तुम मुझसे प्रेम करते हो। सच तो यह है कि ‘जो पांडवों से घृणा करता है, वह मुझसे घृणा करता है, जो पांडवों से प्रेम करता है, वह मुझसे प्रेम करता है। इसलिए मुझे क्षमा करो, मैं तुम्हारे साथ भोजन नहीं कर सकता।”

दुर्योधन के चेहरे पर कालिख पुत गई।

श्रीकृष्ण उसे वहीं छोड़कर विदुर के घर गए और वहां भोजन किया। विदुर ने कहा, “मूर्ख दुर्योधन सोचता है कि वह अपने दुर्लक्ष्य में सफल हो जाएगा। वह किसी की बात मानता ही नहीं। बस, कर्ण व शकुनि की बातों में आकर विशाल सेना एकत्र कर ली है और लड़ने को कटिबद्ध है। ऐसी हालत में आप यहां शांति का प्रस्ताव लेकर आए हैं, कौन सुनेगा आपकी बात? बेहतर यही है कि इस दुष्ट से दूर रहें।”

“मैं तो कौरवों की भलाई के लिए यहां आया हूं।” श्रीकृष्ण बोले, “मेरा प्रस्ताव कौरवों ने मान लिया तो अकाल मृत्यु से बच जाएंगे, वरना उनकी मृत्यु निश्चित है। अगर दुर्योधन ने मेरा कोई अहित करना चाहा तो इसका परिणाम भयानक होगा।”

□□

अगले दिन राजदरबार में सभा बुलाई गई। धृतराष्ट्र सहित सभी अपने-अपने आसन पर बैठे थे। भीष्म, द्रोण आदि बुजुर्गों के अलावा सम्मानित ऋषि-मुनि भी पधारे थे।

श्रीकृष्ण ने सभी को संबोधित किया, “मैं यहां शांति का अंतिम प्रयास करने आया हूं। पांडवों ने मुझे संधि का प्रस्ताव प्रस्तुत करने को भेजा है। मेरी राय है कि न्याय की मांग यही है, पांडवों को राज्य सौंप दिया जाए और युद्ध के खतरे को टाल दिया जाए। अगर ऐसा नहीं किया गया तो कुरु वंश नष्ट हो जाएगा।”

सभा में उपस्थित अधिकांश लोगों का मत भी यही था, किंतु दुर्योधन को इन बातों से गुस्सा आ गया। वह क्षुब्ध होकर बोला, “मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि लोग पांडवों से इस कदर सहानुभूति क्यों रखते हैं? जो कुछ हुआ है, नियमानुसार हुआ है। एक बार जुए में गंवाकर दुबारा जुए खेलने की क्या आवश्यकता थी? पहली बार तो हमने उनका गंवाया हुआ सब कुछ लौटा दिया, किंतु अब मैं उन्हें कुछ देने के पक्ष में नहीं हूं। अगर वे हमसे युद्ध ही करना चाहते हैं तो हम भी तैयार हैं।”

श्रीकृष्ण बोले, “दुर्योधन! यह विचार मन से निकाल दो कि तुम युद्ध में जीत जाओगे। अगर बिना लड़े तुम कोई निर्णय नहीं करना चाहते तो बेहतर यही है कि अपने किसी परमवीर से अर्जुन को लड़ा दो, उन्हीं की हार-जीत से निर्णय हो जाएगा। व्यर्थ ही वृहद युद्ध का आयोजन करने की क्या तुक? सबसे अच्छी बात तो यह है कि पांडवों को चुपचाप उनका अधिकार दे दो और मिल-जुलकर रहो।”

भीष्म ने भी दुर्योधन को समझाया, “श्रीकृष्ण जो कुछ कह रहे हैं, वह उचित है। मिल-जुलकर रहने में ही भलाई है।”

सभी को श्रीकृष्ण का समर्थन करते देखकर दुःशासन घबरा गया। वह धीरे से अपने भाई दुर्योधन के कान में बोला, “भैया! यहां तो उल्टी गंगा बह रही है। अगर तुमने श्रीकृष्ण की बात नहीं मानी और पांडवों से संधि स्थापित नहीं की तो द्रोण, भीष्म और पिताश्री आदि सब मिलकर हमें पांडवों को सौंप देंगे।”

दुर्योधन का पूरा शरीर गुस्से से कांपने लगा। उसने एक बार तीखी दृष्टि से सबको देखा और एक झटके से उठकर सभागार से चला गया। उसके साथ-साथ कर्ण, शकुनि व दुःशासन आदि भी चले गए। सम्मानीय दूत से बिना बात किए बीच सभा में उठ जाने का सबने बुरा माना।

धृतराष्ट्र इस विघ्न से आसन पर कसमसा रहे थे।

श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा, “दुर्योधन की उद्वेगता असहनीय है। बेहतर यही है कि उसे राज्याधिकार से वंचित कर दीजिए व पांडवों से संधि स्थापित कीजिए। यही एक उपाय है, जिससे कुरु वंश की रक्षा की जा सकती है।”

एकाएक धृतराष्ट्र की समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दे। उन्होंने विदुर से कहा, “महात्मन! तनिक गांधारी को बुला लाओ। इस संकट की बेला में वही मेरा मार्गदर्शन कर सकती हैं।”

विदुर सभा से उठकर चले गए और अगले पल ही अंतःपुर से गांधारी को बुला लाए। गांधारी आसन पर बैठ गई तो धृतराष्ट्र ने अपनी दुविधा उसके सामने रखी। गांधारी अपने पुत्रों की उद्वेगता तथा पति की असहाय स्थिति से पहले ही दुखी थी। आज उसे अवसर मिला तो वह बोली, “महाराज! स्पष्टोक्ति के लिए क्षमा करें। सच्चाई तो यह है कि आपकी कमजोरी व दुर्लभ नीति से ही हमारे पुत्र इस कदर उद्वेग हुए हैं। पुत्रों को आप काबू में कीजिए और इस युद्ध से दूर कीजिए।”

यही नहीं, दुर्योधन वापस सभा में आया तो गांधारी ने पुत्र को भी समझाया। दुर्योधन को माता की एक भी बात पसंद नहीं आई। वह सांप की प्रकार फुफकारता हुआ लाल आंखों से माता की ओर देखता रहा। माता ने जोर देकर कहा, “पुत्र! अनीति का मार्ग छोड़ दो। अधर्म पर चलकर न तो तुम पांडवों से जीत सकोगे और न ही अपने राज्य की रक्षा कर सकोगे। अगर सुख-शांति चाहते हो तो श्रीकृष्ण का संधि-प्रस्ताव मान लो।”

दुर्योधन से बर्दाश्त न हो सका, वह बिना कोई उत्तर दिए पैर पटकता हुआ सभागार से निकल गया।

□□

दूसरे कक्ष में कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदि दुर्योधन की प्रतीक्षा कर रहे थे। दुर्योधन ने वापस आकर बताया कि पूरा वातावरण उनके विरुद्ध है, अब क्या किया जाए? उन्होंने गंभीरता से इस विषय पर विचार-विमर्श किया और अंततः निर्णय किया कि श्रीकृष्ण को बंदी बना लेना चाहिए। दुर्योधन बोला, “श्रीकृष्ण को हम बंदी बना लेंगे तो पांडवों की हिम्मत टूट जाएगी। फिर हम बड़ी आसानी से पांडवों का नाश कर देंगे। मुझे परवाह नहीं कि महाराज धृतराष्ट्र या अन्य कोई इस हरकत से प्रसन्न होता है या रुष्ट।”

सात्यकि को किसी प्रकार दुर्योधन के इस षड्यंत्र का पता चल गया। वह तत्काल बाहर निकला और अपनी सेना को सतर्क रहने का आदेश दिया। फिर वह सभागार में पहुंचा और संभावित खतरे के बारे में श्रीकृष्ण को सावधान कर दिया।

श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा, “मुझे सूचना मिली है कि आपका पुत्र दुर्योधन मुझे बंदी बनाने की योजना बना रहा है। ठीक है, अगर ऐसा करना चाहता है तो मुझे बंदी बनाने आए। फिर मैं भी दिखा दूंगा कि कौन किसको बंदी बना सकता है। मुझे अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा है, लेकिन मैं आप लोगों की उपस्थिति में अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने नहीं आया हूं। कृपया दुर्योधन को समझा दीजिए कि यह हरकत महंगी पड़ेगी।”

धृतराष्ट्र दुखी स्वर में बोले, “दुर्योधन को मैं समझा दूंगा। कृपया मुझे थोड़ा समय और दीजिए, शायद दुर्योधन युद्ध के विचार को त्याग दे।”

तभी दुर्योधन अपने साथियों के साथ फिर सभागार में आया। धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र को खूब डांटा, लेकिन दुर्योधन पर इसका कोई असर नहीं हुआ। इस पर श्रीकृष्ण ने अपना विराट रूप दिखाया, जिससे सारे सभागार में सन्नाटा छा गया।

श्रीकृष्ण अपने आसन से उठकर बोले, “अब मेरा यहां रहना व्यर्थ है, मैं स्पष्ट देख रहा हूं कि आपका अपने पुत्रों पर ही अधिकार नहीं है। आप लोग पांडवों से संधि नहीं करना चाहते तो वे भी युद्ध के लिए तैयार हैं। मैं चला।”

यह कहकर श्रीकृष्ण सभागार से निकले। फिर कुंती से मिलकर वे उपलव्य नगर के लिए रवाना हो गए।

जाते-जाते वे एक बार कर्ण से मिले और बोले, “कर्ण! तुम भी कुंती के पुत्र हो, इस प्रकार पांडवों के सबसे बड़े भाई तुम्हीं हो। बेहतर यही है कि तुम भी मेरे साथ पांडवों के पास चलो। युधिष्ठिर को जैसे ही तुम्हारी सच्चाई का ज्ञान होगा, वह सारा राज्य तुम्हें सौंप देगा। फिर संभावित युद्ध को टाला जा सकता है।”

कर्ण बोला, “मैं आपकी बात नहीं मान सकता। मैं कुंती को अपनी माता कैसे मान सकता हूं, जिसने मुझे जन्म देते ही नदी में फेंक दिया था। मुझे क्षमा कीजिए।”

“इसका अर्थ है कि युद्ध को अब कोई नहीं टाल सकता।” श्रीकृष्ण बोले, “ठीक है, कौरवों से कह देना कि आज से सातवें दिन अमावस्या आरंभ होगी और उसी दिन युद्ध आरंभ होगा।”

यह कहकर श्रीकृष्ण ने सात्यकि को आदेश दिया, “रथ उपलव्य नगर की ओर ले चलो।”

कुंती विदुर के घर में चिंतित-सी बैठी थी। वह जानती थी कि अब युद्ध को टालना असंभव है, क्योंकि कौरवों ने श्रीकृष्ण के शांति प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। उसे सबसे अधिक दुःख तो इस बात का था कि कर्ण अपने भाइयों को छोड़कर अन्यायी कौरवों का साथ दे रहा था। वह किसी प्रकार कर्ण का मन जीतना चाहती थी।

अगले दिन वह कर्ण के घर पहुंची। बोली, “पुत्र! तुम अन्यायियों का साथ छोड़ दो। पांडव मेरे पुत्र हैं और तुम भी मेरे पुत्र हो। भाई-भाई आपस में मिलकर अन्याय का मुकाबला करो।”

कर्ण बोला, “मैं आपका सम्मान करता हूं और आपने जो कुछ कहा उस पर पूरा-पूरा विश्वास करता हूं, लेकिन मैं आपको न माता के रूप में स्वीकार कर सकता हूं और न आपका कोई आदेश मान सकता हूं। आप कैसी माता हैं कि जन्म लेते ही गोद में उठाने की बजाय मुझे नदी में बहा दिया। मुझे सूत ने बचाया और मेरा लालन-पालन किया, मैं तो सूत को अपना पिता और उसकी पत्नी को अपनी माता मानता हूं। बस, अब चली जाइए, मैं अंतिम सांस तक दुर्योधन के पक्ष में लड़ूंगा। हां, मैं यह कहता हूं कि पांडवों में से केवल एक से ही लड़ूंगा, मैं शेष चार से युद्ध नहीं करूंगा, अर्जुन से ही लड़ूंगा। फिर चाहे मैं जीतूं या अर्जुन—आपके पांच पुत्र तो जीवित रहेंगे ही। आप सर्वदा पांच पुत्रों की माता बनी रहेंगी।”

कुंती की आंखों से आंसू निकल आए। वह सुबकती हुई बोली, “भाग्य के आगे कौन क्या कर सकता है? मेरे चार पुत्रों को छोड़ देने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। युद्ध के मैदान में इस वचन को याद रखना। मेरी शुभकामनाएं।”

इतना कहकर कुंती भरे मन से वहां से चली गई।

(तेरह)

श्रीकृष्ण उपलव्य नगर आ पहुंचे।

पांडवों ने उन्हें शिविर में घेर लिया। श्रीकृष्ण ने आदि से अंत तक कौरवों की सभा का संपूर्ण वृत्तांत सुना दिया।

एक क्षण के लिए शिविर में शांति छा गई। उनका यह अंतिम प्रयास भी व्यर्थ गया था। अब होनी को कोई नहीं टाल सकता। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों की ओर देखा और बोले, “अभी-अभी श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा, वह सब तुम लोगों ने सुन लिया। इसका अर्थ यह हुआ कि अब युद्ध के मैदान में ही भाग्य का निपटारा होगा। इसके लिए हमें अपनी सेना संगठित कर लेनी चाहिए।”

पांडवों के पास सात अक्षौहिणी सेना थी। युधिष्ठिर ने सोच-विचार कर इन सातों सेनाओं का अधिनायक द्रुपद, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, विराट, शिखंडी, सात्यकि, चेकितान को नियुक्त कर दिया।

“अब संपूर्ण सेना का सेनापति किसे बनाया जाए?” श्रीकृष्ण ने पूछा।

थोड़ी देर तक उनमें विचार-विमर्श हुआ। अनेक नाम सुझाए गए, पर कोई किसी नाम पर एकमत न हुआ। अंत में श्रीकृष्ण ने कहा, “मेरा विचार है कि सेनापति के लिए धृष्टद्युम्न उपयुक्त रहेगा।”

सबने श्रीकृष्ण का सुझाव हर्षध्वनि से स्वीकार कर लिया। धृष्टद्युम्न ने यह महान उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया और सेना को सतर्क रहने का आदेश दे दिया।

□□

युद्ध की तैयारी हो गई। सेनाएं कूच करने के लिए तैयार खड़ी थीं। चारों ओर युद्ध का उन्माद छा गया था। घोड़ों के टापों व अस्त्रों की झंकार से वातावरण गूंज रहा था। रथ इधर से उधर

भाग रहे थे। शंख और नगाड़े की गंभीर ध्वनियां दिग-दिगंत से टकरा रही थीं। युधिष्ठिर चारों ओर घूम-घूमकर सेना का निरीक्षण कर रहे थे।

उपलव्य नगर से चलने से पहले युधिष्ठिर ने द्रौपदी की सुरक्षा का पूरा प्रबंध कर दिया था, फिर निश्चित दिन सेना युद्धक्षेत्र के लिए रवाना हो गई। कुरुक्षेत्र जैसे समतल मैदान में पहुंचकर युधिष्ठिर ने तंबू गाड़ दिए। श्रीकृष्ण सहित पांडवों के समस्त सहयोगी नरेश युद्धक्षेत्र में तैनात थे। पास ही हिरण्वती नदी बह रही थी।

युद्ध का इतना बड़ा आयोजन देखकर युधिष्ठिर का मन भारी हो गया था। जब भाई आपस में मिले तो युधिष्ठिर ने कहा, “यह हमारा कैसा दुर्भाग्य है कि अपने ही आत्मीयों से लड़ने को हम यहां एकत्र हुए हैं, कुरु-वंश को बचाने के लिए हमारे सारे प्रयास निष्फल गए।”

अर्जुन बोला, “भैया! शोक व्यर्थ है। अगर कौरव थोड़े भी समझदार होते तो यह नौबत नहीं आती। यह मत भूलो कि उन्होंने श्रीकृष्ण का अंतिम शांति प्रयास भी ठुकरा दिया। फिर हमें तो माता कुंती का भी आदेश मिल चुका है कि हम अपना क्षत्रिय धर्म निभाकर राज्य हासिल करें।”

हालांकि युधिष्ठिर मन-ही-मन दुखी थे, फिर भी कौरवों की कुटिलता याद आते ही वे युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए।

□□

श्रीकृष्ण चेतावनी देकर हस्तिनापुर से जा चुके थे।

दुर्योधन आशंकित था कि श्रीकृष्ण पांडवों के पास पहुंचते ही युद्ध की तैयारी करने का आदेश दे देंगे, क्योंकि श्रीकृष्ण बहुत ही रुष्ट होकर यहां से गए थे। अगली योजना बनाने के लिए उसने कर्ण और शकुनि आदि को अपने कक्ष में बुलाया, “अब तो युद्ध होकर ही रहेगा।

श्रीकृष्ण ने पांडवों को सारा हाल कह सुनाया होगा। अब हमें भी देर नहीं करनी चाहिए, तत्काल सेना एकत्र करके कुरुक्षेत्र की ओर रवाना हो जाना चाहिए।”

बस, फिर क्या था। दुर्योधन की इच्छानुसार हस्तिनापुर में युद्ध की सरगर्मी शुरू हो गई। कौरवों के पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी। दुर्योधन का आदेश मिलते ही सेना ने कुरुक्षेत्र की ओर कूच कर दिया। ग्यारह अक्षौहिणी सेना के लिए जो अधिनायक नियुक्त किए गए थे, उनके नाम थे—गुरु द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, शकुनि, सुदक्षिणा (कंबोज नरेश), जयद्रथ, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, भूरिश्रवा और वाह्वीक प्रधान सेनापति भीष्म पितामह को नियुक्त किया गया।

भीष्म पितामह ने कहा, “मुझे सेनापति बनने में कोई आपत्ति नहीं, किंतु मेरे सेनापति रहते कर्ण युद्ध में भाग नहीं ले सकता।”

कर्ण बोला, “आपकी बात स्वीकार है। वैसे भी मैं प्रण कर चुका हूं कि आपके रहते मैं हथियार नहीं उठाऊंगा। हां, जब आप जीवित नहीं रहेंगे तो मुझे युद्ध में भाग लेने से कोई नहीं रोक सकता।”

भीष्म पितामह अपने अधीन सेना लेकर कुरुक्षेत्र पहुंचे। पांडवों की सेना भी पहुंच चुकी थी।

युद्ध आरंभ होने से पहले दोनों पक्षों की ओर से दूत आपस में मिले और युद्ध में सर्वमान्य नियमों आदि पर विचार-विमर्श हुआ। एक संहिता बनाई गई, जिसका पालन दोनों पक्षों के लिए आवश्यक था। संपूर्ण युद्ध को धर्मयुद्ध की संज्ञा दी गई। प्रमुख नियम ये थे—कोई भी पक्ष युद्ध में छल-कपट नहीं करेगा, पैदल सैनिक से पैदल सैनिक लड़ेगा और घुड़सवार से घुड़सवार ही। इसी प्रकार रथ पर सवार सैनिक को केवल रथ पर सवार सैनिक से ही लड़ने का अधिकार होगा। मरणासन्न एवं शरणागत पर कोई हथियार नहीं उठाएगा।

दोनों पक्ष इन नियमों पर एकमत हो गए। अब प्रतीक्षा थी केवल युद्ध आरंभ होने की। आमने-सामने सेनाएं तैनात थीं—किसी भी क्षण उनमें भिड़ंत हो सकती थी।

दुर्योधन के शिविर में मंत्रणा चल रही थी। इस अवसर पर भी दुर्योधन अपना संतुलन नहीं रख पा रहा था। आस-पास बैठे मंत्रियों व सेनानायकों की ओर देखकर कहा, “हमें युद्ध जीतना ही है। इसके लिए क्या करना चाहिए?”

आस-पास बैठे योद्धा जानते थे कि दुर्योधन को कैसे प्रसन्न किया जा सकता है। बोले, “महाराज! युद्ध से पहले ही उन पर ऐसी चोट कीजिए कि वे तिलमिला उठें। आप एक काम कीजिए, शकुनि के पुत्र उलूक को दूत के रूप में भेजिए जो पांडवों का उपहास उड़ाए और अपमान करे। बस, पांडव क्रोधित हो जाएंगे और कोई-न-कोई गलत कदम उठाकर मात खा बैठेंगे।”

दुर्योधन को यह योजना पसंद आ गई। तत्काल उलूक को बुलाया गया और उसे समझा-बुझाकर पांडवों की ओर भेज दिया।

उलूक पांडवों के शिविर के निकट पहुंचा तो उसे कौरवों का दूत जानकर युधिष्ठिर के पास भेज दिया। युधिष्ठिर बोले, “हे कौरवों के दूत! तुम क्या कहना चाहते हो?”

“मैं दुर्योधन का संदेश आप लोगों के लिए लाया हूं।” उलूक बोला, “अब आप लोग गुस्से को भूलकर मेरी बात सुनिए।”

उलूक के बोलने का ढंग किसी को पसंद नहीं आया, पर चूंकि वह दूत था तो नियमानुसार उससे कुछ कहा भी न जा सकता था। युधिष्ठिर बोले, “तुम तो बड़े उदंड हो, पर दूत होने के नाते हम तुम्हें अभयदान देते हैं, कहो।”

उलूक बोला, “धर्मराज युधिष्ठिर! दुर्योधन ने कहा है कि जो धर्म की ऊंची-ऊंची बातें करता है, वस्तुतः सबसे बड़ा पापी वही होता है। बिल्ली भी ऊपर से ऐसी बनी रहती है जैसे भगत हो, पर अवसर पाते ही चूहे पर झपट पड़ती है, आप भी ऐसे ही हैं। अगर आप अपने को बहुत बड़ा बहादुर मानते हैं तो तनिक युद्ध के मैदान में उसका प्रदर्शन कीजिए।”

युधिष्ठिर खून का घूंट पीकर रह गए। अब उलूक ने श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा, “आपने हस्तिनापुर आकर तो बड़ी-बड़ी बातें कर लीं, अब तनिक युद्ध के मैदान में दिखाइए कि आपकी बातों में कितना दम है। दुर्योधन ने कहा है कि आप उन्हें कंस की प्रकार निर्बल न समझें।”

सब उलूक के दुस्साहस से चकित थे—चकित से अधिक क्रोधित, पर क्रोधित होकर वे अपना धैर्य नहीं खोना चाहते थे। इससे उलूक का साहस बढ़ा। वह अर्जुन से बोला, “और तुम? जब तुम जुए में हार गए थे तो तुम्हारा उद्धार किसने किया था? द्रौपदी ने? इसी से प्रकट हो जाता है कि तुम कायर हो।”

अब उलूक भीम से बोला, “दुर्योधन ने आपसे कहा है कि एक रसोइए को अपनी गदा पर अभिमान का कोई अधिकार नहीं। आप तो रसोईघर में भोजन ही बनाइए, युद्ध करना आपके वश का नहीं। कहीं ऐसा न हो कि युद्धभूमि आपके लिए हमेशा के लिए निद्राभूमि बन जाए।”

भीमसेन से यह सब सहा नहीं गया। वह उलूक को प्रताड़ित करने के लिए उठा ही था कि श्रीकृष्ण ने उसे रोक दिया।

श्रीकृष्ण ने उलूक से कहा, “कौरव दूत! हमने तुम्हारी बात सुन ली, अब फौरन यहां से चले जाओ। दुर्योधन से कहना कि उसने हमसे जैसी अपेक्षाएं रखी हैं, उनका प्रदर्शन हम युद्धभूमि में ही करेंगे। अब जाओ।”

उलूक जाने लगा तो युधिष्ठिर ने कहा, “दुर्योधन तक मेरा संदेश भी पहुंचा देना कि जो जैसा होता है, वह दूसरे को भी वैसा ही समझता है। पापी कौन है, इसका निर्णय युद्धभूमि में होगा।”

“और सुनो।” अर्जुन ने भी टोका, “उसे घमंड है कि सारे बुजुर्ग एवं गुरुजन उनकी ओर हैं, किंतु याद रहे उन्हें देखकर हमारे हथियार नहीं झुकेंगे। भीष्म जैसा परम सेनापति पाकर दुर्योधन को अधिक उलझने की आवश्यकता नहीं, उनकी मृत्यु भी मेरे हाथों लिखी है।”

उलूक अधिक देर तक वहां नहीं रुका। उसने दुर्योधन का संदेश पांडवों तक पहुंचा दिया था, अब पांडवों का संदेश दुर्योधन तक पहुंचाना था।

□□

पांडवों ने तो उलूक की सारी अपमानजनक बातें परम धैर्य से सुन ली थीं, लेकिन उलूक ने जब पांडवों का संदेश दुर्योधन को सुनाया तो दुर्योधन का क्रोध से बुरा हाल हो गया। वह आवेश में कांपता हुआ अपने सेना नायकों से बोला, “जाओ, युद्ध की तैयारी करो। कल सुबह होते ही हम पांडवों पर आक्रमण कर देंगे।”

सेनानायक तत्काल अपनी-अपनी सैन्य टुकड़ियों की ओर चल पड़े। दुर्योधन उलूक को पांडवों के पास भेजकर उन्हें उत्तेजित करना चाहता था, पर स्वयं ही उत्तेजित हो गया। उसने कई दूतों को एक साथ पांडवों की ओर भेज दिया—यह सूचना देने की कल सुबह युद्ध होगा।

दूसरे दिन जैसे ही नया सूर्य उदय हुआ, दोनों सेनाएं आमने-सामने डट गईं। दोनों सेनाओं के आगे महत्वपूर्ण योद्धा पूरे साजो-सामान के साथ सन्नद्ध थे। एक ओर खड़ी थी कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना तो दूसरी ओर खड़ी थी पांडवों की सात औक्षहिणी सेना।

पांडवों की सेना भले ही कम थी, पर उनके हौसले बुलंद थे। इसके अलावा युधिष्ठिर ने जो मोर्चेबंदी की थी, युद्ध-कला के हिसाब से अद्वितीय थी। दूर से कौरवों को ऐसा लग रहा था कि पांडवों के साथ मुट्ठी भर सैनिक ही लड़ने आए हैं, लेकिन गुरुदेव द्रोणाचार्य से पांडवों की कुशल मोर्चाबंदी छिपी न रह सकी। उन्होंने मन-ही-मन युधिष्ठिर की प्रशंसा की। पांडवों की सेना ने कौरवों को चारों ओर से घेर रखा था।

पांडवों की ओर से युद्ध आरंभ की घोषणा की गई। शंख की तेज ध्वनि से दसों दिशाएं गूंज उठीं। चारों ओर युद्ध पताका लिए छोटी-छोटी सैन्य टुकड़ियां मोर्चे संभालने आगे बढ़ चलीं। सारे वातावरण में शोर मच गया। धूल का गुब्बार इतना घना था कि सूर्य का प्रकाश भी अंधकार में बदल गया। लगा जैसे सुबह होते ही शाम हो गई हो।

गुरुदेव द्रोणाचार्य के पास खड़े दुर्योधन ने कहा, “तनिक-सी सेना का इतना गुमान! भला ये क्या टिक सकेंगे हमारी विशाल सेना के सामने। सेनापति भीष्म आप शंखनाद कीजिए।”

भीष्म ने भी शंखनाद करके युद्ध आरंभ करने का आदेश दिया। कौरवों की सेना में हलचल मच गई। सेनानायक अपनी-अपनी सैन्य टुकड़ी लेकर पांडवों की सेना से भिड़ने को आगे बढ़ चले।

अर्जुन अपने रथ में सवार आगे बढ़ता जा रहा था। उसके रथ के सारथी थे स्वयं श्रीकृष्ण। भीष्म के शंख के उत्तर में श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य शंख बजाया तो अर्जुन ने देवदत्त नामक शंख। इन दोनों शंखों की गगनभेदी ध्वनि सैनिकों के कान में पहुंची तो कुछ पल के लिए उनके कान सुन्न हो गए।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा, “हे पार्थ! तनिक रथ को मैदान के बीचोबीच ले चलिए। मैं भी देखूँ कि दोनों सेनाओं में कौन-कौन लड़ने आया है और कौन-सा वीर किस वीर के साथ लड़ सकता है।”

श्रीकृष्ण ने रथ की दिशा मोड़ दी और दोनों सेनाओं के बीच रथ को रोक दिया।

श्रीकृष्ण ने दोनों ओर उमड़ती-घुमड़ती युद्धातुर सेनाओं को देखा। कौरव पक्ष की सेना की अगली पंक्ति में सभी स्वजन-परिजन, गुरुजन एवं बुजुर्ग-आत्मीय खड़े थे। उन्हें देखकर अर्जुन का हृदय भर आया। बोला, “यहां तो बड़े-बड़े योद्धा युद्ध में भाग लेने आए हैं। मैं देख रहा हूँ कि भीष्म पितामह के अलावा गुरुदेव द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि आए हैं।”

“तो क्या हुआ?” श्रीकृष्ण बोले, “युद्ध में कोई भी भाग ले सकता है। वे शत्रु पक्ष की ओर से लड़ने आए हैं, इसलिए इस समय वे तुम्हारे स्वजन नहीं, बल्कि शत्रु हैं। उनके साथ शत्रुओं जैसा ही व्यवहार करो।”

श्रीकृष्ण की इस बात से अर्जुन को संतोष नहीं हुआ। सामने शत्रु के रूप में जो खड़े थे, वे एक ही परिवार के थे, संगे-संबंधी। कोई मामा था तो कोई चचेरा भाई, कोई गुरु था तो कोई पितामह या मित्र था—भला इन अपने ही लोगों पर अर्जुन का बाण कैसे उठेगा? अर्जुन का हृदय पसीज गया और युद्ध से जी एकाएक उचाट हो गया। वह बोला, “हे प्रभु! ऐसा राज्य मुझे नहीं चाहिए, जो अपने ही सगे-संबंधियों को मारकर पाया जाए। भला ऐसी विजय से क्या सुख मिलेगा? नहीं-नहीं, मुझसे अपने ही लोगों पर धनुष नहीं उठेगा। रथ वापस ले चलिए।”

इतना कहकर अर्जुन ने व्याकुल होकर अपने हथियार व धनुष-बाण रथ के कोने में फेंक दिए और नीचे बैठकर शोकमग्न हो गया।

अर्जुन की यह दशा देखकर श्रीकृष्ण मुस्कराए। अर्जुन का शोक स्वाभाविक था। उन्होंने आगे बढ़कर अर्जुन को उठाया और बोले, “अर्जुन! कमजोर मत बनो। तुम क्षत्रिय हो, क्षत्रिय धर्म का पालन करो। ऐसे अवसर पर अपने मन से यह मोह-माया निकाल दो। वीरों की प्रकार कर्म करो—अविवेकी मत बनो।”

“मैं क्या करूँ, मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।” अर्जुन व्याकुल होकर बोला, “आप तो सर्वज्ञानी हैं, आप ही बताइए कि इस अवसर पर मेरा क्या कर्तव्य है।”

श्रीकृष्ण के अधरों पर मुस्कराहट छा गई। उन्होंने अर्जुन के कंधों को थपथपाते हुए स्नेह से कहना आरंभ किया—

“अर्जुन! यह मत सोचो कि तुम्हारे मारने से ही ये मरेंगे। प्राणी मात्र नाशवान है। एक दिन सबको मरना है, लेकिन आत्मा तो सदैव अमर रहती है। इसलिए मिथ्या माया-मोह में मत पड़ो। ये सारे संबंध और रिश्ते माया जाल हैं, सुख-दुःख की बातें भी भ्रामक हैं। बस, एक ही बात का ध्यान रखो कि तुम्हारा धर्म क्या है। धर्म पर चलकर आचरण करना ही विवेकी इंसान का परम कर्तव्य है। तुम क्षत्रिय हो और उसे रोक नहीं सकते, तुम तो निमित्त मात्र हो, नियंता तो कोई और है। तुम्हारा जो कर्म है, उसे मोह-माया व ममता त्यागकर पूर्ण करो और फल की

चिंता मत करो। अपने मन को दृढ़ करो, उठो अर्जुन! होश में आओ, उठाओ अपना धनुष-बाण और टूट पड़ो शत्रुओं पर। अगर तुम मेरा आदेश चाहते हो तो यही मेरा आदेश है।”

अर्जुन की आंखें खुल गईं। हां, यह संसार असार है और जो कोई आया है, वह अपना-अपना कर्तव्य निभाकर चला जाएगा। ये रिश्ते-नाते सब निरर्थक हैं। बस, उसने उठा लिया अपना धनुष-बाण और बोला, “हे प्रभु! आज मैंने एक नए ही दर्शन को आत्मसात किया। अब मैं मोह-माया को त्यागकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हूँ।”

श्रीकृष्ण ने उसे युद्ध में विजयी होने का आशीर्वाद दिया।

□□

हस्तिनापुर के महल में धृतराष्ट्र चिंतातुर बैठे थे। पास ही संजय बैठा उन्हें युद्धभूमि की नवीनतम गतिविधियों से अवगत कराता जा रहा था।

धृतराष्ट्र मन-ही-मन दुखी थे। एक ही परिवार के लोग आज युद्ध के मैदान में शत्रु बनकर एक-दूसरे से मुकाबला करने को डट गए थे। उनके दुःख का कोई अंत नहीं था।

ऐसे ही अवसर पर महर्षि व्यास ने वहां प्रवेश किया। धृतराष्ट्र को शोकमग्न देखकर महर्षि व्यास बोले, “अब इतना चिंतित होने से क्या लाभ? पहले ही अगर आपने सतर्कता व बुद्धिमानी से काम लिया होता तो यह नौबत नहीं आती। जो कुछ हो रहा है, वह सब आपकी कमजोरियों के कारण ही हो रहा है। आज अगर एक ही परिवार के लोग युद्ध करने को आतुर हैं तो सब आपकी अनीति व अधर्म का परिणाम है, पर यह सब तो हमेशा से होता आया है। कोई भी काल के प्रवाह को रोक नहीं सकता। इसलिए आप शोक न करें। हां, अगर आप अंतिम बार अपने आत्मीय स्वजनों को अपनी आंखों से देखना चाहते हैं तो मैं आपको दिव्य दृष्टि प्रदान कर सकता हूँ।”

“नहीं-नहीं, मुझमें इतनी हिम्मत नहीं है कि युद्धभूमि में मरने-मारने पर उतारू अपने ही संबंधियों को अपनी आंखों से देख सकूं।” धृतराष्ट्र बोले, “हां, कुछ ऐसी कृपा अवश्य कीजिए कि युद्धभूमि में घटने वाली पल-पल की घटना की सूचना मुझे मिलती रहे।”

“एवमस्तु।” इतना कहकर महर्षि व्यास ने संजय की ओर देखकर कहा, “संजय! मैं तुम्हें दिव्य-दृष्टि प्रदान करता हूं। तुम यहीं बैठे-बैठे युद्ध भूमि का सारा हाल स्पष्ट देख सकोगे। फिर यह आंखों देखा हाल तुम धृतराष्ट्र को भी सुनाते जाना।”

“जो आज्ञा महर्षि!” संजय ने कहा।

□□

युद्धभूमि में अर्जुन ने दुबारा धनुष-बाण उठा लिए थे और श्रीकृष्ण ने रथ आगे बढ़ा दिया था।

दोनों सेनाएं आमने-सामने खड़ी अंतिम आदेश की प्रतीक्षा कर रही थीं। तभी अर्जुन सहित सभी पांडवों ने देखा कि युधिष्ठिर अचानक अपने रथ से नीचे कूद पड़े हैं। अपने हथियार रथ में ही छोड़ दिए और पैदल धीरे-धीरे चलते हुए कौरवों की ओर बढ़े।

अचानक युधिष्ठिर भीष्म पितामह के सामने जा रुके। उन्होंने भीष्म के चरण-स्पर्श करके कहा, “आदरणीय पितामह! युद्ध आरंभ करने की आज्ञा लेने आया हूं। आशीर्वाद देकर कृतार्थ करें।”

युधिष्ठिर का यह आदर-भाव देखकर भीष्म गद्गद् हो उठे। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा, “पुत्र! मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। युद्ध आरंभ करने की आज्ञा देता हूं। जाओ, युद्ध में विजयी होओ।”

युधिष्ठिर बोले, “इस समय आपके मार्ग निर्देशन की अत्यंत आवश्यकता है। हमें उपदेश दीजिए।”

“भला यह भी कोई अवसर है उपदेश देने का।” भीष्म बोले, “इस समय युद्ध का संचालन करो। किसी और समय तुम्हें अवश्य उपदेश दूंगा।”

युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह के अलावा वहां उपस्थित सभी बुजुर्गों को नमन किया। सभी युधिष्ठिर के इस व्यवहार से अत्यंत प्रसन्न हुए। सब पांडवों के प्रति पहले से ही सहानुभूति रखते थे, यह तो कुछ परिस्थितियां ऐसी थीं कि उन्हें कौरवों का पक्ष लेने को विवश होना पड़ा था। द्रोणाचार्य व कृपाचार्य ने आशीर्वाद के साथ-साथ युद्ध में विजयी होने का भी आशीर्वाद दिया। शल्य ने कहा, “मुझे धोखे से दुर्योधन ने अपने पक्ष में मिला तो लिया है, पर मैंने कर्ण को निरस्त्र करने का जो वचन दिया है, उसे अवश्य निभाऊंगा।”

युधिष्ठिर सबका आशीर्वाद पाकर अपनी सेना में लौट आए।

आते समय वे बोले, “अगर कौरवों की सेना में हमारा कोई शुभचिंतम हो तो हमारी ओर आ जाए।”

यह सुनते ही कौरवों की सेना से एक सैनिक निकला और पांडवों की सेना में जा मिला। वह युयुत्सु था—धृतराष्ट्र की एक नायिका की संतान।

श्रीकृष्ण ने उद्धोषणा की, “युद्ध आरंभ करो।”

□□

यह युद्ध कुरुक्षेत्र में अठारह दिनों तक चलता रहा। यही युद्ध महाभारत के युद्ध के नाम से आगे चलकर विख्यात हुआ। युद्ध में कभी भी स्पष्ट निर्णायक स्थिति नहीं आई। कभी ऐसा लगता जैसे युद्ध में कौरवों का पलड़ा भारी है तो कभी ऐसा अनुभव होता कि पांडव भारी पड़ रहे हैं। नियमानुसार युद्ध प्रातःकाल आरंभ होता और शाम होते ही युद्धविराम की घोषणा कर दी जाती थी। सेनाएं अपने-अपने खेमांतों में लौट जाती थी और विश्राम करती थीं। सेनानायक अगले दिन की मोर्चेबंदी की योजनाओं में संलग्न हो जाते थे। सैनिक रात भर गाते-बजाते और

आराम करते तथा दूसरे दिन ताजा होकर फिर लड़ते। जैसे-जैसे दिन बढ़ते गए और युद्ध का उन्माद जोर पकड़ता गया, वैसे-वैसे सारे नियम व आचार संहिताएं भुला दी गईं और युद्धविराम का भी बार-बार उल्लंघन होने लगा। हालत यह हो गई कि कई बार युद्ध देर रात तक जारी रहता—चारों ओर आग और मशालें जला ली जातीं।

(चौदह)

पहले दिन सुदृढ़ व्यूह रचना के साथ पांडव आगे बढ़े। भीमसेन ने मतवाले हाथी की प्रकार गरजते हुए दुश्मनों पर धावा बोल दिया।

उधर भीष्म पितामह अपनी सेना के साथ शत्रु-सेना पर बिजली की प्रकार टूट पड़े। दोनों सेनाओं में भीषण भिड़ंत हुई। चारों ओर भयंकर युद्ध छिड़ गया।

युद्ध में भाग लेने अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु भी आया था। उसकी वीरता का आलम यह था कि वह माता के गर्भ से ही युद्ध-कौशल सीख आया था। उसने बड़ी वीरता से युद्ध में अपने करतब दिखाए। अभिमन्यु के तीरों से कृपाचार्य के साथ-साथ शल्य व कृतवर्मा भी घायल हो गए। इस वीर बालक की वीरता व निशानेबाजी देखकर भीष्म मन-ही-मन प्रशंसा किए बिना नहीं रह सके। फिर उन्होंने धनुष उठाया और निशाना साधकर अभिमन्यु की ओर छोड़ दिया। घायल होने के बावजूद अभिमन्यु ने अपना धनुष भीष्म की ओर मोड़ लिया और उसके तीरों ने भीष्म के रथ की पताका की चिड़िया उड़ा दी।

राजकुमार उत्तर भी पांडवों के पक्ष में था। वह हाथी पर सवार था। उसने अपने हाथी को आगे बढ़ाया और शल्य के रथ के घोड़ों को कुचल दिया। शल्य के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसने लौह-शक्ति का निशाना साधकर राजकुमार उत्तर पर वार कर दिया। राजकुमार उत्तर इस वार से बच न सका और युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त हुआ।

दूसरी ओर भीष्म पितामह के तेज बाणों से पांडवों की सेना में खलबली मच गई थी। भीष्म पितामह के बाण पांडव सैनिकों को धराशायी करते जा रहे थे।

तब तक शाम हो गई। युद्धविराम लागू हो गया।

पांडवों में राजकुमार उत्तर की मृत्यु का शोक छा गया।

श्रीकृष्ण ने पांडवों को हतोत्साहित नहीं होने दिया। वे बोले, “इन छोटी-छोटी बातों से घबराने की आवश्यकता नहीं। अंतिम विजय हमारी होगी।”

दूसरे दिन सूर्योदय के साथ युद्ध आरंभ हुआ। दोनों ओर की सेनाएं नए उत्साह के साथ युद्ध में पिल पड़ीं।

पहले दिन की भांति ही भीष्म पितामह ने बाणों की घनघोर वर्षा आरंभ कर दी। भीष्म पितामह की रक्षा के लिए उनके चारों ओर बड़े-बड़े वीरों की रक्षा-पंक्ति तैनात थी। भीष्म के तीर पांडवों के सैनिकों को गाजर-मूली की प्रकार काटते जा रहे थे। पांडवों के धुरंधर सेनानायक इस बाणवर्षा से अत्यंत घबरा गए।

अर्जुन अपने रथ पर श्रीकृष्ण के साथ बैठा था। अपने सैनिकों को धड़ाधड़ गिरते देखकर वह भी चिंतित था। श्रीकृष्ण बोले, “अर्जुन! अगर भीष्म पितामह का यह करिश्मा जारी रहा तो हमारी सेना बेमौत मारी जाएगी। मैं रथ को भीष्म के समीप ले जाता हूं। तुम अवसर पाते ही भीष्म को रोको।”

अर्जुन का रथ भीष्म के सामने जा रुका। अब दोनों महान योद्धा आमने-सामने थे। उन्होंने एक-दूसरे को देखा और धनुष तान लिए।

दोनों महारथियों की भिड़ंत देखने के लिए सेना में उत्सुकता छा गई। कई कौरव वीर लड़ना भूलकर भीष्म और अर्जुन की ओर देखने लगे।

कौरवों को लापरवाह देखकर भीम के कदम खुद-ब-खुद शत्रुओं की ओर बढ़ गए। उसने अपने गदा-प्रहार से एक-एक बार से अनगिनत सैनिकों को धराशायी कर दिया। शत्रु-सेना में भगदड़ मच गई। भीम ने कौरवों को देखते-ही-देखते भारी क्षति पहुंचा दी।

अपनी सेना की यह दशा देखीतो सेनापति भीष्म पितामह ने फिर से मोर्चा संभाल लिया। वे अर्जुन को छोड़कर भीम की ओर बढ़ चले। सात्यकि ने भीष्म को आगे बढ़ते देखा तो अपना

रथ आगे ले गए और भीष्म के सारथी को मार गिराया। अब भीष्म क्या करते? रथ चलाते या हथियार चलाते। इसलिए उन्होंने अपनी सेना को आदेश दिया, “शाम हो रही है। युद्धविराम घोषित कर दो और शिविरों को लौट चलो।”

युद्ध का अवसान हो गया। आज के युद्ध में अभिमन्यु ने दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण को घायल कर दिया था।

तीसरा दिन अर्जुन का था।

उसने बाणों की घनघोर वर्षा करके शत्रु-सेना को भारी क्षति पहुंचाई। गांडीव की एक-एक टंकार से सैनिक भूमि पर बिछ जाते। कौरवों की हालत नाजुक हो गई।

दुर्योधन से यह सहा नहीं गया। उसने भीष्म पितामह के समीप पहुंचकर कहा, “आपके रहते अर्जुन की यह हिम्मत की हमारी सेना को नष्ट करता चला जाए। आज आपको क्या हो गया है? युद्ध के प्रति आप इतने उदासीन क्यों हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि आप पांडवों से मिल गए हैं! अगर हमें पराजित ही कराना है तो युद्ध का आयोजन करने की आवश्यकता ही क्या थी?”

भीष्म को दुर्योधन का यह आरोप सुनकर गुस्सा तो आया, पर वे धैर्य से बोले, “दुर्योधन! युद्ध में हार-जीत चलती ही है। फिर पांडवों को तुम कमजोर मत समझो, वे भी वीर हैं। हम अपना कर्तव्य निभा रहे हैं। यह आरोप मिथ्या है कि मैं पांडवों से मिल गया हूं। इस आयु में मुझसे जितना हो सकेगा, अवश्य करूंगा।”

जो भी हो, दुर्योधन के कटु वचनों का भीष्म पर बड़ा गहरा असर हुआ। भीष्म के हाथों में पुनः स्फूर्ति आ गई और उनके धनुष से निकलने वाले बाण पांडव सेना को धरती पर बिछाने लगे। पांडवों के तो होश उड़ गए।

यह देखकर श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ लेकर भीष्म के पास जा पहुंचे। अर्जुन चाहता तो वह आज भी भीष्म को उकसाकर उनका ध्यान भंग कर सकता था, पर आज उसमें विशेष उत्साह नहीं था। फिर भी भीष्म का ध्यान अर्जुन की ओर बंट अवश्य गया था। इसका फल यह हुआ कि उनके बाणों की वर्षा थोड़ी कम हो गई और पांडव-सेना ने थोड़ी राहत की सांस ली।

पांडव नए उत्साह के साथ कौरव-सेना में घुस गए और अनेक सैनिकों का वध कर डाला।

तीसरे दिन भी कौरवों की अपार क्षति हुई। शुद्रक देश का नरेश अपने साथ जितने सैनिक लाया था, वे सब काम आ गए। कुल मिलाकर उस दिन कौरवों के लगभग दस हजार रथ विनष्ट हो गए और सात सौ हाथी मारे गए।

दुर्योधन ने शाम होते ही युद्धविराम की घोषणा कर दी।

□□

भारी क्षति के बावजूद कौरव अगले दिन नए उत्साह के साथ युद्ध भूमि में कूद पड़े।

अर्जुन प्रतिदिन की प्रकार शत्रु-संहार में लगा था, तभी उसने देखा कि उसका पुत्र अभिमन्यु कौरव योद्धाओं से घिर गया है। अभिमन्यु के चारों ओर अश्वत्थामा व शल्य आदि अनुभवी योद्धा अस्त्र ताने खड़े थे। अर्जुन ने अपना रथ उस ओर मोड़ दिया और धृष्टद्युम्न के साथ मिलकर अभिमन्यु की रक्षा में संलग्न हो गया। दुर्योधन ने यह देखा तो वह भी अपने भाइयों के साथ शल्य व अश्वत्थामा की सहायता को आ पहुंचे। भीम ने भी अपने पुत्र घटोत्कच के साथ अभिमन्यु की सहायता की।

दुर्योधन ने पांडव वीरों को तितर-बितर करने के लिए हाथियों को आगे बढ़ा दिया। भीम ने हाथियों को चिंघाड़ते हुए आगे बढ़ते देखा तो वह अपने रथ से कूद पड़ा और अपने लौह वज्र से हाथियों पर आक्रमण कर दिया। ऐसा लग रहा था, जैसे कोई विशाल पहाड़ हाथियों पर टूट

पड़ा हो। हाथियों में खलबली मच गई और वे अपनी ही सेना को रौंदते हुए भागने लगे। भीम पूरे जोश में था।

भीम अपने रथ पर जा चढ़ा और सारथी से बोला, “रथ को आगे बढ़ाओ, आज मैं इन धूर्त कौरवों को खूब सबक सिखाऊंगा और यमलोक पहुंचा दूंगा।”

उस दिन भीम ने धृतराष्ट्र के आठ पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया। दुर्योधन ने बड़ी वीरता से जवाबी आक्रमण किया, यहां तक भीम पर वार किए, पर भीम का पुत्र घटोत्कच मौत बनकर कौरवों पर टूट पड़ा था। उसने कौरवों की बहुत बड़ी फौज को नेस्तनाबूद कर दिया।

भीष्म ने यह आलम देखा तो दुर्योधन से बोले, “इस राक्षस से लड़ना बहुत कठिन है। हमारी सेना थक चुकी है। युद्धविराम की घोषणा कर दो।”

□□

भीष्म के रहते पांडवों का जीतना असंभव हो गया था। भीष्म के बाणों की तेज मार के आगे पांडवों का कोई जोर नहीं चल रहा था। हालांकि अर्जुन लगभग हर रोज रथ को भीष्म के पास ले जाता और भीष्म को अपनी ओर आकर्षित करके कुछ देर के लिए युद्ध का पासा पलट देता था, किंतु भीष्म की उपस्थिति पांडव सेना के लिए चिंता का प्रमुख विषय थी।

छठे दिन अर्जुन ने तय कर लिया कि भीष्म का वध आवश्यक है, वरना पांडवों की क्षति की भरपाई असंभव हो जाएगी।

अर्जुन ने शिखंडी को अपने पास बुलाया। यह शिखंडी वही था, जिसने भीष्म को मारने का प्रण किया था। अर्जुन ने अपने रथ के आगे शिखंडी को बिठा दिया और रथ को भीष्म की ओर बढ़ा दिया। भीष्म को ज्ञात था कि उनकी मृत्यु आ चुकी है। शिखंडी को अर्जुन के रथ में आते देख उन्होंने तय कर लिया कि उस पर बाण नहीं चलाएंगे, क्योंकि वह उनकी दृष्टि में नारी थी और नारी पर वार करना भीष्म के सिद्धांतों के विरुद्ध था।

भीष्म के पास पहुंचते ही अर्जुन ने शिखंडी की ओट से अपने धनुष से बाणों की वर्षा कर दी। भीष्म का सारा शरीर तीरों से बिंध गया था। भीष्म स्वयं को संभाल नहीं सके और रथ से नीचे गिर पड़े। तीर शरीर में इस प्रकार चुभे थे कि वे धरती पर नहीं गिरे, बल्कि तीरों की शय्या पर धरती पर जा पड़े। वे समझ गए कि ये बाण शिखंडी ने नहीं छोड़े, बल्कि अर्जुन ने छोड़े हैं।

भीष्म की यह दशा देखकर दोनों पक्षों में युद्ध एकबारगी थम गया।

अर्जुन अपने रथ से उतरा और तेज-तेज कदमों से भीष्म के पास जा पहुंचा। भीष्म का सिर नीचे लटक रहा था। अर्जुन ने एक तीर सिरहाने पर छोड़ दिया और भीष्म का लटकता सिर तीर पर टिका दिया।

“वत्स अर्जुन!” भीष्म धीरे से बोले, “प्यास से गला सूख रहा है, तनिक पानी तो पिलाओ।”

अर्जुन ने उसी समय धरती पर एक तीर छोड़ा, वहां से पानी की बौछार निकल पड़ी। वह पानी की बौछार सीधे भीष्म के मुंह में जा गिरी। पानी पीकर भीष्म ने अपनी प्यास बुझाई। यह पानी की धारा गंगा की थी, जो अंतिम समय में अपने पुत्र की प्यास बुझाने आई थी।

मरणासन्न भीष्म पितामह के चारों ओर दोनों पक्षों के वीर आकर एकत्र हो गए। भीष्म बोले, “मैं आशा करता हूं कि मेरी मृत्यु के बाद इस युद्ध का भी अंत हो जाएगा। मैं चाहता हूं कि तुम लोग मिल-जुलकर रहो। अब मुझे अपने मरने का तनिक भी दुःख नहीं। जब सूर्य उत्तरायण होंगे मेरा प्राणांत हो जाएगा, तब तक शर-शय्या पर ही मुझे पड़ा रहने दो। फिलहाल मेरी आत्मा शरीर में ही बनी रहेगी। मेरे अंतिम समय में जो जीवित हो, वही मेरा दाह-संस्कार कर दे।”

कर्ण को भीष्म की दशा का पता चला तो वह दौड़ा-दौड़ा उनके अंतिम दर्शनों को आया। उसने हाथ जोड़कर भीष्म से निवेदन किया, “मेरी भूल को क्षमा कर दीजिए। मैंने जो अपशब्द

कहे थे, उनके लिए शर्मिदा हूं।”

“सुनो कर्ण!” भीष्म बोले, “पांडवों से इस कदर घृणा मत करो। तुम सारथी-पुत्र नहीं, सूर्य-पुत्र हो, पांडवों के भाई हो, जाओ और उनसे मित्रता का हाथ मिलाकर इस युद्ध का अंत कर दो।”

कर्ण को यह प्रस्ताव पसंद नहीं आया। बोला, “जब सभी लोग मेरी हंसी उड़ा रहे थे, तब दुर्योधन ने मुझे सम्मान दिया था। भला मैं दुर्योधन का साथ इस संकट-बेला में कैसे छोड़ दूं। मैं वचनबद्ध हूं और अपना वचन अवश्य निभाऊंगा, बल्कि अगर आप मुझे युद्ध में भाग लेने देते तो मैं अर्जुन को आपका वध नहीं करने देता।”

भीष्म की मृत्यु होते ही कर्ण ने युद्ध का बाना पहनने में देर नहीं की। अब दुर्योधन का हतोत्साह फिर अंगड़ाई लेकर नए उत्साह में परिवर्तित हो गया। कर्ण के आ जाने से उसकी सेना में नई जान आ गई थी।

दुर्योधन तो कर्ण को ही सेनापति बनाना चाहता था, किंतु कर्ण के सुझाव पर उसने गुरु द्रोणाचार्य को सेनापति का उत्तरदायित्व सौंप दिया।

□□

संजय युद्धक्षेत्र के प्रत्येक पल का वृत्तांत दिव्य-दृष्टि से प्रतिदिन धृतराष्ट्र को सुनाया करता था। जिस दिन भीष्म की मृत्यु हुई, उस दिन धृतराष्ट्र बहुत मर्माहत हुए।

□□

दुर्योधन को एकाएक प्रतीत हुआ—अगर युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लिया जाए तो युद्ध को जीता जा सकता है।

दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से कहा, “गुरुदेव! आप किसी प्रकार युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ने का प्रयास कीजिए। मुझे युद्ध में पूरी विजय की तनिक भी अभिलाषा नहीं। बस, युधिष्ठिर

जीवित ही हाथ लग जाए, यही मेरे लिए बहुत है।”

द्रोणाचार्य ने कहा, “युधिष्ठिर को जीते-जी पकड़ना आसान नहीं, फिर भी मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने का प्रयास करूंगा।”

पांडवों पर कौरवों ने द्रोणाचार्य के नेतृत्व में नए सिरे से आक्रमण किया। पांडवों की सेना बुरी प्रकार मात खाने लगी। युधिष्ठिर ने अपनी सेना की रक्षा के लिए कमर कस ली। तभी शकुनि ने सहदेव पर धावा बोल दिया। अवसर देखकर द्रोणाचार्य ने द्रुपद को जा पकड़ा और सात्यकि ने कृतवर्मा पर धावा बोल दिया। भीमसेन ने शल्य को अपने शिकंजे में जकड़ लिया।

□□

युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की जो योजना बनी थी। उसके अनुसार द्रोणाचार्य ने त्रिगर्त नरेश सुशर्मा को अर्जुन से लड़ने भेज दिया, ताकि अर्जुन एक मोर्चे पर व्यस्त रहे तो दूसरी ओर युधिष्ठिर को सरलता से पकड़ा जाए।

सुशर्मा से अर्जुन लड़ने चला तो उसने युधिष्ठिर से कहा, “मुझे पता चला है कि दुर्योधन आपको जीवित पकड़ना चाहता है। मैं तो त्रिगर्त नरेश से लड़ने जा रहा हूँ, आप अपनी सुरक्षा का ध्यान रखिएगा। मैं सत्यजित को आपकी सहायता के लिए छोड़े जाता हूँ। हाँ, सत्यजित जब लड़ते-लड़ते मर जाए तो आप तत्काल युद्धभूमि छोड़कर चले जाएं।”

यह कह अर्जुन त्रिगर्त नरेश से लड़ने चल पड़ा। उसने बाणों की धुआंधार वर्षा करके त्रिगर्त नरेश की सेना का विनाश कर दिया। आधी सेना तो धराशायी हो गई और आधी सेना डरकर भाग गई। जो थोड़े-बहुत सैनिक बचे उन्हें लेकर त्रिगर्त नरेश मोर्चे पर डटा रहा। उसने अवसर मिलते ही श्रीकृष्ण पर बाण छोड़ दिए। सारथी पर बाण चलाना नियम के विरुद्ध था। अर्जुन का क्रोध के मारे बुरा हाल हो गया। उसने अपना दिव्यास्त्र चलाया, जिससे त्रिगर्त नरेश के बचे-खुचे सैनिक भी मारे गए।

यह मोर्चा फतह करके अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा के लिए वापस लौटा। वहां देखा तो सत्यजित मारा जा चुका है और द्रोणाचार्य आगे बढ़ रहे हैं। अर्जुन ने कहा, “भैया! आप तत्काल इस मोर्चे से हट जाइए।”

युधिष्ठिर चुपचाप युद्धभूमि से हट गए।

अर्जुन को अपने बीच पाकर पांडवों में फिर नया जोश आ गया। वे नए उत्साह से कौरवों से लड़ने लगे।

इस बीच शाम हो चली।

द्रोणाचार्य ने निराशा से युद्धविराम की घोषणा कर दी। युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने का अवसर पास आकर भी हाथ से निकल गया था, इससे द्रोणाचार्य बहुत दुखी थे।

इस निराशा से उबरने के लिए द्रोणाचार्य ने मन-ही-मन तय कर लिया कि अगले दिन युधिष्ठिर को जीवित पकड़कर ही रहेंगे, तभी आज की कसक मिट सकेगी।

□□

अगले दिन द्रोणाचार्य ने एक भव्य व्यूह की रचना की, ताकि युधिष्ठिर को जीवित बंदी बनाकर दुर्योधन के सामने पेश कर सकें। इस व्यूह का नाम था—चक्रव्यूह। इसमें कोई फंसा गया तो उसका निकलना मुश्किल था। इस व्यूह से निकलने का भेद एक ही व्यक्ति को मालूम था—वह था अर्जुन। इस व्यूह के बारे में जब युधिष्ठिर को पता चला तो वे चिंतित हुए। अर्जुन दूसरे मोर्चे पर लड़ने जा चुका था।

अभिमन्यु बोला, “चक्रव्यूह के अंदर तो मैं भी जा सकता हूं, किंतु बाहर निकलने का भेद मुझे मालूम नहीं।”

युधिष्ठिर ने कहा, “तो फिर तुम्हीं चक्रव्यूह में प्रवेश करो और इसे तोड़ दो। तुम्हारी रक्षा के लिए कई वीर यहां प्रस्तुत हैं।”

युधिष्ठिर का आदेश पाते ही अभिमन्यु चक्रव्यूह में कूद पड़ा। चक्रव्यूह के द्वार पर रक्षा का भार जयद्रथ पर था। अभिमन्यु के जाने के बाद उसने किसी अन्य पांडव वीर को व्यूह के अंदर प्रवेश करने नहीं दिया।

चक्रव्यूह में कौरवों के समस्त वीर मौजूद थे। अभिमन्यु को अंदर आते देखते ही दुर्योधन ने अभिमन्यु पर आक्रमण कर दिया, लेकिन अभिमन्यु ने वीरता से दुर्योधन का मुकाबला किया। अभिमन्यु की वीरता देखकर दुर्योधन चकित रह गया। दुर्योधन के लिए जब अभिमन्यु के वार सहना मुश्किल हो गया तो कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य व कृतवर्मा आदि ने आकर दुर्योधन की सहायता की, लेकिन अभिमन्यु से लोहा लेते समय सारे वीरों के पसीने छूट गए। अभिमन्यु ने अपने वारों से इन वीरों को नचा डाला। दुःशासन की तो यह हालत थी कि उसके शरीर में अभिमन्यु के अनेक तीर चुभ चुके थे, जब उससे सहा नहीं गया तो वह मैदान छोड़कर भाग गया।

कर्ण ने निशाना साधकर एक बाण अभिमन्यु पर छोड़ दिया। अभिमन्यु को तीर लगा तो अवश्य, पर उसने मैदान नहीं छोड़ा, बल्कि घायल होने के बावजूद मैदान में डटा रहा। अभिमन्यु के वार से अनेक वीरों को मृत्यु का वरण करना पड़ा, जिनमें कौशल देश के राजा बृहद्वल के अलावा दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण व मदराज का पुत्र रुक्म भी थे।

अभिमन्यु की यह वीरता देखकर कौरव वीर सिटपिटा गए और उपाय नजर नहीं आया तो वे गुरु द्रोणाचार्य के पास पहुंचे। गुरु द्रोणाचार्य वीर बालक की रण-कुशलता से मन-ही-मन अति प्रसन्न हुए। फिर अपने सेनापतित्व का बोध हुआ तो उन्होंने दुर्योधन को सुझाव दिया, “देखो! जब इसके समस्त हथियार समाप्त हो जाएं तब इस पर सब मिलकर चौरतफा आक्रमण कर देना।”

द्रोणाचार्य की योजनानुसार दुर्योधन ने अभिमन्यु पर नया आक्रमण किया। जब तक अभिमन्यु के पास हथियार रहे, वह कौरवों का मुकाबला करता रहा। यहां तक हथियारों के

समाप्त हो जाने के बाद उसने रथ के पहियों से मुकाबला किया, पर वह अकेला उन कई वीरों से कब तक लड़ता? अंततः उसे निरुपाय देखकर दिग्गज वीरों ने उस पर चौतरफा हमला किया और उसका वध कर दिया।

अभिमन्यु के मारे जाने से कौरवों में हर्ष की लहर दौड़ गई। उन्होंने शंख बजाकर यह समाचार फैला दिया कि उनकी जीत हो गई।

अभिमन्यु की मृत्यु के समाचार से पांडवों में शोक छा गया। शाम होते ही युद्धविराम की घोषणा हो गई।

□□

अपने शिविर में पांडव अभिमन्यु की मृत्यु से बहुत संतप्त थे। युधिष्ठिर को विशेष दुःख था, क्योंकि उसी ने अभिमन्यु को भेजा था।

तभी वहां आ पहुंचे महर्षि व्यास। वे बोले, “दुखी मत हो युधिष्ठिर! जो कुछ हुआ है, वह अटल था। दरअसल, भगवान शिव ने जयद्रथ को वर दिया था कि तुम एक दिन पांडवों को पराजित तो अवश्य करोगे, पर अर्जुन का वध अवश्य असंभव है। उसी वर का प्रताप था कि अभिमन्यु मारा गया।”

थोड़ी देर बाद जब मोर्चे से अर्जुन लौटा तो वह भी अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर शोक-विह्वल हो गया। श्रीकृष्ण ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, “वीरों की मृत्यु पर शोक नहीं करते अर्जुन! अभिमन्यु तो दिव्यलोक गया है, जहां जाने की हर वीर की अभिलाषा होती है।”

अर्जुन ने कहा, “मैं जयद्रथ को नहीं छोड़ूंगा। उसकी मृत्यु मेरे ही हाथों होगी। कल सूर्यास्त से पहले मैं उसे यमपुरी पहुंचा दूंगा।”

□□

अर्जुन के प्रण का समाचार कौरवों के शिविर में पहुंचा।

जयद्रथ को मारने का अर्जुन का दृढ़ निश्चय कभी निष्फल नहीं हो सकता। इसलिए कौरवों में थोड़ी हलचल छा गई। जयद्रथ का तो डर के मारे बुरा हाल हो गया। उसने दुर्योधन से कहा, “मैंने आप लोगों के लिए अपनी जान की बाजी तक लगा दी। अब मेरी रक्षा का भार आपके ऊपर है। बस, सूर्यास्त तक मुझे बचा लीजिए।”

“घबराओ मत जयद्रथ! हमारे रहते अर्जुन तुम्हें छू भी नहीं सकता।” दुर्योधन ने उसे अभयदान दिया, “तुम्हारी रक्षा में कर्ण, शल्य, अश्वत्थामा और भूरिश्रवा जैसे वीर तैनात हैं, फिर डर कैसा?”

द्रोणाचार्य बोले, “अर्जुन को मैं तुम्हारे निकट नहीं आने दूंगा। सारी सेना तुम्हारी रक्षा में संलग्न रहेगी। मेरे नए व्यूह को भेदकर कोई भी पांडव वीर तुम्हारे निकट नहीं आ सकेगा, अर्जुन भी नहीं।”

सचमुच युद्ध आरंभ हुआ तो जयद्रथ को कौरवों की सेना ने घेर लिया। जयद्रथ रथों, हाथियों और घुड़सवारों के पीछे छिप गया। वह सुबह से केवल आकाश की ओर सिर उठाए सूर्य की ओर देख रहा था कि कब सूर्यास्त हो और कब युद्धविराम हो जाए, क्योंकि अर्जुन ने आज शाम तक ही उसका वध करने की सौगंध खाई थी, किंतु वह आज बच जाता है तो अर्जुन का प्रण निरर्थक जाएगा।

तभी सूर्य को बादलों ने ढक लिया। अर्जुन ने समझा कि सूर्यास्त हो गया। उसने चैन की सांस ली। वह निडर होकर अपने गुप्त स्थान से निकल आया। जैसे ही अर्जुन ने देखा, अपना तीर चला दिया। तीर निशाने पर लगा। जयद्रथ आह भरकर धरती पर जा गिरा।

सूर्य फिर बादलों के पीछे से निकल आया और चारों ओर तेज प्रकाश फैल गया। वस्तुतः श्रीकृष्ण ने ही अपने चक्र से सूर्य को छिपाकर सूर्यास्त का भ्रम उत्पन्न किया था, ताकि जयद्रथ मारा जा सके।

जयद्रथ के वध के साथ उस दिन का युद्ध समाप्त हो गया।

□□

जिस दिन भीम और कर्ण में टक्कर हुई थी, उसी दिन दुर्योधन ने भीम को मात देने के लिए अपने कुछ भाइयों को कर्ण की सहायता में भेजा, पर भीम ने दुर्योधन के ग्यारह भाइयों को मौत के घाट उतार दिया। भीम वह दिन भूला नहीं था, जिस दिन भरे दरबार में खुलेआम द्रौपदी को अपमानित किया गया था और उसने प्रण किया था कि वह दुर्योधन की जांघ के टुकड़े-टुकड़े कर देगा।

कर्ण ने भी भीम को कम क्षति नहीं पहुंचाई। उसने भीम के हथियारों व धनुष-बाण को तोड़ दिया, उसके रथ को भी क्षति पहुंचाई। कर्ण को भारी पड़ते देखकर भीम को मोर्चे से भागकर जगह-जगह अपनी रक्षा करनी पड़ी। भीम के हाथ में जो लगा, उसे उठाकर वह कर्ण पर फेंकता रहा।

कर्ण ने कहा, “तुम कैसे क्षत्रिय हो, जो भागकर अपनी जान बचाते हो। तुम्हें तो जंगल में जाकर पशुओं को घास चरानी चाहिए।”

उस दिन दोनों पक्षों में युद्धोन्माद कुछ इतना बढ़ गया था कि युद्ध विराम की अवधि का भी उन्हें ख्याल नहीं रहा और रात बहुत देर तक वे लोग लड़ते रहे।

उस रात घटोत्कच भी युद्ध के मैदान में था। उसने कर्ण को अपने वार से घायल कर दिया। कर्ण दर्द से बुरी प्रकार छटपटाने लगा। उसके पास इंद्र का दिया हुआ एक ऐसा अस्त्र था, जिसे अपने शत्रु पर फेंको तो उसका संहार निश्चित था, किंतु इसका प्रयोग सिर्फ एक बार हो सकता था। यह अस्त्र उसने अर्जुन का वध करने के लिए रख छोड़ा था, लेकिन घटोत्कच ने उसे इस कदर उत्तेजित कर दिया था कि कर्ण ने अस्त्र छोड़ दिया, जिससे घटोत्कच बच नहीं सका। वह अर्जुन को सुरक्षा प्रदान कर मर गया।

□□

रात काफी गुजर गई थी।

युद्ध का क्रम जारी था। हर मोर्चे पर घोर मार-काट मची थी। द्रोणाचार्य अपना सेनापतित्व बखूबी निभा रहे थे। जहां उनकी जरूरत पड़ती, उधर ही पहुंच जाते। जहां देखो, द्रोण के अस्त्रों की आवाज सुनाई पड़ती।

श्रीकृष्ण गुरु द्रोणाचार्य की चपलता से चिंतित थे, बोले, “द्रोणाचार्य के जीवित रहते हमारा युद्ध जीतना कठिन हो जाएगा। ये तो बिजली की गति से हर मोर्चे पर पहुंच जाते हैं। इनकी वीरता का तो यह आलम है कि ये लगातार रात-दिन बिना थके लड़ सकते हैं और जब तक हमारी सेना को विनष्ट नहीं कर देंगे, तब तक इनके तरकश से तीर निकलते ही रहेंगे। हमें हर हालत में द्रोणाचार्य की शक्ति को नष्ट करना चाहिए। इन्हें अपने पुत्र अश्वत्थामा पर बड़ा गर्व है। अश्वत्थामा को अभी मारना तो असंभव है, लेकिन अगर किसी प्रकार द्रोणाचार्य के कानों तक यह भनक पहुंच जाए कि उनका प्यारा पुत्र मारा गया तो उनकी सारी शक्ति निरस्त हो जाएगी और वे बुरी प्रकार टूट जाएंगे। बस, ऐसे मौके पर द्रोणाचार्य पर काबू पाया जा सकता है।”

“पर यह तो धोखा है।” अर्जुन बोला, “मैं ऐसे युद्ध में भाग नहीं ले सकता।”

युधिष्ठिर ने जवाब देने से पहले कुछ देर तक सोचा। समय गुजरता जा रहा था और द्रोणाचार्य का नर-संहार जारी था। अपनी रक्षा के लिए आवश्यक था कि कोई उपाय किया जाए, वरना रक्तपात बंद होने वाला नहीं था।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा, “हालांकि यह अधर्म है, फिर भी मैं यह करने के लिए तैयार हूं, क्योंकि तभी द्रोणाचार्य रक्तपात बंद करेंगे। भले ही मुझे इस झूठ के लिए नर्क क्यों न जाना पड़े, मैं द्रोणाचार्य के पास जाऊंगा। हे कृष्ण! मुझे लगता है कि इसके अलावा और कोई चारा नहीं।”

अब भ्रम पैदा करने के लिए भीम आगे बढ़ा। उसने अपनी गदा से एक हाथी का सिर फोड़ दिया, जिसका नाम 'अश्वत्थामा' था, फिर चीखकर बोला, “मैंने अश्वत्थामा को मार दिया।”

उस समय द्रोणाचार्य ऐसा शक्तिशाली बाण छोड़ने जा रहे थे, जिसका नाम ब्रह्मास्त्र था। इस बाण की विशेषता यह थी कि वह पांडवों की समस्त सेना नष्ट कर देता, लेकिन तभी भीम की अश्वत्थामा को मारने की उद्घोषणा सुनी तो उन्होंने ब्रह्मास्त्र का हाथ नीचे झुका लिया।

युधिष्ठिर पास पहुंच चुका था। द्रोणाचार्य ने कहा, “युधिष्ठिर! तुम कभी झूठ नहीं बोलते। सच-सच बताओ, क्या अश्वत्थामा मारा गया?”

“हां, यह सच है।” युधिष्ठिर बोले, साथ ही धीरे से फुसफुसाकर यह भी कहा, “पर यह एक हाथी का नाम था।”

द्रोणाचार्य युधिष्ठिर का पहला वाक्य सुनकर ही सन्न रह गए थे। अगला अस्पष्ट वाक्य उनके कानों में नहीं पड़ सका, चूंकि तब तक वे अपना होश गंवा बैठे थे। उन्हें लगा कि उनका सब कुछ लुट चुका है, अब जिंदा रहना व्यर्थ है। अपने प्रिय बेटे के बिना जिंदा न रहने की कल्पना मात्र से वे सिहर उठे।

भीम ने पास आकर कहा, “आप तो जन्म से ब्राह्मण हैं, लेकिन आपने ब्राह्मणों के कर्म त्याग क्षत्रियों का कर्म अपनाया है, जो अपनी जाति से द्रोह है। आपको तो जन-जन में शांति का सदुपदेश देना चाहिए, जबकि आप लोगों को लड़ने-भिड़ने की शिक्षा देते हैं। आपको आज अपने कृत्य का पूरा-पूरा बदला मिल गया।”

द्रोणाचार्य पहले ही अपने पुत्र की मृत्यु से मर्माहत थे। भीम की बातों ने उन पर जले पर नमक का काम किया। वे बुरी प्रकार तिलमिला उठे। उन्होंने उसी समय अपने समस्त हथियार नीचे फेंक दिए। वे रथ पर बैठकर विचारों में खो गए।

तभी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य के रथ पर कूदकर चढ़ा। किसी के कुछ समझने या आगे बढ़कर रोकने से पहले धृष्टद्युम्न ने म्यान से तलवार निकाली और द्रोणाचार्य के सिर को धड़ से अलग कर दिया। इस प्रकार उसने अपने पिता द्रुपद के अपमान का बदला चुका लिया।

□□

गुरुदेव द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति बनाया।

अर्जुन के लिए यह अवसर चुनौतीपूर्ण था। वह भीम के साथ कर्ण के खिलाफ मैदान में उतर पड़ा।

तभी दुःशासन मौका पाकर भीम के पास पहुंचा और बाणों की वर्षा कर दी। भीम तो इसी मौके की तलाश में था। वह भूला नहीं था कि दुःशासन ने ही द्रौपदी को निर्वस्त्र करने की कुचेष्टा की थी। भीम की आंखों में खून उतर आया और वह बुदबुदाया, “यही वक्त है बदला लेने का।” उसने तेजी से अपना रथ दुःशासन की ओर बढ़ा दिया और दुःशासन को अपने रथ से घसीटकर नीचे उतार दिया। फिर उसके हाथ तोड़कर भीम बोला, “तुमने इन्हीं हाथों से द्रौपदी को बालों से घसीटा था न?” इसके साथ ही उसने दुःशासन की छाती में तलवार घुसा दी। दुःशासन आह भरकर नीचे जा गिरा और उसकी छाती से खून बहने लगा। भीम ने खून की अंजलि दुर्योधन के मुंह की ओर फेंकते हुए कहा, “मैंने दुःशासन का खून पीने की प्रतिज्ञा की थी, आज पूरी करने का समय आ गया है।”

यह कहकर उसने दुःशासन की लाश के बहते हुए खून को अंजलि से भरा और पी गया। भीम का यह विकराल रूप देखकर दुर्योधन तो सन्न रह ही गया, बाकी लोग भी सन्नाटे में आ गए।

भीम के इस कृत्य से पल भर के लिए कर्ण भी कांपकर रह गया। शल्य कर्ण के रथ का सारथी था, वह बोला, “मैं देख रहा हूं कि आप कांप रहे हैं। यह ठीक है कि स्थिति नाजुक है,

पर आप सेना के अधिनायक हैं, आपको इस प्रकार होश नहीं गंवाना चाहिए। खुद को काबू में कीजिए, युद्ध की हार-जीत की पूरी जिम्मेदारी आप पर है।”

कर्ण होश में आ गया। उसने शल्य को आदेश दिया कि रथ को अर्जुन की ओर ले चलो। शल्य ने अपने कथन से उसे उत्तेजित कर दिया था।

अर्जुन के निकट पहुंचते ही कर्ण ने अपने अस्त्र चलाने शुरू कर दिए। उसने सबसे पहले नागबाण छोड़ा। बाण तेजी से उड़ता हुआ अर्जुन के सिर को धड़ से अलग करने जैसे ही पास पहुंचा, उसी समय श्रीकृष्ण ने अपनी शक्ति से रथ को जमीन में पांच अंगुल नीचे धंसा दिया, फलस्वरूप अर्जुन का सिर कटने से बच गया, पर उसका मुकुट नीचे जा गिरा। इससे अर्जुन को तेज गुस्सा आ गया। चेहरे पर क्रोध की लाली छा गई, अर्जुन ने कर्ण की ओर प्राणघातक बाण छोड़ दिया।

कर्ण इस बाण से विचलित हो गया। तभी उसका रथ कीचड़ में जा फंसा। वह रथ को संभालते हुए अर्जुन से बोला, “ठहरो, मुझे अपना रथ ठीक करने दो, फिर वार करना। मुझे तुम पर विश्वास है।”

श्रीकृष्ण बोले, “इन बातों को रहने दो। तुम लोगों ने कभी किसी के विश्वास के साथ न्याय किया है? तुम लोग हमेशा अन्याय करते रहे हो क्या भूल गए वह दिन, जब खुलेआम द्रौपदी का अपमान हो रहा था, जब पांडवों को देश से निकाल दिया गया और निहत्थे अभिमन्यु का कई-कई लोगों ने मिलकर वध कर डाला। तब कहाँ था तुम्हारा न्याय?” इतना कहकर उन्होंने अर्जुन को आदेश दिया, “अर्जुन! चलाओ अपना तीर और कर्ण को खत्म कर डालो।”

तब तक कर्ण अपने को संभाल चुका था और फुर्ती से एक तीर अर्जुन पर चला चुका था। अर्जुन उसकी स्फूर्ति से हैरान रह गया। कर्ण मौका पाकर रथ से उतरा और पहिए को कीचड़ से निकालने लगा। जब कीचड़ से पहिया न निकल सका तो वह बदहवास हो गया। अब उसने अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र चलाने की सोची, पर इस घबराहट में वह भूल गया कि इसे किस मंत्रोच्चार

से चलाया जाता है। अर्जुन इस स्थिति से नाजायज फायदा उठाने को हिचक रहा था, किंतु श्रीकृष्ण ने कहा, “समय मत बरबाद करो, तीर चलाओ।”

तब अर्जुन ने गांडीव उठाया और एक ही तीर से कर्ण का सिर धड़ से अलग कर दिया।

□□

कर्ण की मृत्यु का समाचार सुनने के बाद कौरवों में हताशा फैल गई। अश्वत्थामा ने दुर्योधन को सुझाव दिया, “मुझे लगता है कि इस खून-खराबे से कोई लाभ नहीं होगा। बेहतर यही है कि अब पांडवों से संधि कर लो। हमारे सारे चोटी के वीर मारे जा चुके हैं।”

“नहीं।” दुर्योधन ने एक ही शब्द में अश्वत्थामा का सुझाव अमान्य कर दिया। बोला, “मैं पांडवों से कैसे संधि कर सकता हूँ, जिन्होंने हमारे इतने प्रिय और वीर स्नेहियों को मौत के घाट उतार दिया। मैं मरते दम तक पांडवों से लड़ूंगा।” फिर उसने शल्य की ओर देखकर कहा, “आज से हमारी सेना के सेनापति तुम हो।”

शल्य अपने अधीन फौज लेकर आगे बढ़ा।

उधर से स्वयं युधिष्ठिर ने शल्य की सेना के हौसले पस्त कर दिए। सबका विचार था कि युधिष्ठिर मन से कोमल है, पर आज उनकी शक्ति देखकर सब हैरान रह गए। यों शल्य भी माना हुआ वीर था लेकिन, युधिष्ठिर ने आज उसका एक भी दांव नहीं चलने दिया। युधिष्ठिर ने अपनी शक्ति का ऐसा भव्य प्रदर्शन किया कि शल्य के पैर उखड़ गए और वह जमीन पर चक्कर खाता हुआ धूल में लोट-पोट होकर मारा गया।

भीम ने धृतराष्ट्र के बचे-खुचे पुत्रों को यमलोक पहुंचा दिया, पर जब तक दुर्योधन जीवित था तो भीम के जलते हृदय को शांति कहां थी। वह अंत में दुर्योधन के पास पहुंचा, जो सब कुछ गंवाकर लुटा-पिटा नजर आ रहा था। उसकी सारी आशाएं तिरोहित हो गई थीं। भाइयों के अलावा उसका शुभचिंतक प्रिय मामा शकुनि भी सहदेव के हाथों मारा जा चुका था।

दुर्योधन चिंतामग्न बैठा था कि तभी उसके पास कृपाचार्य व अश्वत्थामा पहुंचे। कौरवों की तरफ सिर्फ यही तीन वीर बचे हुए थे। दूसरे पक्ष में सात वीर जीवित थे।

दुर्योधन ने शल्य की मृत्यु के पश्चात् अश्वत्थामा को सेनापति नियुक्त करते हुए कहा, “अब तुम पर ही भरोसा है।”

अश्वत्थामा बोला, “चिंता मत करो, तुमने मुझे उत्तरदायित्व सौंपा है, उसका पालन करूंगा और पांडवों का नामो-निशान मिटाकर ही दम लूंगा।”

□□

दुर्योधन को अपने बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। इसलिए एक दिन उसने अपना गदा उठाया और एक झील के किनारे जा पहुंचा। मंत्र के बल से पानी में रास्ता बनाया और तल में जाकर छिपकर बैठ गया।

पांडवों ने अंततः उसे खोज लिया।

युधिष्ठिर ने कहा, “तुम्हें शर्म नहीं आई पानी में छिपते हुए। बोलो, अपने वंश को समाप्त करके तुम्हें क्या मिला?”

दुर्योधन बोला, “मैं छिपने के लिए यहां नहीं बैठा हूं। यह मत भूलो कि मेरा शरीर अब तक बदले की आग से दग्ध हो रहा है, मैं तो यहां ठंडक पाने को बैठा हूं। तुम लोगों ने मेरे सभी आत्मीयों-स्वजनों को मार डाला। अब मैं किसके लिए लड़ूं या जीऊं? मुझे राज-पाट नहीं चाहिए। सब कुछ तुम लोग ले लो। उफ! इसी राज्य को पाने के लिए तुम लोगों ने इतना नरसंहार किया।”

“वाह! आज तो तुम बड़े दयालु बन रहे हो।” युधिष्ठिर बोले, “क्या तुम भूल गए कि तुम्हीं ने सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने से इनकार कर दिया था।”

दुर्योधन पानी के तल से बाहर निकल आया। उसके हाथ में अपना प्रिय अस्त्र गदा था। बोला, “मैं अकेला हूं। अगर तुम लोग मुझसे लड़ने ही आए हो तो मैं एक-एक से अकेला लड़ूंगा। एक साथ मुझ पर आक्रमण करना अन्याय होगा। देख रहे हो कि मैं निहत्था और अकेला हूं।”

“आज तुम्हें न्याय और अन्याय की याद आ रही है।” युधिष्ठिर बोले, “क्या तुम भूल गए कि कैसे एक निहत्थे और अकेले बालक अभिमन्यु को तुम लोगों ने मार डाला। तुम लोगों ने उस अकेले पर भेड़िए की प्रकार आक्रमण किया था। खैर, हम ऐसा नहीं करेंगे। तुम हममें से जिससे लड़ना चाहो, चुनाव कर लो। अगर तुम मारे गए तो सीधे स्वर्ग जाओगे, जिंदा रहे तो राज-पाट तुम्हें सौंप दिया जाएगा।”

श्रीकृष्ण को युधिष्ठिर की बात में कोई तुक नजर नहीं आई। दुर्योधन के लिए तो भीम ही उपयुक्त था। इसलिए वे भीम से जल्दी से बोले, “भीम! तैयार हो जाओ, तुमने दुर्योधन के वध का प्रण किया है।”

भीम गदा लेकर दुर्योधन के सामने जाकर खड़ा हो गया। दोनों गदा चलाने में निपुण थे, इसलिए उनकी गदा एक-दूसरे से टकरा गई। वार-पर-वार होने लगे, भीम दुर्योधन के वार बचा लेता तो दुर्योधन भीम के। जैसे ही उनकी गदाएं हवा में टकरातीं भयंकर चिंगारी फूट पड़तीं।

काफी देर तक संघर्ष चलता रहा तो श्रीकृष्ण समझ गए कि हार-जीत का फैसला मुश्किल है। तभी श्रीकृष्ण को याद आया कि भीम ने दुर्योधन की जांघ तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। हालांकि युद्ध में शरीर के निचले हिस्सों पर गदा से वार करना नियम विरुद्ध था, फिर भी श्रीकृष्ण बोले, “अरे! भीम ने तो दुर्योधन की जांघ तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी, क्या वह अपनी प्रतिज्ञा भूल गया।” साथ ही उन्होंने भीम को जांघ पर वार करने का इशारा किया।

भीम को सब कुछ याद आ गया कि कैसे दुर्योधन ने द्रौपदी को जांघ पर बैठने का अश्लील संकेत किया था और कैसे क्रोध में आकर उसने दुर्योधन की जांघ तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी।

बस, भीम नीचे झुका और गदा का भरपूर वार दुर्योधन की जांघों पर कर दिया। दुर्योधन लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा। भीम ने गदा के एक ही वार से दुर्योधन के सिर को चकनाचूर कर दिया।

युधिष्ठिर बोले, “बस करो, भीम! तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हुई।”

□□

उसी रात अश्वत्थामा ने पांडवों के शिविर में जाकर तबाही मचा डाली। न सिर्फ उसने द्रौपदी के पांचों पुत्रों को सोते हुए मार डाला, बल्कि पांडवों की बची-खुची सेना को भी सोए-सोए ही मार डाला। इस नरसंहार में कृपाचार्य व कृतवर्मा ने भी उसका सहयोग किया, हालांकि कृपाचार्य इस नरसंहार के खिलाफ थे। इसकी सूचना मरणोन्मुख दुर्योधन को देकर तीनों लुप्त हो गए। दुर्योधन यह संवाद पाकर मर गया।

पांडवों को नरसंहार का पता चला तो अश्वत्थामा की खोज में निकल पड़े। युधिष्ठिर बोले, “इस कांड से तो हम जीतकर भी हार गए।”

अश्वत्थामा गंगा के किनारे व्यासाश्रम में छिपा हुआ था। भीमसेन ने उसे देखते ही ललकारा। दोनों में घोर संग्राम छिड़ गया। फिर अश्वत्थामा अपनी पराजय स्वीकार करके जंगलों की ओर निकल गया।

□□

इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि सारा हस्तिनापुर मर्दों से खाली हो गया। वहां सिर्फ औरतें और बच्चे रह गए थे, जिनके करुण विलाप से वातावरण गूंज रहा था।

जबकि युद्धभूमि में कुत्ते, सियार और गिद्ध लाशों को नोच-नोचकर खा रहे थे।

युद्ध समाप्त हो गया।

पांडव हस्तिनापुर आ गए। युधिष्ठिर सोच रहे थे कि इस दर्दनाक जीत के बाद महाराज धृतराष्ट्र को कैसे मुंह दिखाएं? गांधारी से कैसे मिलें? वे अपने सौ पुत्रों को खोकर क्या पांडवों को सहज ही क्षमा कर देंगे?

जब पांडव राजदरबार में पहुंचे तो धृतराष्ट्र ने कहा, “भीम कहां है? उसे मेरे पास भेजो। मैं उसका स्वागत करना चाहता हूं।”

श्रीकृष्ण पास खड़े थे। वे धृतराष्ट्र के मनोभावों को समझ रहे थे। भीम ने ही उनके प्रिय पुत्र दुर्योधन का वध किया था, जिसे धृतराष्ट्र कभी भी भुला नहीं सकते थे। इसलिए श्रीकृष्ण ने भीम की जगह एक लौह प्रतिमा धृतराष्ट्र के सामने खड़ी कर दी।

धृतराष्ट्र ने उसे इस प्रकार आलिंगन में भर लिया, जैसे स्नेहाधिक्य से विचलित हो गए हों। उन्होंने लौह-प्रतिमा पूरी शक्ति से अपनी छाती से लगा ली। इसका नतीजा यह हुआ कि प्रतिमा टुकड़े-टुकड़े होकर धरती पर जा गिरी। धृतराष्ट्र अत्यंत अफसोस के साथ बोले, “अरे-अरे, भीम को क्या हो गया? शायद मैंने भावावेश में तुम्हें ज्यादा ही दबा दिया। तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं पहुंचा?”

श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के नाटक से क्षुब्ध हुए, लेकिन धीरे से बोले, “आपने भीम को नहीं, बल्कि लोहे की प्रतिमा को दबाया था। आशा है कि आपके बदले का उबाल कम हो गया होगा।”

धृतराष्ट्र मन-ही-मन शर्मिदा हुए। स्थिति संभालते हुए बोले, “मुझे खुशी है कि भीम का अहित नहीं हुआ। श्रीकृष्ण! सच तो यह है कि मेरे शोक ने मुझे पागल बना दिया था। मुझे खुशी है कि तुम्हारे कौशल से भीम की जान बच गई।”

वे अपनी शर्मिंदगी और शोक को दूर करने के लिए पांडवों के साथ भविष्य की योजनाओं के बारे में बातें करने लगे।

किंतु गांधारी! वह तो माता थी। वह भला अपना शोक कैसे सहज भुला सकती थी। वह श्रीकृष्ण को देखकर सुबकती हुई बोली, “अब तो तुम्हें शांति मिल गई ना हमारा विनाश करके। तुम्हारी चालाकियों के कारण ही हमारा वंश बरबाद हो गया। तुमने जो अपराध किया है, उसकी कोई सजा नहीं।”

“ऐसा मत कहिए।” श्रीकृष्ण बोले, “यह तो कर्मों का फल है। आपके बेटों ने जैसा कर्म किया, उसका फल भोगा। उन्हें अपने पापों की सजा मिल गई। आप शोक मत कीजिए, वे स्वर्ग में ही गए हैं।”

एक मास का शोक मनाने के लिए पांडव हस्तिनापुर से बाहर एक नगर में चले गए। उन्होंने नदी के किनारे अपना डेरा डाला। उनके साथ धृतराष्ट्र, विदुर और संजय के अलावा महल की समस्त रानियां भी थीं।

नदी के किनारे रहकर उन्होंने विधिवत शोक मनाया और युद्ध के बिछड़े हुए आत्मीयों-स्वजनों की आत्माओं की शांति के लिए पूजा-पाठ किया।

एक दिन उनके पास नारद एवं महर्षि व्यास के अलावा अनेक ऋषि-मुनि मिलने आए।

नारद मुनि युधिष्ठिर से बोले, “तुमने इतना बड़ा युद्ध जीता, चारों ओर तुम्हारा नाम फैल गया, तुम खुश हो न इस विजय से? अब तो कोई शोक नहीं रहा?”

युधिष्ठिर कुछ सोचकर बोले, “कैसी विजय मुनिवर! मैंने तो कुछ नहीं किया, इस सारी सफलता का श्रेय श्रीकृष्ण को है। इसके अलावा अर्जुन और भीम की वीरता से ही सब कुछ संभव हो सका। जहां तक मेरा सवाल है, मैं तो अपनी जिंदगी का उद्देश्य ही हार गया। देखिए न, द्रौपदी के सारे पुत्र मारे गए। सुभद्रा का इकलौता बेटा अभिमन्यु भी नहीं रहा। दूसरी ओर हमारे सारे स्वजन भी नहीं रहे। भला मैं उन माता-पिता से कैसे आंख मिला सकता हूं, जिनके पुत्रों की मौत की जिम्मेदारी मुझ पर है। इसके अलावा एक और बात ने मुझे बहुत कष्ट पहुंचाया है। मुझे थोड़ी देर पहले तक मालूम नहीं था कि कर्ण भी कुंती का बेटा है, हमारा भाई

है। मैं तो समझता था कि वह सारथी-पुत्र है। अपने ही भाई को मारकर राज्य प्राप्त करने की लालसा करके मैंने भयंकर भूल की थी। उफ! यह कितना भयावह पाप है! मुझे तो उसी समय समझ जाना चाहिए था, जब माता कुंती पहली बार उसे देखकर अपना होश गंवा बैठी थी, पर वह बेमौत मारा गया। मुझे अब भी समझ में नहीं आ रहा कि अचानक युद्धभूमि में उसका रथ कीचड़ में क्यों धंस गया? यही नहीं, क्या कारण था कि वह ब्रह्मास्त्र चलाना भूल गया? आप तो यह सब जानते होंगे। आप ही बताइए कि कर्ण के दुर्भाग्य का क्या कारण था?”

नारद ने जवाब दिया, “सुनो युधिष्ठिर! मैं तुम्हें शुरू से बताता हूँ। ब्रह्मास्त्र भूलने का एकमात्र कारण यही है कि वह क्षत्रिय होकर ब्राह्मण के भेष में परशुराम से युद्ध-विद्या सीखने गया था। जहां तक रथ के कीचड़ में फंस जाने की बात है। इसका कारण है कि एक बार उसने भूल से किसी की गाय मार दी थी, जिसकी थी तो उसने कर्ण को शाप दिया था कि कठिन परिस्थितियों में तुम्हारा रथ धरती में धंस जाएगा। इसका शोक मत करो। यह सब तो प्रारब्ध था।”

युधिष्ठिर ने संतोष की सांस ली, फिर अर्जुन की ओर देखकर बोले, “हमारे शत्रु तथा मित्र मरकर स्वर्ग चले गए, जबकि हम यहां नरक में जीने को विवश हैं। शोक व दुःख के अलावा हमें कुछ नहीं मिला। यह मत कहना कि यही क्षत्रिय-धर्म है, दुखी होने की जरूरत नहीं। मुझे इस जीत से जरा भी खुशी नहीं। अर्जुन! आज से राजपाट तुम संभालो, मैं तो जंगल में जाकर तप करूंगा, मेरा हृदय उचाट हो चुका है।”

अर्जुन बोला, “इतना खून बहाकर और वीरों की बलि चढ़ाकर अब तुम जंगल में जाकर तप करना चाहते हो, यह नहीं होगा। यह राजपाट तुम्हें संभालना है। यह तुम्हारा कर्तव्य है कि राजा बनकर प्रजा की भलाई के काम करो, यही क्षत्रिय धर्म है।”

युधिष्ठिर ने फिर भी अपनी जंगल में जाने की इच्छा दोहराई।

भीम ने कहा, “भैया! ज्यादा मत सोचो, इस समय तुम्हारे दिमाग में शोक छाया हुआ है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। शत्रुओं का नाश करना तो हम क्षत्रियों का परम कर्तव्य है, इसमें दुखी होने की क्या जरूरत?”

सबका यही विचार था कि युधिष्ठिर शोक भूलकर अपने क्षत्रिय-धर्म का पालन करें।

अंत में महर्षि व्यास ने कहा, “तुम्हें निश्चित रूप से राजा बनकर राजपाट संभालना चाहिए। यही एकमात्र रास्ता है तुम्हारे लिए। राजा बनकर क्षत्रिय धर्म का पालन करो और निरर्थक विचारों से अपने दिमाग को मत थकाओ। इसके अलावा और कोई चारा नहीं, खुशी-खुशी राज करो।”

जब इस बार भी युधिष्ठिर ने टाल-मटोल की तो श्रीकृष्ण ने बुरा मानकर कहा, “इतना शोक भी किस काम का? भूल जाओ सब कुछ। कम-से-कम उन लोगों के बलिदान के बारे में तो सोचो, जिन्होंने तुम्हें विजय दिलवाई है। तुम्हें राज्य-भार संभालना ही पड़ेगा।”

कुछ देर तक सोचने के बाद अचानक युधिष्ठिर बोले, “हे कृष्ण! अब मैं ठीक हूं मुझे आपका आदेश स्वीकार है।”

युधिष्ठिर ने राजा बनना स्वीकार कर लिया तो विधिवत् उन्हें हस्तिनापुर का राजा बना दिया गया।

सारे नगर में इस समाचार से हर्ष की लहर दौड़ गई।

महल में राज्य सिंहासन पर बैठते हुए युधिष्ठिर ने घोषणा की, “महाराज धृतराष्ट्र हमेशा इस देश के सरपरस्त रहेंगे। अगर आप लोग मुझे खुश देखना चाहते हैं तो महाराज धृतराष्ट्र के प्रति पहले वाला सम्मान और आज्ञाकारिता बरकरार रखें। हम बस महाराज धृतराष्ट्र की सेवा में हैं।”

इसके साथ युधिष्ठिर ने भीम को युवराज और अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। विदुर को प्रमुख परामर्शदाता नियुक्त किया गया, युद्ध और रक्षा आदि का भारी भी उन्हें सौंपा गया। संजय के जिम्मे वित्त विभाग किया गया। सभी को यथोचित पद सौंप दिए गए।

कौरवों की सेना से जो युयुत्सु नामक सैनिक पांडवों की सेना में आ मिला था, वह जीवित था। युधिष्ठिर ने युयुत्सु को धृतराष्ट्र की देखभाल में लगा दिया। कृपाचार्य भी धृतराष्ट्र के पास ही रहने लगा।

अनेक वर्ष व्यतीत हो गए।

एक दिन श्रीकृष्ण को अपने ही विचारों में खोया देखकर युधिष्ठिर ने पूछा, “क्या बात है, किन विचारों में खोए हैं?”

श्रीकृष्ण बोले, “मुझे लगता है, उत्तरायण के आते ही भीष्म अपनी जान दे देंगे। वे ज्ञान के विराट सागर हैं। उनकी मृत्यु से पहले तुम उनसे मिल लो और ज्ञान प्राप्त कर लो।”

युधिष्ठिर को आश्चर्य हुआ कि इतने वर्षों के बाद भी भला वे कैसे जीवित मिलेंगे, किंतु श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को अपने पीछे आने का आदेश दिया और भीष्म से मुलाकात करा दी।

भीष्म शर-शय्या पर लेटे आखिरी सांसों ले रहे थे। उन्होंने बड़े स्नेह से श्रीकृष्ण व युधिष्ठिर का स्वागत किया। फिर वे बोले, “मैंने कहा था ना कि अवसर आने पर मैं तुम्हें उपदेश दूंगा। सुनो, वह अवसर आज आ गया।” इसके बाद उन्होंने सदुपदेश दिए और राजा के कर्तव्य के बारे में मार्गदर्शन किया। फिर भीष्म पितामह ने आखिरी सांस ली और हमेशा के लिए आंखें मूंद लीं।

युधिष्ठिर ने बाणों की शय्या से उनका शरीर उठाया और विधिवत् अंतिम संस्कार किया। युधिष्ठिर ने गंगा के किनारे जाकर भीष्म के शरीर को पवित्र नदी के हवाले कर दिया।

□□

युधिष्ठिर ने कुल छत्तीस वर्ष तक राज्य किया।

एक दिन धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा, “बेटे! अब मुझे मुक्त कर दो। मैं गांधारी एवं पांडु-पत्नी कुंती के साथ जंगल में जाकर एकांत में रहना चाहता हूँ।”

युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र की इच्छा का अक्षरशः पालन किया। पूरे इंतजाम के साथ धृतराष्ट्र, गांधारी व माता कुंती को वन में भेज दिया। बीच-बीच में वे खुद वन में जाकर उनका कुशल-क्षेम पूछते।

एक दिन उस वन में आग लग गई। उसी आग में धृतराष्ट्र, गांधारी एवं कुंती भस्म हो गए।

□□

उधर श्रीकृष्ण के समस्त यदुवंशी आपस में लड़-लड़कर विनष्ट हो गए। श्रीकृष्ण ने भी धरा-धाम को छोड़ देने का फैसला कर लिया। एक दिन वे नदी के किनारे गहरे सोच-विचार में डूबे रेत पर लेटे हुए विश्राम कर रहे थे कि दूर से एक शिकारी ने उनके पैरों को चिड़िया समझकर तीर चला दिया। इस प्रकार विष्णु के आठवें अवतार के रूप में उनका काल समाप्त हो गया और वे अंतर्धान हो गए।

श्रीकृष्ण के अंतर्धान होने से यदुवंशी एकदम टूट गए और द्वारिका को समुद्र के हवाले करके खुद भी डूब गए।

पांडवों ने निर्णय कर लिया कि इस असार संसार को त्याग देना चाहिए, इसलिए वे हिमालय-यात्रा पर निकल गए। वहीं महाप्रस्थान के पथ पर एक-एक करके पांचों भाइयों व द्रौपदी ने मृत्यु का वरण कर लिया।

युधिष्ठिर मरणोपरांत अपने शरीर सहित स्वर्ग पहुंच गए। स्वर्ग में उन्हें सभी मृत संबंधी मिल गए।

महाभारत के युद्ध में अंत में कोई भी जीवित नहीं बचा।



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

**Icreator of
hinduism
server!**



KAPWING

हां, अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित एकमात्र जीवित रह गया था। जब वह बड़ा हुआ तो हस्तिनापुर का सम्राट बनकर उसने पांडवों के वंश को आगे बढ़ाया।

□□□